जीवन संग्राम

मनोज पाण्डेय

© मनोज पाण्डेय

Manojpandey94@yahoo.com 94 67 55 79 54, 70 84 76 8943

विषय सुचि

भुमिका

1 मिर्जापुर परिचय

2 विजयपुर राज्य के दो स्तम्भ

3 हमारे पुर्वज में संघर्ष

4 एक मै हूं दुसरा कोई नहीं

5 वैदिक महापुरुष

6 वैदिक महापुरुष

7 वैदिक महापुरुष

8 नल दमयंती की कथा

9 संघर्ष ही जीवन है

10 मेरी दिल्ली यात्रा

11 मेरा परमेश्वर

12 वुद्धि से ब्रह्माण्ड

13 इस जीवन का अभिश्राप

भुमिका

यह उस समय कि बात है जब हमारे भारत पर अंग्रेजों का शाषन चलता था। भारत के उत्तर प्रदेश के एक बहुत वड़े जिले मिर्जापुर से शुरु होती है। जिसके नाम से ही अंग्रेजों के पसिना छुट जाते थे, क्योंकि कहने को तो अंग्रेजों का अधिकार पुरे भारत पर हो चुका था। फिर भी उनको अपने शासन को बरकरार करने के लिये उन्हे काफी संघर्षों का सामना करना पड़ता था। जहां तक मिर्जापुर का सवाल है वह अपनी आक्रमता के लिये बहुत प्रसिद्ध था। क्योंकि मिर्जापुर विन्ध्य पर्वत कि घाटियों से लेकर गंगा के तराई इलाको से होते हुए विन्ध्य पर्वत के उपर मध्यप्रदेश के बार्डर तक फैला हुआ था। जो भारत के कई छोटे प्रदेशों से बड़ा था। जिसमें पहाड़ियों इलाको से आच्छादित था। आज के समय में मिर्जापुर को बांट कर छोटा कर दिया गया है। जिसमें से काट कर सोनभद्र और रेनुकोट आदि जिला बना दिये गये है। जैसा कि पुराणों इस विन्ध्य मंडल के बारें मे आख्यान आता है।

विन्ध्याचल पर्वत या विन्ध्य पर्वतश्रेणी पहाड़ियों की टूटी-फूटी शृंखला है, जो भारत की मध्यवर्ती उच्च भूमि का दक्षिणी कगार बनाती है। पश्चिम में गुजरात से लगभग 1,086 कि.मी. तक विस्तृत यह श्रेणी मध्य प्रदेश को पार कर वाराणसी, मिर्जापुर आदि की गंगा नदी घाटी से मिलती है। विन्ध्याचल पर्वत मालवा पठार का दक्षिणी छोर बनाते हैं और इसके बाद दो शाखाओं में बंट जाते हैं- कैमूर श्रेणी, जो सोन नदी के उत्तर से पश्चिमी बिहार राज्य तक फैली है तथा दक्षिणी शाखा, जो सोन और नर्मदा नदी के ऊपरी क्षेत्र के बीच मैकल श्रेणी (या अमरकंटक पठार) में सतपुड़ा पर्वतश्रेणी से मिलती है। मालवा पठार के दक्षिण से आरम्भ होकर यह श्रेणी पूर्व की ओर मध्य प्रदेश तक विस्तृत हैं। यह भारत को दक्षिण भारत से अलग करती है। विन्ध्य पर्वत का संबंध महर्षि अगस्त के साथ जुणता है किन्ही कारणों से, अगस्त्य का हर सन्दर्भ दक्षिण भारत से है। पर उनका प्रताप और प्रभाव, जाहिर है कि हम बुद्धि और तप के सन्दर्भ में बात कर रहे हैं, इतना ज्यादा रहा कि उत्तर के गाथाकारों ने उनके साथ अपना रिश्ता जोड़ने की भरसक कोशिश की और इतना तक जताने में लग गए कि वे किसी खास लोकहित की पूर्ति के लिए ही विंध्य पार कर दक्षिण गए और लोकहित में ऐसे रम गए कि बस फिर लौट कर ही नहीं आए।

ऋग्वेद के पहले मंडल में सूक्त संख्या 165 से लेकिर 191 तक कुल मिलाकर 27 सूक्त अगस्त्य के नाम से मिलते हैं जिनमें से कुछ तो खुद अगस्त्य ऋषि के माने जाते हैं। मंत्रों के द्रष्टा लोपमुद्राऽगस्त है। और मंत्र के देवता दामपत्य अर्थात गृहस्थ हैं। जबकि कुछ उनके पुत्र या प्रपुत्रों के माने जाते हैं। जो उन्होंने अपने पिता अगस्त्य के नाम से लिख दिए। इन पर बाद में आएंगे। पर सबसे पहले अगस्त्य के ऐतिहासिक संदर्भों की जांच कर ली जाए। अगस्त्य ऋषि का प्राचीनतम ऐतिहासिक सन्दर्भ वाल्मीकि की (आज से छह से सात हजार साल पूर्व लिखी गई) रामायण में मिलता है। चित्रकूट में भरत को अपनी चरणपादुका देकर वापस अयोध्या भेज देने के बाद राम ने जब यह सोचा कि अब इसे छोड़ कर कहीं अन्यत्र चले जाना चाहिए तो वे दक्षिण के दण्डकारण्य की ओर चले गए। दण्डकारण्य में जहां वे दूसरे कई ऋषियों से मिले, वहां वे बड़ी ही उत्कण्ठा और सम्मान के साथ ऋषि अगस्त्य से मिलने गए।

मिर्जापुर की परिचय

राम-अगस्त्य मिलन के प्रसंग में रामायण का सारा विवरण बहुत ही सजीव है। उस विराट वन में जगह-जगह तपस्वियों के आश्रम हैं। जिन्हें राक्षसों का भय भी है, पर इसके बावजूद जो लगातार अपनी दैनिक तपश्चर्या में लगे रहते हैं। अगस्त्य से मिलने से पहले राम अपने भाई लक्ष्मण और पत्नी सीता के साथ सुतीक्ष्ण से मिलने गए थे। और वहीं से उनको अगस्त्य के प्रसिद्ध आश्रम जाने का मार्ग मालूम पड़ा था। तो इस आधार पर तय यह माना जाता है कि अगस्त्य ऋषि राम के समकालीन थे। और वैदिक मंत्ररचना के दूसरे सहस्त्राब्द के अन्तिम चरण में हुए थे। पर दक्षिण के इस महामुनि का सारे भारत पर अपनी बौद्धिकता और कर्मठता का दबदबा कुछ ऐसा था। कि उत्तर के गाथाकारों ने कितनी ही ऐसी कथाएं बना डालीं कि जिससे साबित यह होता है कि वे कोई विशेष लोकहित का काम करने दक्षिण दिशा की ओर गए थे। और फिर वहीं के होकर रह गए। महान् लोकहित का वह काम क्या था, इसका कोई संकेत कहीं नहीं मिलता। वे किसी खास सभ्यता का प्रसार करने वहां गए थे, इसकी उन्हें कोई जरूरत इसलिए नहीं थी क्योंकि शेष भारत की तरह दक्षिण भारत में सभ्यता का प्रसार सैंकड़ों सालों से था और हम देख ही आए हैं। कि कैसे मनु महाराज की एक सन्तान तुर्वसु की शाखा-प्रशाखाएं दक्षिण में राज करने लगी थीं। अगर किसी यज्ञसंस्कृति का प्रसार करना दक्षिण गमन का उद्देश्य मान लिया जाए तो खुद रामायण का विवरण साक्षी है। कि वह संस्कृति वहां सहज रूप से ही व्यापक पैमाने पर फैली पड़ी थी। राक्षसों का विनाश भी इसलिए उद्देश्य नहीं माना जा सकता क्योंकि राक्षस जाति के साथ मनुष्यों का संघर्ष दक्षिण ही नहीं उत्तर में भी चल रहा था। और अगस्त्य के समकालीन राम ने अगर दक्षिण में जाकर खर, दूषण और त्रिशिरा का वध किया था तो उत्तर में वे विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा के लिए ताड़का, मारीच और सुबाहु का वध कर ही चुके थे। तो क्यों उन्हें उत्तर का बताकर दक्षिण की ओर गए ऐसा बताया गया? जवाब तक पहुंचने के लिए बेहतर होगा कि वे गाथाएं दोहरा दी जाएं जो कई तरह से अगस्त्य ऋषि के साथ जोड़ दी गई हैं। एक गाथा यह है कि जब इन्द्र ने वृत्रासुर का दधीचि की अस्थियों से बने अपने वज्र से संहार कर दिया तो असुर एकदम नेताविहीन होकर घबरा गए। घबराहट में असुरों के एक दल ने अर्थात् कालेयों ने एक रणनीति यह बनाई कि वे समुद्र में जाकर छिप गए। दिन भर वे समुद्र में छिपे रहते और रात को बाहर निकलकर ऋषिमुनियों का वध कर वापिस समुद्र में छिपने चले जाते। लम्बे अरसे तक तो रहस्य ही मालूम नहीं पड़ा। अगस्त्य मुनि से इसके लिए अनुरोध किया गया तो उन्होंने सारा समुद्र पी लिया और खाली उघड़े समुद्र-धरातल पर कालेय असुर दिख गए और उनका संहार कर दिया गया। महाभारत के वनपर्व और कई पुराणों में उपलब्ध इस कथा पर कई सवाल उठाए जा सकते हैं। क्या राम-समकालीन अगस्त्य का इन्द्र-वृत्र संग्राम से कोई लेना-देना हो सकता है? क्या कोई समुद्र में छिप सकता है? क्या कोई समुद्र पी सकता है? यहां पर इस कथा की वैज्ञानिकता की दृष्टी से देखा जाये तो संभव है। अगस्त नाम के कई पुरुष हुए है इस भुमंडलपर। पहले ऐसी परंपरा थी। कि लोग एक नाम से उनकी पिढ़ी को बरकरार रखने के लिये उनके नाम से ही कार्य करते थे। जैसा कि सारे पुराणों को व्यास के नाम से जानते जबकि व्यास के बाद बहुत से पुराणों को उनके नाम से लिखा गया है। जिसको रोकने के लिये राजा भोज ने कई ऐसे लेखको के ङाथ कटवा लिया था। जिस अगस्त ने समन्दर को पिया था। राम कालिन अगस्त नहीं थे । वह प्रथम अगस्त ऋषि थे जिन्होने विज्ञान कि सहायता से बहुत दुर्लभ और असंभव जैसे लगने वाले कार्यों को अपने जीवन में सिद्ध किया था। जिसमें से एक यह भी कार्य है कि उन्होने समन्दर के पानी को पुरी तरह से सुखा दिया था। और जो समन्दर के अन्दर राक्षस आदि छुपे थे, अपने निवास अस्थान को बना कर, उनको देवताओं के द्वारा मार गया था। यह घटना यहां पृथ्वी पर नहीं हुई थी मंगल ग्रह पर हुई थी। इस वजह से मंगल ग्रह का सारा वायु मंडल नष्ट हो गया था। और वहां रहना बहुत मुस्किल हो गया था। क्योंकि वहां पर बहुत सारे खतरनाक परमाणु और हाईड्रोजन बमों को वरसाया गया था। इस कहानी में जो वृता सुर राक्षस नाम का दैत्य है। यह वादलों का नेतृत्व करने वाला और इन बादलों को अपनी इच्छा से प्रयोग करने वाला एक वृतासुर नाम का राक्षसों का राजा था। जो वैज्ञानिक विधियों के द्वारा जब उसकी इच्छा हो मंगल ग्रह पर वारिष होने देता था। और जब इच्छा होता वह

बन्द कर देता था। इसके अतिरिक्त वह सभी बादलों को एक जगह किसी एक शहर के उपर एकत्रित करके, उस शहर पर इतना वारिस करता की वह शहर पुरी तरह से डुबों कर निस्तोनाबुत कर दिया जाता था। यह आज भी आधुनिक तकनिक के सहायता से वैज्ञानिक कर सकते है। इसके अतिरीक्त भी वैज्ञानिक कहीं पर भी भुकंप ला सकते है और कई प्रकार के प्राकृतिक आपदा को लाकर पृथ्वी के किसी एक हिस्से को तबाह कर सकते है। वृता सुर के ऐसा ही करने से सभी देवता और इन्द्र आदि बहुत दुःखी थे। जिसका वध इन्द्र ने दधिची की अस्थियों से बने वज्र से प्रहार करके उसके साराज्य को नष्ट कर दिया था। जिसके कारण जान बचा कर जो राक्षस वचे थे वह समन्दर के अन्दर रहते थे। और देवताओं से वह छुप कर गोरिल्ला युद्ध करते थे। वह समन्दर में उनको लुट लेते थे। जैसे आज के समय में सोमालिया आदि देशों के लुटेरे बहुत सारे देशों की पानी के जहाजों को लुट लेते है। और यहां पर जो बात कही जा रही है कि दधिची की हड्डी से वज्र बनाया गया है। यह सत्य नहीं है, वज्र दधिची ऋषि के द्वारा बनाया गया था वह एक बड़े वैज्ञानिक थे जिन्होनें यह वज्र एटम बम बनाया था। जो उनकी इच्छा के विपरीत इन्द्रादि देवताओं ने जिनकी मंगल ग्रह पर सरकार थी, उन्होने दधीचि से ले लिया था। और उसका उपयोग वृतासुर के राज्य पर कर दिया था। यहां जिसे वज्र कहा जा रहा है। वह खतनाक परमाणु बम था। जिस प्रकार से जर्मनी का रहने वाला महान वैज्ञानिक आइन्सटिन था। जिसने एटम बम की खोज थी और वह नहीं चाहता था कि इस तकनिकी का प्रयोग करके हिटलर जन संहार करे । इसलिये उसने अमेरिका में सरण ले ली थी। कि इस तरह से वह एटम के संहार से दुनिया बच जाएगी। लेकिन ऐसा नहीं हुआ अमेरिका ने परमाणु बम बनाया उसके सुत्रों कि सहायता से और उसका दूसरे विश्वयुद्ध में प्रयोग किया। जिससे जापान के दो बड़े शहर हिरोसिमा और नागांसाकि मिट्टि में मिल गये। और वहां सब कुछ समाप्त हो गया। वह एटम बम बहुत छोटा था उसका नाम वैज्ञानिकों ने लिटिल व्वाय रखा था। आज उससे बहुत बड़े बड़े बम बन चुके है। जिनका उपयोग करने पृथ्वी के समुद्र को सुखाया जा सकता है। जिसको यहां कहा जा रहा है कि अगस्त ने समन्दर के पानी को पी लिया था।

अगर पहली गाथा का सम्बन्ध मंगल ग्रह के भारत के समुद्र से है। तो दूसरी गाथा का रिश्ता मध्यभारत के विंध्य पर्वत से है। यह गाथा भी महाभारत के वनपर्व और कई पुराणों में मिलती है। एक बार विंध्य पर्वत को गुस्सा आ गया कि क्यों नहीं सूर्य मेरी भी वैसे परिक्रमा करता जैसे वह मेरू पर्वत की किया करता है। सूर्य ने कोई ध्यान नहीं दिया तो विंध्य ने ऊपर आकाश की तरफ अपना आकार बढ़ाना शुरू कर दिया। इतना बढ़ा लिया कि सूर्य की गति रुक गई। त्राहि-त्राहि करते लोग अगस्त्य के पास गए और ऋषि ने एक अद्‌भुत तरीका सोचा। वे विंध्य के पास गए और कहा कि थोड़ा नीचे हो जाओ क्योंकि मुझे तुम्हें पार कर उस ओर जाना है। विंध्य नीचे हो गया और उसे पार कर अगस्त्य ने कहा कि बस, जब तक मैं लौटूं नहीं, तुम नीचे ही रहना और वे कभी लौटे ही नहीं। तब से विंध्य नीचे ही नीचे है। यह कहानी भी अपने अन्दर वैज्ञानिकता को समेटे हुए है। यह संभव है कि कोई ग्रह या जिसे हम पर्वत कहते है। वह अन्तरिक्ष में उपस्थित हो जाये और वह सूर्य के प्रकाश को कुछ समय के लिये पृथ्वी पर आने से रोक दे। कुछ समय के लिये मान लेते है कि यह चन्द्रमा जब पृथ्वी से अलग हुआ तो पृथ्वी पर अंधकार छाने लगा जिससे और जो लोग मंगल ग्रह पर रहते थे। उनको अपने ग्रह पर खतरा नजर आया की किसी तरह यह हमारे ग्रह से टकरा गया तो यहां का जिवन समाप्त हो सकता है। इसलियें उन्होने वैज्ञानिक तरिके से उसको अपने रास्ते हटा कर उसे पृथ्वि की कक्षा में स्थापित कर दिया हो। क्योकि वह यहां पर अपने नया निवास स्थान बनाने वाले थे। आज के समय में वैज्ञानिको के लिये यह संभव है कि पृथ्वी की तरफ आने वाले किसी विशाल पर्वत के समान एश्ट्रायोड को उसके मार्ग हटा कर किसी दूसरे ग्रह के कक्षा में स्थापित कर सकते है। और जो दूसरी बात है पहले ऐसे व्यक्ती थे। और उनकी तकनिकी आज के तकनिकी से बहुत अधिक विकसित थ। वह पर्वतों से भी बात कर सकते थे। पहले के समय में यह जो आज के समय हमें जण पर्वत दिखाई देते है। वह भी चेतन की तरह कार्य करते थे। आज के वैज्ञानिक यह मानते है कि यह संभव है जिसके कुछ प्रमाण उनको मिले है। जहां तक सूर्य के प्रकाश को रोकने कि बता है किसी पर्वत के द्वारा यह एक पौराणिक कथा के अनुसार, एक बार विंध्य पर्वत और मेरु पर्वत के मध्य यह प्रतिस्पर्धा हुई। कि दोनों में से कौन इतना ऊँचा बढ़ता है कि सूर्य का मार्ग अवरुद्ध कर सके। तब ऋषि

अगस्त्य ने विंध्य पर्वत से नीचे झुकने का आग्रह किया ताकि वे देश के दक्षिणी भाग की यात्रा पर जा सकें। ऋषि अगस्त्य के प्रति सम्मान व्यक्त करते हुए विंध्य पर्वत ने अपनी ऊँचाई कम कर ली और उन्हें यह वचन भी दिया कि जब तक वे अपनी यात्रा से वापस उत्तर दिशा में नहीं लौटेंगे, तब तक विन्ध्य अपना आकर नहीं बढ़ाएंगे। ऐसा माना जाता है कि इस घटना के पश्चात् ऋषि अगस्त्य ने दक्षिण में ही निवास कर लिया और विंध्य पर्वत ने भी अपना वचन निभाते हुए पुनः कभी अपना आकर नहीं बढ़ाया।

जैसे पहली गाथा को लेकर कई सवालों का जवाब नहीं मिलता, वैसे ही कई सवाल इस गाथा के बारे में भी हो सकते हैं। पर उन्हें यहीं छोड़कर असली सवाल पूछते हैं कि आखिर इन गाथाओं का निहितार्थ क्या हैं? दूसरी गाथा का निहितार्थ तलाशना कोई मुश्किल काम नहीं। आराम से कहा जा सकता है कि ऋषि अगस्त्य ने विंध्य पार जाने के किसी सुविधाजनक मार्ग का निर्माण अपनी देखरेख में कराया होगा। जैसे सगर के वंशजों ने, अंशुमान से लेकर भागीरथ तक ने भारी मेहनत से गंगा का भव्य मार्ग बनवाया और उस पूरे महत् प्रयास को गंगावतरण की गाथा में संजो दिया गया, वैसे ही अगस्त्य के विंध्य-मार्ग-निर्माण के जटिल कार्य को इस गाथा में संजो कर रख दिया गया हो तो क्या आश्चर्य? उत्तर में आने-जाने की कठिनाई को आसान बनाने के वृहत अगस्त्य-कर्म को हमारे पुराणकारों ने इस तरह का गाथा आकार दे दिया हो तो क्या आश्चर्य? पर देश में जब मानसून थम जाता है, सावन और फिर भादों के बादलों का पानी खत्म हो जाता है तो उस वक्त खगोल विज्ञान के अनुसार दक्षिण दिशा में अगस्त्य नामक नक्षत्र का उदय होता है। दक्षिण में अगस्त्य का उदय होने का अर्थ ही यह मान लिया जाता है कि बस, अब वर्षा खत्म और सुहाने दिन आ गए हैं-उदित अगस्त्य पन्थ जल सोखा (रामचरित मानस)। हमें तो बस यही एकमात्र समझ में आने वाला कारण लगता है कि पानी सोखने वाले अगस्त्य नक्षत्र के उदय को हमारे पुराणकारों ने अगस्त्य द्वारा समुद्र पी जाने की गाथा में वैसे ही रंगबिरंगा बना दिया है जैसे सूर्यग्रहण और चन्द्रग्रहण की खगोल वैज्ञानिक घटनाओं को राहु केतु के चोरी-छिपे अमृत पीने की गाथा में रख दिया गया है।

क्या निष्कर्ष निकला? यह कि दक्षिण के इस दण्डकारण्यवासी महामुनि का कोई ऐसा दबदबा था कि नैमिषारण्य में सुनाई गई पुराणगाथाओं पर यह विराट् व्यक्तित्व छाया रहा और अगर मान लिया जाए कि अगस्त्य ने विंध्य को पार कर उत्तर से दक्षिण और दक्षिण से उत्तर जाने का आसान रास्ता बनवाया तो इस दबदबे का उचित कारण भी हमारी समझ में आ जाता है।

'विंध्य' शब्द की व्युत्पत्ति 'विध्' धातु से कही जाती है। भूमि को बेध कर यह पर्वतमाला भारत के मध्य में स्थित है। यही मूल कल्पना इस नाम में निहित जान पड़ती है। विंध्य की गणना सप्तकुल पर्वतों में है। वाल्मीकि रामायण, किष्किंधा काण्ड में विंध्य का उल्लेख 'संपाती' नामक गृध्रराज ने इस प्रकार किया है-

'अस्य विंधस्य शिखरे पतितोऽस्मि पुरानद्य सूर्यतापपरीतांगो निदग्धः सूर्यरश्मिभिः, ततस्तु सागराशैलान्नदीः सर्वाः सरांसि च, वनानि च प्रदेशांश्च निरीक्ष्य मतिरागता हृष्टपक्षिगणाकीर्णः कंदरादरकूटवान् दक्षिणस्योदधेस्तीरे विंध्योऽयमिति निश्चितः।'

महाभारत, भीष्मपर्व में विंध्य को कुलपर्वतों की श्रेणी में परिगणित किया गया है। 'श्रीमद्भागवत' में भी विंध्य का नामोल्लेख है-

'वारिधारो विंध्याः शुक्तिमानृक्षगिरि पारियात्रो द्रोणश्चित्रकूटो गोवर्धनो रैवतकः।' कालिदास ने कुश की राजधानी कुशावती को विंध्य के दक्षिण में बताया है। कुशावती को छोड़कर अयोध्या वापिस आते समय कुश ने विंध्य को पार किया था-'व्यलंङ्घयद्विन्ध्यमुपायनानि पश्यन्मुलिन्दैरुपपादितानि। विष्णुपुराण में नर्मदा और सुरसा आदि नदियों को विंध्य पर्वत से उद्भूत बताया गया है-'नर्मदा सुरसाद्याश्च नद्यो विंध्याद्विनिर्गताः।' पुराणों के प्रसिद्ध अध्येता पार्जिटर के अनुसार मार्कण्डेय पुराण में जिन नदियों और पर्वतों के नाम हैं, उनके परीक्षण से सूचित होता है कि प्राचीन काल में विंध्य, वर्तमान विंध्याचल के पूर्वी भाग का ही नाम था, जिसका विस्तार नर्मदा के उत्तर की ओर भोपाल

से लेकर दक्षिण बिहार तक था। इसके पश्चिमी भाग और अरावली की पहाड़ियों का संयुक्त नाम पारिपात्र था। पौराणिक कथाओं से सूचित होता है कि विंध्याचल को पार करके अगत्स्य ऋषि सर्वप्रथम दक्षिण दिशा गए थे और वहां जाकर उन्होंने आर्य संस्कृति का प्रचार किया था।

विन्ध्य क्षेत्रं सम क्षेत्रं, नास्ति ब्रह्माण्ड गोलके" जगत जननी मूल प्रकृति त्रिगुणात्मिका माँ विन्ध्यवासिनी की परमप्रिय एवं त्रिलोक्य पूज्यस्थली है। विन्ध्याचल साधकों के लिए भी परम पावन सिद्धपीठ तपोभूमि है। पर्यटकों के लिए प्राकृतिक सौन्दर्य से भरपूर विन्ध्य क्षेत्र का गौरवशाली इतिहास रहा है। यहाँ के अनूठे प्राकृतिक सौन्दर्य, आसमान को छूते पहाड़ झरने, जल-प्रपात तथा पुरात्तव में रुची रखने वालों के लिये पहाड़ों में बने गुफाँओं में भित्ति चित्र के इतिहास को समेटे विन्ध्यक्षेत्र गाथाओं से परिपूर्ण है। भौगोलिक दृष्टि से विन्ध्याचल सम्पूर्ण भारतवर्ष का मध्य बिन्दु है। इतिहास के प्रमुख धर्म-ग्रन्थ व पुस्तकों में श्री विन्ध्यवासिनी देवी व विन्ध्य क्षेत्र की चर्चा की गयी है। विन्ध्य क्षेत्र की सर्वाधिक चर्चा औशनस उपपुराण के विन्ध्यमहात्म्य खण्ड में प्राप्त होती है। वैसे तो वाल्मिकी रामायण में सुग्रीव द्वारा विन्ध्य क्षेत्र व सम्पूर्ण भारतवर्ष का भौगोलिक वर्णन प्राप्त होता है। विन्ध्याचल मण्डल के ही जिला सोनभद्र क्षेत्र में प्राप्त जीवाश्म एक अरब पचास साल करोड़ वर्ष प्राचीन माना गया है। विन्ध्य क्षेत्र की श्रृंखला भारत वर्ष के सभी पर्वत श्रृंखलाओं से सबसे लम्बी व विस्तृत है। यह श्रृंखला बंगाल से होते हुये बिहार, झारखण्ड, विन्ध्याचल, (मीर्जापुर) उत्तर प्रदेश होते हुए मध्य प्रदेश व महाराष्ट्र तक अपनी अनुपम छटा बिखेर रही है। विन्ध्य पर्वत के ऐशान्य कोंण विन्ध्य क्षेत्र में ही माना जाता है इस कोंण पर आदि शक्ति माँ विन्ध्यवासिनी विराजमान है। जहाँ पतित पावनी माँ गंगा विन्ध्य पर्वत को स्पर्श करते हुए जगत जननी का पाँव पखारती है। वास्तु शास्त्र के अनुसार ऐशान्य कोंण धर्म का कोंण माना जाता है जहाँ भक्तों का कल्याण के लिए वास करनें वाली शक्ति अपने भक्तों का मनोरथ पूर्ण कर रही है। एक अरब से अधिक जनसंख्या वाले इस देश की घड़ियों का मानक (समय) चाहे जम्मू-काश्मीर, कन्याकुमारी, अरुणाचल प्रदेश, महाराष्ट्र मुम्बई या दिल्ली हो, इन सब स्थानों का समय विन्ध्याचल से निर्धारित होता है। यही पर भारतीय मानक समय (आई.एस.टी.) का आधार बिन्दु है। इसी लिए विन्ध्यवासिनी को बिंदुवासिनी भी कहा जाता है। भगवान भुवन भाष्कर की प्रथम रश्मिया सर्वप्रथम विन्ध्याचल की ही धरती पर पड़ती है 27 जनवरी 2007 दिल्ली से आयी हुई स्पेश नामक संस्था की टीम ने अपना शोध पूर्ण करके एक बोर्ड लगाया है और उल्लेखित किया है कि 82.5 पूर्वी देशान्तर पर विन्ध्याचल स्थित है, जो भारतवर्ष का मध्य बिंदु है। यही से पूरे देश का मानक समय निर्धारित होता है। यह बोर्ड विन्ध्यवासिनी मन्दिर से दक्षिण अमरावती चैराहा इलाहाबाद मीरजापुर मार्ग पर लगाया गया है जो विन्ध्य क्षेत्र के त्रिकोण परिक्रमा के अन्तर्गत आता है। भौतिक दृष्टि से देखने पर तो यह विन्ध्य पर्वत पश्चिम बंगाल से लेकर महाराष्ट्र तक फैला है इससे यह जिज्ञासा और सहज रुप से प्रकट होती है कि माँ विन्ध्यवासिनी का वह परम् स्थान कौन सा है जहाँ माँ अपने सम्पूर्ण श्री विग्रह से आसीन हैं। बृहद नीलतंत्र के अनुसार "संगमे विन्ध्य गंगाया विन्ध्य विन्ध्य निवासिनी" से यह बात पूर्णतया स्पष्ट हो जाती है कि नागाधिराज विन्ध्याचल तथा देवनदी गंगा का जहाँ मिलन स्थल है उसी स्थान पर माँ विन्ध्यवासिनी का दिव्य धाम है। संम्पूर्ण भारत में दृष्टिपात करने पर विन्ध्य पर्वत तथा गंगा जी का संगम इसी क्षेत्र में हुआ है माँ विन्ध्यवासिनी का यह पीठ शक्तिपीठ न होकर सिद्धपीठ व महाशक्तिपीठ है। शक्तिपीठ वे है जो सती के अंग गिरा हैं। यह महामाया का सनातन पीठ है जो अपने पूरे श्री विग्रह से विराजमान हैं। माँ विन्ध्यवासिनी की जो अन्य दस शक्तियाँ हैं वो दस महाविद्या के नाम से जानी जाती है। उनका ही वाममार्ग से पूजन का विधान है। माँ विन्ध्यवासिनी की ये दस महाशक्तियाँ भी विन्ध्य क्षेत्र के दस दिशाओं में विराजमान है जिसका पूजन वाममार्ग से इस क्षेत्र में होता है।

मिर्ज़ापुर शहर, दक्षिण-पूर्व उत्तर प्रदेश राज्य, उत्तर-मध्य भारत, वाराणसी (पहले बनारस) के दक्षिण-पश्चिम में गंगा नदी के तट पर विन्ध्याचल की कैमूर पर्वत श्रेणियों में स्थित है। इसके आसपास के क्षेत्र में उत्तर में गंगा के कछारी मैदान का हिस्सा और दक्षिण में विंध्य पर्वतश्रेणी की कुछ पहाड़ियाँ हैं। यह क्षेत्र सोन नदी द्वारा अपवाहित होता है। इसकी सहायक धारा रिहंद पर बांध बनाया गया है, जिससे विशाल जलाशय का निर्माण हो

गया है और इसमें जलविद्युत उत्पादन भी होता हैं। यहाँ नदी तट पर कई मंदिर और घाट हैं। विंध्याचल में काली का प्राचीन मंदिर है, जहाँ तीर्थ्यात्री जाते हैं।

मिर्ज़ापुर की स्थापना संभवतः 17वीं शताब्दी में हुई थी। 1800 तक यह उत्तर भारत का विशालतम व्यापार केंद्र बन गया था। जब 1864 में इलाहाबाद रेल लाइन की शुरुआत हुई, तो मिर्ज़ापुर का पतन होने लगा, लेकिन स्थानीय व्यापार में इसका महत्त्व बढ़ता रहा। मिर्जापुर क्षेत्र में सोन नदी के तट पर लिखुनिया, भलदरिया, लोहरी इत्यादि सौ से अधिक पाषाणकालीन चित्रों से युक्त गुफ़ाएँ तथा शिलाश्रय प्राप्त हुए हैं। ये चित्र लगभग 5000 ई.पू. के माने जाते हैं। यहाँ शिकार के सर्वाधिक चित्र बने हुए हैं। जलती हुई मशाल से बाघ का सामना करता हुआ मानव लोहरी गुफ़ा में चित्रित किया गया है। लिखुनिया गुफ़ा में कुछ घुड़सवार पालतू हथिनी की सहायता से एक जंगली हाथी को पकड़ते हुए चित्रित हैं। इन घुड़सवारों के हाथों में लम्बे-लम्बे भाले चित्रित किए गए हैं। यहाँ पर मृत्यु के कष्ट से कराहता हुआ ऊपर की ओर मुँह किए हुए सूअर, जिसकी पीठ पर नुकीला तीरनुमा हथियार घुसा हुआ है, स्वाभाविक रुप से चित्रित किया गया है।

अधिकांश भूमि नहर द्वारा सिंचत है तथा यहाँ चावल, जौ और गेहूँ की खेती होती है। यह व्यापार का एक बड़ा केन्द्र है। विशेषकर कपास और लाख का, यह अच्छे कालीनों, कम्बलों तथा रेशमी कपड़ों के लिए प्रसिद्ध है। यहाँ पर ताँबे, काँसे तथा अन्य धातु के बर्तन भी बनाए जाते हैं। प्रमुख रेल लाइन और सड़क जंक्शन पर स्थित यह स्थान औद्योगिक केंद्र भी है, जहाँ कपास मिल, बलुआ पत्थर की कटाई और पीतल के बर्तन व क़ालीन निर्माण उद्योग स्थित हैं।

14,01,2018

2 विजयपुर राज्य के दो स्तम्भ कैलाश और मानस

मिर्जापुर के कुछ क्षेत्रों का वर्णन महाभारत में भी आता है यही के राजा भुरीश्रवा थे जिन्होंने महाभारत में युद्ध किया था। और विरगती को प्राप्त हुये थे। गिता में भी इसके बारें में वर्णन आता है। भुरीश्रवा का युद्ध महाभारत के युद्ध में सात्विक के साथ हुआ था। इस संबंधित बहुत सारे प्रमाण अहरौरा के पास भुआलीखास गांव में आज भी उपलब्ध है।

जैसा कि हमने जानते है कि मिर्जापुर नाम का अर्थ होता ही राजावों का शहर या राजावों का नगर होता है। जिस समय भातर पर मुसलमानों का राज्य था। जिसके बाद अंग्रेजों का अधिकार मिर्जापुर पर हो गया। जब इसका विन्ध्य क्षेत्र का नाम बदल कर मिर्जापूर कर दिया गया। मिर्जापुर के विन्ध्य क्षेत्र से थोड़ा सा उत्तर में विन्ध्य कि घाटियों में उस समय जगंल पहाड़ के अतिरिक्त एक छोटा सा राज्य शियासत के रूप में था जिसको विजयपुर के नाम से जाना जाता था। जहां पर एक राजा हरिश्चन्द्र नाम राज्य करते थे। उनके दरबार के मुख्य रत्नों में एक विद्वान ब्राह्मण कैलाश नाम भी थे। (जिनको लोग प्रेम से कैलाशकहकर बुलाते थे) पुराने समय की बात है राजा को को कोई संतान नहीं हो रही थी शिवाय एक लड़की के जिसकी शादी के बाद वह राजा रानी बहुत चिन्तित थे। वह एक लड़का चाहते थे जिसके लिये उन्होंने बहुत कुछ किया मगर लड़का नहीं हुआ। इसके बारे में और कुछ विशेष मंत्रणा करने के लिये उन्होंने अपने मंत्री और विद्वानो कि एक सभा दरबार में बुलाई। जिसमें इस विषय पर राजा ने अपने अभिलाशा को सबके सामने रखा। क्योकिं कि उस समय मुगल सामराज्य अपनी उचांईयों पर था उनके पास मुगलो का संदेश भेजा गया था । कि वह अपना राज्य मुगल सामराज्य के हवाले कर दे या फिर युद्ध के लिये तैयार रहे, किसी भी समय आक्रमण हो सकता है। राजा उस समय बहुत चिंतित थे कि उनकी मृत्यु के बाद इस राज्य कि देखभाल कौन करेगा? राजा के इस प्रस्न का उत्तर किसी के पास नहीं था। राजा के अधिकार में उस समय मिर्जापुर का लगभग सभी हिस्से थे। जो काफी बड़ा और विस्त्रृत

था। जिसका क्षेत्र उत्तर में जौनपुर तक पुरब में वनारस तक पश्चिम इलहाबाद से सटा हुआ था। और दक्षिण में मध्य प्रदेश के बार्डर तक फैला हुआ। उस समय वनारस में राजा काशी नरेश का राज्य था। इलहाबाद में मांडा के राजा थे जिने पौत्र विपी सिहं थे। जो भारत के अंग्रेजो से आजाद होने पर कुछ समय के लिये भारत प्रधानमंत्री भी चुने गये थे।

राजा ने अपने मंत्रियों और सेनापतियों को बुला कर इनके सामने यह प्रस्ताव रखा कि अपने राज्य को मुगलों को सौप देना चाहिये इससे व्यर्थ में नर संहार होने बच जायेगा। और हम सब को कुछ क्षेत्र हमारे जीने खाने के लिये मुगल सामराज्य से अवश्य मिल जायेगा। राजा कि इस बात को सुन कर लगभग सभी लोग तैयार होगये। शिवाय ब्राह्मण कैलाशके, दरबार में सबकि बातों पर अपनी असहमती जताते हुए खड़े होगे और राजा से अपनी बात कहने कि इजाजत मांगी। पहले तो राजा ने कैलाशको बहुत तेज घुर कर देखा फिर कुछ पल सोच कर उनकी विद्वता और प्रसिद्धि के बारें में विचार कर के कैलाशको अपनी बात कहने कि इजाजत दे दी। कैलाशनें खड़े हो कर सभी दरबारियों और राजा हरिश्चन्द्र को संबोधित करते हुए कहा कि इस तरह से हमको अपनी हार को स्विकार करके बिना युद्ध कियें ही अपने राज्य को मुगलो के अधिन करना कोई श्रेष्ठ कार्य नहीं है। इससे हमारा बहुत अपमान और होगा हम सब कायरो के श्रेणी में माने जायेंगे। हमें युद्ध करना चाहिये हम जानते है कि उनके पास बहुत बड़ी सेना है। ऐसे बहुत बड़े बड़े सुरमा और योद्धा है। इस तरह से हम अपने विरों और योद्धाओं का अपमान नहीं कर सकते है। राजा ने कहा कैलाशतुम भुल रहे हो कि हमारी सेना और हमारे योद्धा सब मिला कर उसी प्रकार से है जैसे किसी उंट के मुंह में जिरा। हम कैसे उस विशाल सेना से युद्ध कर सकते है, क्या तुम्हारे पास कोई योजना है, तो हमें बताओ हम अवश्य विचार करेगें। कैलाशने कहा कि हम इसके लिये अपने पड़ोसी राजाओं से मित्रता कर सकते है। इलहाबाद के राजा और काशी के राजा की सेना यदि हमारे पास हो जाती है। तो हम मुगल साशको अपने राज्य में प्रवेश करने से रोक सकते है, और हम सब मिल कर मुगल सेना से लड़ते है, इसके साथ मुगल सेना को जो हमारे क्षेत्रों से पिरचित नहीं है। उसको हम सब गंगा कि तराईयों में घेर कर मार सकते है। यदि एक बार मुगल सेना विन्ध्य पर्वत की घाटी में गंगा पार करके पहुंच जाती है। तो हम उसे वापिस नहीं जाने देगें । दक्षिण में पर्वत है जहां से भागना संभव नहीं है उत्तर में गंगा है। पुरब में भी पहाड़ीया है मुगलों कि सेना उत्तर से हि हमारे नगर में घुसेगी हमें करना क्या है? किसी तरह से छानबे क्षेत्र को पानी से भर देना है। रात्री के समय पश्चिम के रास्ते से जिससे उनकी सेना पुरी तरह से घिर जायेगी और हमारे सैनिक आसानी से उन्हें मार सकते है। राजा हरिश्चन्द को कैलाशकी योजना में दम मालुम पड़ा और उन्होनें कहा तुम ठीक कह रहे हो।

अगले हि दिन पत्र लिख कर इलहाबाद और वनारस के राजाओं से सम्पर्क साधा गया, और युद्ध कि तैयारी की जाने लगी और सेनापति के स्थान पर इस युद्ध का सेना पती (वैजु) को राज ने नियुक्त किया। सारी सेना और सभी अधिकारी सब सेनायें कैलाशके आदेशों में कार्य करने लगे।

इस तरह से कैलाशने एक अलग आपात कालिन सभा बुलायी। जिसमें राज्य के मुख्य अधिकारीयों को भी सामिल किया गया। और कुछ गुप्तचरों को भी काम पर लगाया गया, जो आने वाली मुगल सेना की सभी गुप्त जानकारी लगातार कैलाशको देते रहे। इसके अतिरिक्त पड़ोसी राजाओं के पास भी कैलाशने अपने दो विश्वसनिय आदमीयों को संदेश लेकर भेजा। कि आप हमारे साथ मिल कर मुगलों का सामना करे, अन्यथा सभी मुगलों के अत्यचार का सामना करने के लिये तैयार रहे। इसके बाद कैलाशने सभा का समापन किया। और अगले दिन मिलने का वादा करके सबसे विदा ले कर अपने घर को चल दिया। कैलाशस्वयं एक बहादूर विद्वान व्यक्ति के साथ अपने नौ शक्तीशाली पुत्रों कि क्षत्र छाया में रहता था। जिससे जो कैलाशका विरोध करने वाले राज्य में थे। उन सब कि बैजु के सामने विल्कुल नहीं चलती थी। कैलाशने अपने प्रत्येक पुत्रों को एक एक सेना की टुकड़ी की कमान सौप कर सब को युद्ध के मैदान में गंगा कि ताराई में भेज दिया। और एक ऐसी नहर का निर्माण करने को कहा गया जिससे गंगा का पानी उस विशाल विन्ध्य की घाटी में पहुंच सके जो जंगली और उसर भुमि है। कैलाशके नौ पुत्र सब के सब एक से बढ़कर एक सुरमा और बहादुर व्यक्ती थे। जिनके

खुन में वफादारी और शाहस कुट कुट कर भरी थी। सबसे बड़ा वेटा राजेन्द्र नाथ जो एक खतरनाक तलवार वाज तीर बाण घोड़ सवारी और हर प्रकार के युद्ध की कला कौशल से युक्त था। इसी तरह कैलाशके प्रत्येक पुत्र हर तरह से सबल और सक्षम थे। जिनपर कैलाशको बहुत अभिमान के साथ स्वाभिमान भी था।

जिस गांव का कैलाशहै उसके हि पड़ोस में एक गांव के रहने वाले व्राह्मण परिवार में सदानन्द नाम के व्यक्ती भी रहते है। जिनको प्रेम से लोग (मानस के नाम से भी पुकारते है) इनके भी दो पुत्र है जो बहुत विर और सुरमा के साथ योद्धा भी है। जिनमें से एक मुरली और दूसरे विद्याधर है। यह दोनो मानस के साथ कार्य भार देखते थे। जो राजा के द्वारा जमिन का बहुत बड़ा हिस्सा जो लाखों एकड़ में फैला है। जहां पर खेती का काम होता है जो गंगा किनारें उत्तर से लेकर दक्षिष विन्ध्य पर्वत तक फैला है। जिसकी देखभाल मानस और और उसके पुत्र करते है, यह कैलाशके विशेष वफादार और परम मित्र है। मानस सारी जमिन में खेती का कार्य कराते है। और उसकी लगान आदि किसानो और कास्तकारों से लेकर राजा के कोश में जमा कराने के कार्य के साथ, अनाज संग्रह कराना इत्यादि कार्य कि इनके जीम्मेदारी में होता है। यह सब बहुत संपन्न और राजा के दो बाजु के समान है। राजा हरिश्चन्द्र इन पर बहुत भरोषा रखता है। इसलिये इनको काफी जमिन दे रखा है। जिसमें यह अपनी स्वयं कि खेती कराते है। यहां इनके अन्तर्गत कई सारे गांव भी दिये गये है। इनके पास बहुत सारे घोड़े हाथियों कि व्यवस्था राजा के द्वारा दि गइ है। जो इनके सेवा में हमेशा दिन रात तत्पर रहते है। जैसे कपंड़ा साफ करने के लिये धोबी का खानदान जिसके लिये अलग से जमिन को दिया गया है। लकड़ी का कार्य करने वाला लुहार, उसको भी जमिन दिया गया है जिने खाने के लिये। कुहार मिट्टि आदि का बर्तन बनाने वाले, नाई,आदि है। इनके बहुत सारें शत्रु भी है। जो इनकी समृद्धि और शक्ती को देख कर जलते है। इसलिये यह लोग अपना गुट बना कर इस समय मुगल सेनावों से मिलकर इनके खिलाफ सड़यन्त्र कर रहे है।

जिसमें एक सबका नेता कमला नाम का व्यक्ती है। जो कोल भिल का नेता था जिसने मुगल सेना जिसने विजयपुर सामाराज्य को जितने के लिये उत्तर के जंगलों में अपना पड़ाव डाल रखा है। जहां पर कमला रात्री के समय जाकर विजयपुर के राजा की गुप्त जानकारियों को और उसके इरादे के बारें में बताता है। कि राजा हरिश्चन्द्र मुगल सामाराज्य के साथ विद्रोह करने के लिये तैयार हो गये है। जिसमें कैलाशने उनको भड़का कर युद्ध के लिये तैयार कर लिया है, जिसके साथ वनारस और इलहाबाद के राजाओं की सेनायें भी होगी। उस समय मुगल सामराज्य कि सेना का सेना पति शमशेर बहादूर था। उसने अपनी दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए अपने गले से एक मोतियों कि माला निकाल कर कमला के हाथों में रखते हुए कहा, आने दो सालों को हम उनको वैसे ही भुजेगें जैसे दाना भुजने वाला दाने को भर भुजता है अपनी भरसाई में, और आगें शमशेर नें कहा कमला को कि तुम जाकर विजयुर नगर की सेना और गांव में जाकर यह गुप्त रूप से प्रचार कर दो कि यदी जो हमारे मुस्लिम धर्म को ग्रहण कर लेगा, उन सब को माफ कर दिया जायेंगा। और उनको हम विजयपुर रियासत जितने के बाद बड़े बड़े पदों पर अपने अधिकारी नियुक्त करेंगें, इसलिये हमारा साथ दे। और कमला को वहां का नया राजा बना दिया जायेगा। जिसको सुन कर कमला बहुत प्रसन्न हुआ। और रात्री के समय अपने घोड़े पर सवार हो कर विजयपुर के लिये रवाना हुआ, और सुबह होने से पहले भोर में ही विजयपुर राज्य कि सिमा में प्रवेश कर गया। जिसकी सुचना कैलाशके गुप्तचरों के द्वारा कैलाशऔर उसके पुत्र को होगई।

कैलाशने कहा कि उसको रास्ते ही पकड़ कर जेल में डाल दिया जाये। ऐसा ही किया गया कमला को सैनिको ने पकड़ कर जेले में डाल दिया गया।

अगले दिन राजा हरिश्चन्द्र के दरबार में कमला को पेश किया गया जहां पर उसने अपने अपराध स्विकार कर लिया। और मुगल सेनापती कि योजना और उसके द्वारा दि गई मोतिये कि माला भी राजा के समक्ष प्रस्तुत किया । राजा ने कहा तुम्हारी गद्दारी की सजा मौत दि जाती है। और अपने सैनिको को आज्ञा दिया कि इसको ले जाकर विजय पुर नगर के चौराहे फांसी पर लटका दिया जाये। जिससे राज्य के और

नागरिकों को भी ज्ञात हो हमसे गद्दारी की सजा क्या है? इसके अतिरीक्त जो इसके साथी उनके भी अंग भंग कर दिया जाये। सिपाही गद्दार कमला को अपने साथ ले गये और रात्री के समय उसको भरे बाजार के चौराहे पर फांसी पर लटका दिया जिससे कमला के प्राण पखेरु पल में ही उड़ गये। और दूसरें सभी उसके सहयोगि के पकड़ कर उनके अंग भग कर कर दिया गया।

दूसरे दिन राजा हिश्चन्द्र के दरबार में एक दुत ने आने की गुजारिस कि और उसको आने की आज्ञा राजा के द्वारा दि गई । जब वह आया तो राजा ने उससे पुछा, दुत से कि बताओं क्या समाचार है? दुत ने बताया कि इलहाबाद और बनारस के राजाओं के प्रतिनिधी आयें है। हमारे युद्ध के निमंत्रण पर आप से मिलना चाहते है। राजा ने कहा उनको दरबार में आने दे। दरबार में दोनों राज्य के प्रतिनिधी आयें। और पहले राजा का अभिवादन किया। और कहा कि हमारी सेनाये मुगलसामराज्य की सेना से टक्कर लेने के लिये तैयार है। राजा ने कहा हमे ऐसी ही आपलोगों के राजाओं से उम्मिद थी।

कैलाशने युद्ध कि पुर्वसंध्या पर सभी को संबोधित करते हुये। एक लंबा चौड़ा भाषड़ देकर अपनी सेना और सभी अधिकारियों को उत्साहित करते हुये, सबसे पहले सबका यथा योग्य अभिवादन करके कहा कि मेरे मित्रों यह संकट का समय है। और यही समय हम सब कि परिक्षा का है। हम सब जानते है कि इस विश्व ब्रह्माण्ड के उद्भव से पहले केवल एक अदृश्य शक्ती परमेश्वर के रूप में विद्यमाम थी। उसने इच्छा की मैं अनन्त रूपों में हो जाऊ। उस अदृश्य परमेश्वर ने एक बृहद्तम उद्घोश रूप शब्द ओम का उच्चारण किया जो परमेश्वर का निज नाम है। जैसा कि वेद की मान्यता है जिसमें शब्द ज्ञान है। इस तरह से एक मायने में शब्द को भी ईश्वर या ब्रह्म कहते है। इस परमेंश्वर के ओ३म् नाम के उच्चारण मात्र से अदृश्य जगत से दृश्य जगत में बहुत सुक्ष्म एक अणु का सृजन हुआ जिसमें प्रथम ब्रह्म कण, दूसरा विष्णु कण, तीसरा महेश कण कहते है। यह एक परमाणु बन गये, और यह ब्रह्म कण निरंतर विस्तार करने लगा। जिससे आकाश का जन्म हुआ, जिससे मन बना और उसी एक मन को अनन्त ब्रह्माण्डों का गर्भ कह सकते है। यह उस परमेंश्वर के लिये कच्चा सामग्री कि भाती था। जिससे ही वह अनन्त किस्म की इस अद्भुत जगत की रचना की, जैसा की हमारें प्राचिनतम शास्त्रों में आता है कि अग्नी, वायु, जल, और पृथ्वी यह पांच प्राकृतिक भौतिक दृश्य मय पदार्थ है। जिस हम अपनी नग्न आखों से देख सकते है। यही महेश कण है, यह एक ही पदार्थ से अलग अलग रुपों में बिभक्त हुये है। जैसा कि हम सब जानते है कि जल एक ऐसा पदार्थ है जिसमें आग और हवा भी है। जिस प्रकार से वायु आक्सिजन जीवन के लिये आवश्यक तत्व है। जिसको जल के अन्दर रहने वाले जलिय जीव मछली आदी पानी में से छान कर स्वय लेते है। और अपने आप को पानी के अन्दर जीने लायक बनाते है। पानी के एक परमाणु में दो तत्व है आग और हवा और इससे तीसरा स्वयं जल बनता है, चौथा तत्व आकास है, इनके मध्य में ही विद्यमान है पांचवा तत्व यह पृथ्वी है, जो इन चारों के मेल से बनी है। सर्व प्रथम ज्वलनशिल गैसें थी जो आगे चल कर अग्नी का रूप धारण किया जिनसे बहुत सारें तारों का उदय हुआ। इन तारों से अनन्त ग्रहों का उद्भव हुआ। और फिर इन ग्रहों पर जीवों का उद्भव हुआ क्रमशः समय के साथ जब ग्रह और तारें आकाश गंगा में स्थापित हो गये। तो उसके बाद इसमे उपस्थित कुछ ग्रहों पर जैसे शुक्र, वृहस्पती , मंगल, आदी ग्रहों पर जीवन का उद्भव हुआ। इनको व्यवस्थित रुप से उस परमेश्वर ने पैदा किया सबसे पहले शुक्र ग्रह पर आज के अरबो खरबों साल पहले वायु मंडल निर्मित किया गया, उसके बाद उस ग्रह पर वनस्पती युग आया। जिससे तरह तरह के वृक्ष लतायें पेड़ पौधों को उत्पन्न किया गया, उसके उपरान्त देव युग, फिर मनु युग आया। अर्थात मन का सृजन हुआ जो आकाश का ही एक रुप है। यह विष्णु कण के रूप में है। क्योकि मन ही है, जो दोंनों में एक साथ भाषता है। अर्थात मन विशुद्ध रूप से ब्रह्म के स्वरुप को साक्षात्कार करके उनसे एकात्म कर सकता है। और यही मन प्रकृती के मुख्य देवता महेश से भी विशुद्ध रूप से जुण कर इस दृश्य मय जगत का सृजन कर सकता है। जो मन पहले ग्रहों में तारों में रहा फिर वनस्पतियों में रहा फिर इसने एक कदम आगे बढ़ कर चलते फिरते प्राणियों और सुक्ष्म से बृहद जीवों के शरिर का रूप ग्रहण किया। सबसे अन्त में मानव को शरीर का उद्भव हुआ। इस मानव को स्वयं का ज्ञान पर्मेश्वर के सामन था। प्रारंभ से इसका झुकाव प्रकृती की तरफ अधिक रहा

जिसके कारण ही यह निरंतर अवनती ही करता रहा। जिसको हम यह कह सकते है। कि यह मन ही बहुत अधिक शरीरों को धारण किया जिसमें बहुत सारें देवी देवता और अवतार आते है। ऋषि महर्षि के शरीर में यह मन उपस्थित हुआ। अवनती के कारण ही यह एक ग्रह को नष्ट करता हुआ दूसरे ग्रह पर अपना निवास बनाता रहा। शुक्र ग्रह के वायुमंडल को और वहां क सभी जीवों का अन्त करके, यह बृहस्पती पर अपनी वस्तिया वसा लिया। और अरबों सालों तक उस ग्रह के संसाधनो का दोहन किया और उसको भी अधमरा करके जब देखा की इस पर जीवन का रहना संभव नहीं है । तो वह मंगल ग्रह पर अपना निवास स्थान बनाया। वहां पर भी अरबों सालों तक रहा जब उस ग्रह के जैविक संसाधन अंत हो गये, तो यह मानव हम सब के पुर्वज इस पृथ्वी पर अपना निवास बनाने के लिये आगये। यह मन ही परमेश्वर के साथ एक हो कर ज्ञान वान बन कर अपने ज्ञान से ही सभी जीव जन्तुओं का पुनः सृजन कर दिया, यहां पृथ्वी पर। सर्व प्रथम ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीन पुरुष हुए इन तीनो के अधिकार में ही यह सम्पूर्ण दृश्य मय जगत हो गया। जैसा की मैने पहले बताया कि महेश जिनको हम शीव के नाम से भी जानते है। यह संहार के देवता के रूप में माने जाते है। विष्णु अर्थात जो मन के स्वामी है जिनके अधिकार में दृश्य और अृदृश्य दोनों प्रकार के जगत में संतुलन बनाने का कार्य है। जो इस जगत के पालन करता है। तीसरे ब्रह्मा जिनका मुख्य कार्य है। जगत का निरंतर सृजन करना। ब्रह्मा ने ही सर्व प्रथम अपनी वुद्धि से ब्राह्मणी नाम की स्त्री को जन्म दिया। इससे दो पुत्र उत्पन्न हुए, एक यक्ष दूसरा रक्ष अर्थात जैसा की नामों से प्रतित हो रहा है। कि यक्ष नाम का जो पुत्र ब्रह्मा के थे वह सिर्फ पवित्र कार्यों को करते थे जिसमें यज्ञ सर्व श्रेष्ठ कर्म है। जिससे ही इस विश्व ब्रह्माण्ड की रक्षा संभव है। दूसरे पुत्र रक्ष थे, जिसका कार्य था यज्ञ रूपी श्रेष्ठ कर्मों की निरंतर रक्षा करना। जो आगे चल कर देवता और दैत्य के रूप में विख्यात हुये इस जगत में। जब इस जगत में बहुत समय तक देवता और दैत्यों ने राज्य किया और इस दृश्यम जगत के आकर्षण में आशक्ती के कारण दोनों अपने मुख्य कर्मों से विरक्त होने लगे। जिससे उन दोनों में द्वेश और राग ने अपना स्थाई निवास स्थान बना लिया। जिसके परिणाम स्वरुप काम और क्रोध ने भी अपनी जड़े गहरी जमा ली। इसका परिणाम यह हुआ कि यज्ञ रूपी कर्म निरंतर कम होता गया। और निकृष्ट कर्मों की मात्रा में इजाफा होने लगा। जिसके कारण दोनो में संघर्ष होने लगा। यहां भारत भुमि पर उनको आर्य और अनार्य के नाम से जानते है। जैसे राम कृष्ण आदी के पुरखे आर्यों में आते है, रावण आदी के पुरखे राक्षस में आते है। इन्हीं को देवता और दैत्य कहते है, यह दोनो ही ऋषि महर्षियों की संताने थी जिनके पिता स्वयं ब्रह्मा है। इनके ही वंसज आज भी इस जगत में चल रहें है। एक श्रेष्ठ किस्म के मानव वह जो देवता के समान है। जो दूसरों के दुःख दर्द पिड़ा को समझते है। जो सत्य और धर्म की रक्षा करके दुष्टो के संहार के लिये इस पृथ्वी प्रकट होते है। जिनकी संख्या अत्यधिक कम है। दूसरे राक्षश दैत्य है, जिनकी संख्या बहुत अधिक है। जैसा की हम सब जानते है कि जो श्रेष्ठ लोग पहले थे जिनमे से कुछ के बारें हम अच्छी तरह से जानते है। जैसे राम या कृष्ण जिनको भारत का बच्चा बच्चा जानता है। उनको लोग भगवान और विष्णु का अवतार मानते है। इनके पास इतनी क्षमता थी कि यह जिसे हम आज जड़ समझते है। जैसे पानी जो सागर में विद्यमान है जिसने उनको रास्ता दिया था। उसके उपर पुल बना कर वह रावण को मारने के लिये लंका गये थे। दूसरा कृष्ण ने गोबर्धन पर्वत को अपनी कानी उगंली से उठ लिया था। अगस्त ऋषि ने सागर को सुखा दिया था। राम के ही बंसज थे भगिरथ जिन्होंन गंगा को आकाश से जमिन पर लाये थे। इसके पिछे मैं यह बताना चाहते हूं। कि पहले लोग इन पदार्थों के देवता शिव की आरधना करके उनसे अपना मन चाहा कार्य सिद्ध कर लेते थे। दूसरी बात जो मैं बताना चाहता हूं, वह यह है कि पहले जो शुक्र, वृहस्पती, मंगल पर श्रृष्टि कैसे खत्म होगई, उसका कारण यही है कि देवता और दैत्यों का निरंतर युद्ध संग्राम होता रहा। जब देवताओं की संख्या कम होने लगी दैत्यों का अधिकार ग्रहों पर होने लगा। हर तरफ त्राही त्रही मचने लगी हर कोई प्रताणित होने लगा। तब जैसा की कृष्ण गीता में कहते है यदा यदा धर्मस्यः जब जब पृथ्वी पर दुष्टों की संख्या और अत्याचार बढ़ेगा और धर्म का नाश होगा। तब तब मै यहां जन्म लेकर उस ग्रह का उद्धार करुगा। और उन सब का सामराज्य सामाप्त करके धर्म और सत्य के राज्य की स्थापना करुगा। यह एक सिद्धान्त इसी पर चल कर परमेश्वर ने मानव शरीर में कुछ समय के लिये अवतरित हो कर संपूर्ण जगत को अधर्म से मुक्त किया। जिसमें उस ग्रह के राक्षस बंशों को खत्म करने के लिये खतरनाक युद्ध हुए। जिसमें आज से भी आधुनिक और खतरनाक हथियारों का प्रयोग किया गया था। उनके

पास परमाणु बम आदि कि श्रेष्ठतम और उत्तम किस्म के खतरनाक अस्त्र शस्त्र थे। इसका नया प्रमाण पृथ्वी पर मिला है सिन्धु घाटी सभ्यता और बैदिक शभ्यता के अन्त का कारण यह परमाणु बम ही थे। जिनको हमारे पुर्वजों ने इस पृत्वी पर गिराया था। पहले के समय में अति उत्तम विमान और स्पैसक्राफ्ट थे। जो आकाश में प्रकाश की गती से यात्रा करके एक ग्रह से दूसरे ग्रह पर आसानी से पहुंच जाते थे। पहले के समय में एक राक्षस राजा शाल्व था जो लाखों साल जिन्दा वाला था, क्योकि उसने अपनी चिकित्सा की उत्तम विधियों के सृजन से उसने मृत्यु पर अधिकार कर लिये था। जिसके पास बहुत बड़ी सेना और बहुत अच्छे स्पैस क्राफ्ट थे। जिसने शुक्र ग्रह, वृहस्पती ग्रह, और मंगल पर अपना अधिकार कर लिया था, और देवताओं को वहां से भगा दिया था। देवताओं ने अपनी जान बचा कर यहां पृथ्वी पर अपना गुप्त स्थान रहने का बना लिया था। जिसकी खोज उसने करके यहां पृथ्वी पर भी हमला करना शुरु कर दिया था। जिसके सम्पर्क में रावण आदि राक्षस भी थे, जिनके राज्य और अत्याचार को राम ने एक बार समाप्त कर दिया था। और रामराज्य स्थापित कर दिया था। लेकिन कृष्ण के समय आते आते राक्षस फिर बढ़त को प्राप्त कर लिया था। जिसमें दुर्योधन आदि प्रथम थे, इस पृथ्वी पर, जिसके लिये कृष्ण नें महाभारत जैसे भयंकर युद्ध को कराया। जिस युद्ध में इस पृथ्वी का तीन हिस्सा से सभी जीव जन्तु प्राणियों को मार दिये गया था। जब शाल्व को यह को यह ज्ञात हुआ की उसकी योजना कामयाब नहीं हो रही है। उसके सारे जो योद्धा है वह मारे जारहे है। इस पृथ्वी पर सत्यता और धर्म का राज्य स्थापित हो गया है। तब उसने भयंकर क्रोधित हो कर अपनी सभी शक्तीयों का अपने तिनो ग्रहों से एक साथ कृष्ण के राज्य पर छोड़ा था। उस समय कृष्ण अपने राज्य द्वारिका में रहते थे। जब उस पर शाल्व ने भंयकर आक्रमण कर दिया, जिससे इस पृथ्वी पर उसने बहुत आतंक मचा दिया था। जिससे कृष्ण बहुत परेशान हो गये थे। उन्होंने भगवान शीव साधना करके उनको प्रसन्न किया और और उनसे ऐसे अस्त्र शस्त्र लिये। जिनकी सहायता से शाल्व के रहने के स्थान शुक्र ग्रह, वृहस्पती ग्रह, और मंगल ग्रह के जीवन को हमेशा के पूर्णः नष्ट कर दिया।

कुछ पल के कैलाशने अपनी बाणी को विराम दिया, और आगे कहना सुरु किया इस तरह से भगवान कृष्ण कि तुलना में और उनके शत्रुओं की तुलना में यह मुगल सामराज्य हमारे लिये कुछ भी नहीं है यह भी राक्षसों कि संतान और रावणादि के ही वंसज है जो शुक्रचार्य के द्वारा अरब में सर्वप्रथम बसाये गये थे। हम ही सब वह देवता के वंसज है। जो हमारे राज्य को हड़पना चाहते है, वह हम सब के शत्रु है, यह सब राक्षस के समान है हमें वही कार्य करना है जो कार्य योगेश्वर कृष्ण ने और मर्यादा पुरुषत्तम श्रीराम ने किया है। हमें सत्य कि धर्म की और अपने प्रजा की रक्षा के लिये यदि अपने जीवन को दाव पर लगाना पड़े तो कोई परवाह नहीं है। इसके लिये हम सब को तैयार होना होगा, सब ने एक साथ कहा कि हम सब हर तरह से तैयार है।

मेरे प्रिय विजयपुर राज्य के वासियों मैं अपना अनुभव आप सब के साथ बाट रहा हूं। मैंने अपने गहन अनुभव और शोध से यह जाना है, कि इस संसार में रहना है। और सफलता को हासिल करना है, और अपने लिये अच्छा कुछ श्रेष्ठ करना चाहते हो, तो तुम्हें कुछ एक वस्तुओं का जीवन में अस्थान नही देना चाहिये। पहली सबसे खतरनाक वस्तु है। शान्ती, दूसरी सरलता, तीसरी सज्जनता। यह केवल शब्द कोश में ही रहें तो बहुत अच्छा है। यदी इनका अस्थान जीवन में हो गया तो जीवन का रहना बहुत कठिन और दुस्कर होगा। जो लोग शान्ती, सरलता और सज्जनता निर्दोषता कि बातें करते है। वह सारे धुर्त के हिंसक और बहुत खतरनाक किस्म के व्यक्ती है। इनसे तुम्हे सावधान रहना चाहिये। अब संसार बदल गया है आज के संसार मे एक सरल शान्त और सज्जन निर्दोष आदमी का जीवन जीना एक आत्मा हत्या के समान है। और कौन बुद्धिमान आदमी स्वयं की आत्म हत्या करना चाहता होगा? जैसा कि हम सब जानते है जो बहुत शान्त और सज्जन किस्म के व्यक्ती होते है। और हमेशा हर किसी के साथ बहुत सरलता से और प्रेम भाव से ही पेश आते है। जिसके कारण उनके जीवन में कोई भी व्यक्ती उनके साथ नहीं अच्छा व्यवहार नहीं करता है। हर आदमी उनको मुर्ख समझता है हलांकि वह बहुत इमानदार और बुद्धिमान व्यक्ती होते है। जैसा कि हम सब जानते है कि यह संसार सड़यन्त्र और साम, दम, दण्ड, भेद से चलता है जो ऐसा नहीं करता है। वह राज्य को चलाने के योग्य नहीं है ना ही

वह राज्य के रक्षा को योग्य ही होता है। सरल और शान्त लोगों कि वुद्धीमानी उनके लिये हमेशा एक नये संकट को ही खड़ी करती। उनके पिता परमेश्वर भी उनसे खुश नहीं रहते, क्योंकि वह अपनी शान्ती के कारण ही जरुरत से अधिक सहन शक्ती लोगों कि दृष्टी में वह मुर्ख और बेकार समझे जाते है। और हमेशां उनको तरह तरह यातना कष्ट ही प्राप्त होता है। मेरे मित्रों और साथियों यह वह समय है जब हम कुछ ऐसा कार्य कर सकते है। जिससे हम अपनी मातृ भुमी का कर्ज चुका सकते है। हम सब को परमेश्वर का अहोभाग्य मानना चाहिये कि परमेश्वर ने हम सब को इस योग्य समझा। और ऐसा कार्य करने के लिये नियुक्त किया है, इसको ईश्वर को आदेश मान कर हम सब को अपनी जान कि बाजी लगा देने में कोई कसर नहीं छोड़ना है। हम ही इस दृश्य मय हजारों ब्रह्माण्डों के मुख्य केन्द्र या ब्रह्माण्डिय मानव है। हमारे अन्दर ही वह अनन्त ब्रह्माण्डों का स्वामी विद्यमान हो कर वह त्रीकाल दर्शी हर पल शांशे ले रहा है। सम्पूर्ण दृश्य अदृश्य चरा चर जगत का नियंत्रण करता है। हमारे अन्दर ही वह वीग वैंग की घटना घट रही है। और हमारे अन्दर ही वह ब्लैकहोल भी विद्यामान हो कर हर पल घट रहा है। वह हमारे द्वारा ही ब्रह्माण्डों का सृजन कराता है। और हमारें द्वारा ही ब्रह्माण्डों को नष्ट भी कराता है। वह स्वयं कुछ भी नहीं करता है। वह सारा कार्य हमारे द्वारा ही पूर्ण कराता है। चाहे वह कार्य किसी के विकास के लिये उत्थान के लिये हो, या किसी के पतन या नाश करने के लिये हो। वह हमारा ही उपयोग करता है हम सब उस अदृश्य सत्ता हमारे कर्म के मात्र मोहरे के अतिरीक्त कुछ भी नहीं है। हम स्वतन्त्र नहीं है। हम सब उसकी परतंत्रता में ही अपना सम्पूर्ण जीवन जीते है। यदि कोई कहे की वह हमारे कर्मो का फल देता है यह सत्य नहीं है हम जैसा कर्म करते है। उसका फल भी हम स्वयं ग्रहण कर लेते है। इसमें उसका कोई अधिकार नहीं है। वह किसी को कभी ना ही प्रसन्न कर सकता है। ना ही वह उसे दुःखी ही कर सकता है। हम मृत्यु के भयंकर निर्दयी पंजों में फंस चुके है। तो उसमें हमारे स्वयं के कर्म ही कारण है उसमें वह परमेश्वर कुछ भी नहीं कर सकता है, वह हमें मृत्यु के घातक खतरनाक पंजो से मुक्त नहीं कर सकता है। हमने स्वयं के सर्वनाश में ही रस लेकर बहुत अधिक परिश्रम किया है। हमारे द्वारा किये जाने वाले कर्म के परिणाम का ज्ञान ना होने के कारण या लापरवाही के कारण जो कर्म किये जाते है। जिसका परिणाम हमारे लिये विनाश कारक सिद्ध होता है। मान लिया कोई एक पुरुष या स्त्री है जो नियम संयम से नहीं रहते है व्यभीचार करते है। शरीर का निरंतर दोहन करते है कामुक्ता पूर्ण जीवन जीते है, उनका जीवन हमेशा दुःख मय होता है। वह हमेशा अपने प्रत्येक कर्म से अपने लिये नये नये दुःखो का निरंतर सृजन करते है। इसके उपरान्त वह कितनी ही प्रार्थना या उपासना करते रहे, इससे उन्हे कोई फयादा नही होता है। शिवाय इनकी परेशानी और बढ़ जाती है। हमारी प्रार्थना या उपासाना हमे ताकत वर बनाते है। और हमारे संकल्प मनोबल की दृढ़ इच्छा शक्ती को बढ़ाते है। जिससे हम अपनी मुसिबतों से पार बाहर निकलने में समर्थ होते है। इसमे उस परमेश्वर का कोई योग दान नहीं है। यह निश्चित है जिसके साथ परमेश्वर होता है। उसके साथ यह संपूर्ण श्रृष्टि होती है। परमेश्वर कभी भी किसी का ना ही पक्ष में होता है नाही वह कभी विपक्ष ही किसी के होता है। वह हमेशा निस्पक्ष होता है। वह ना किसी को जन्म ही देता है ना ही वह किसी को मारता ही है। ना ही वह किसी को अमिर बनाता है ना ही वह किसी को गरीब ही बनाता है। ना ही वह किसी को विद्वान बनाता है, नाही वह किसी को मुर्ख ही बनाता है। हम सब ही अपने पूर्ण मालिक है हमने ही अपने आप को ऐसा बनाया है। जैसा की हम आज है। हम स्वयं के मृत्यु के स्वयं के जीवन के स्वयं के विकास के स्वयं के पतन के सब का सब दारोमदार अपना ही है। हम सब को गलत बनाया गया है, हम सब गैर जीम्मेदार किस्म के है। अपनी कमियों और त्रुटियों का कारण दूसरो को घोषित करते है। जिससे हमें दूसरों की नजर में उंचा उठने में सहायता मिलती है। और स्वयं के अहंकार को बल मिलता है। हमारा कर्म जब हमारे स्वार्थ के वशी भुत हो कर किया जाता है। तो वह हमे अपने वश में कर लेता है। हमारा स्वार्थ कितना क्षुद्र है जो किसी परमाणु या अणु के समान हो सकता है। या फिर हमारा कर्म और उसका स्वार्थ इतना बड़ा हो सकता है जितना बड़ा यह ब्रह्माण्ड है। यह हमारे स्वार्थ की दो श्रेणियां है एक परमाणु अणु की तरह बहुत सुक्ष्म गुप्त है। क्षुद्र रूप है जिसके परिणाम से हम अनभिज्ञ होते है। इसका परिणाम बहुत खतरनाक होता है। ठीक उसी प्रकार से जिस प्रकार से परमाणु बम कार्य करता है। जो हमें हमारे अन्दर से ही पूरी तरह से निस्त नाबुत कर देता है। वहां किसी वस्तु का कभी सृजन नहीं होता है। वहां चारो तरफ हमेशा मृत्यु ही अपने पैरों को फैला

कर ही रखती है। और एक दूसरे प्रकार का कर्म होता है जो बहुत बिशाल उद्देश्य को ध्यान में रख कर किया जाता है। जिसे हम परमेश्वर के समान कार्य करने वाले जो सभी परमाणुओं का संग्रह यह ब्रह्माण्ड जैसा कार्य है। जो प्रकृती करती है जिसको नियंत्रित करने के लिये यह मानव प्रयाश रत है। हर आदमी परमेश्वर बनने के लिये पैदा होता है यह असका दुर्भाग्य है कि वह स्वयं को परमेंश्वर नहीं बना पाता है। कुछ ऐसे भी होते है जो इस कार्य को काफि हद तक कर लेते है। जिन्हे हम अपना महापुरुष मानते है, जिनके पद चिन्हों पर हम चलने का प्रयाश करते है।और कुछ हमारे जैसे लोग है जो कुछ अभी भी बाकी है, जिसके लिये प्रयाश रत है। एक तीसरे प्रकार का कर्म है जिस पर हमरे भारतिय मनिषों ने बहुत जोर दिया है। वह है निस्काम कर्म करने के लिये। निस्काम कर्म का मतलब है जिसके पिछे हमार व्यक्तीगत कोई स्वार्थ ना हो जो कर्म करना यहां जगत में बहुत दुर्लभ हो चुका है।

यह जीवन क्रान्ती का मार्ग उन पुरुषों के लिये है जो पुरुषार्थ को अपना अस्त्र बनाने वाला उद्यमी पुरुष के समान प्रयत्न शिल और शीघ्र वेग के साथ अपने शत्रु पर हमला करने वाले पराक्रमी योद्धा के समान है। शत्रु दो प्रकार के है एक आन्तरिक अज्ञानता को धारण करने वाला अज्ञान है। और दूसरें बाहरी संसारीक शत्रु है, जो राग द्वेश को धारण करने वाले है। जो पराक्रमी योद्धा अपने शत्रु का नाश शिघ्र करता है, जिस प्रकार से अन्न को भुनने वाला मनुष्य अन्न को शिध्रता से भुनता है। उसी प्रकार पराक्रमी योद्धा अपने शत्रुओं की सेना को शिघ्रता से भुनता है। जिस प्रकार से आग पानी को वास्प में पलक झपकते ही बदल देती है। जिस प्रकार से काला रंग हर रंग पर बहुत जल्दी चढ़ जाता है। ठीक इसी प्रकार से अपने विरोधी ताकतों को अपने वश में कर लेते है। जो ऐसा नहीं कर पाता है उसे फिर वह उन अपने शत्रुओं को सम्हलने का समय देता है। जिससे उभरना समय के साथ मुस्किल और कठीन हो जाता है। जैसे जब हमारी इन्द्रियों में शक्ती होती है तभी उनको नियंत्रित करके अपने जीवन उद्देश्य को उपलब्ध कर लेते है। जब इन्द्रियां कमजोर हो जाती है और स्वयं के नियंत्रण करना असंभव हो जाता है। इस लिये कहा गया है कि जीवन के प्रारम्भ में ही जल्दी जल्दी अपनी त्रुटियों को जीवन से दूर करके स्वयं परिपूर्ण करों और सोम रस का पान करो अर्थात जीवन रस के परम आनन्द का भोग करो, अर्थात सौम्य गुण वाले पेय शक्ती को बढ़ाने वाली परम दैविय औषधियों का सेवन करों है। क्योंकि वह परम तत्व एक रसायन ही है। तदुपरान्त हर्षित और उत्साहित होकर अपनी दुष्ट वृत्तियां जो शत्रु के समान है, उनको परास्थ करके इनसे हमेशा के लिये मुक्त हो जाओ।

अब सुनो जो जीवन में परम आनन्द पाने का और सत्य को प्राप्त करने का नियम है। जो अपने बल को बढ़ाने वाला है जिसने अपनी त्रुटियों को दूर करना जान लिया है, और जो पुरुष सद्गुणों को धारण करने वाला है। ऐसा पुरष ही हमेंशा दूसरों को उत्तम उपदेश कर सकता है। जो अपने बल शक्ती सामर्थ को घटाने वाला है वह बुरे और निकृष्ट विचारों की प्रेरणा से अपने मन को दुषित करता है। ऐसे व्यक्ती पापी और दुष्ट वृत्तियो वाले जो जन है। उनको पकड़ कर बन्धन में रखना चाहिये। अर्थात कड़े अनुशासन में निरंतर उस पर नजर रखनी चाहिये, उनके लिये यथा योग्य दण्ड की व्यवस्था भी देने की समाज में होनी चाहिये। जो वृत्तिया मन का नाश करती और उसे बेकार बना कर के नष्ट भ्रष्ट कर देती है, उसका संहार या हत्या करना योग्य है। उस ग्रन्थी को जो बार बार पिड़ा और क्लेश का कारण बनता है। उसे ऐसे ही काट देना चाहिये। जैसे कुल्हाड़ी से वृक्षों का काटते है।

जो घमंडी और अहंकारी मनुष्य अपने आप को ही सर्वोपरी सबसे महान मानता है, इतना ही नहीं हम जो ज्ञान का संग्रह करते है, उसकी भी वह निन्दा करता है। उसके सभी कर्म उसके लिये कष्टप्रद होते है। क्योकि जो सत्य ज्ञान का विरोध करता है उसको दिव्य लोग जो ज्ञान का है, उसे बहुत प्रकार का कष्ट देता है। जिस प्रकार घोड़ा अपना पांव जब उठाता है तो वह अपने प्रापतव्य स्थान को प्राप्त करने के बाद ही रुकता है। उसी प्रकार इन सब विपत्तियों के मुख्य श्रोत को देख कर ज्ञान विज्ञान ब्रह्मज्ञान के माध्यम से उन मुख्य कारण के श्रोतों को अपने में से अलग कर देना चाहिये। हर प्रकार की जीवन कि कलह और क्लेश में अपनी विजय

निश्चत हो ऐसी अपनी तैयारी हमेंशा करनी चाहिये। और हर एक जीवन के युद्ध संग्राम में जाग्रत रहते हुए विजय प्राप्त करने से ही जीवन की सब पिड़ायें हट सकती है।

विश्वव्यापक पुरुष जो अपनी दिव्य शक्तियों के द्वारा तथा विश्वम्भर ईश्वर अपनी पोषण शक्तियों के द्वारा हमेंशा हमारी रक्षा करता है। मैं अपने आपको उसकी रक्षा में समर्पित करता हू क्योकि परमेश्वर सामर्थ पराक्रम, बल, जीवन, श्रवण, दर्शन और परिपालन इन शक्तियों से युक्त है। जो वैरी, शत्रु, कंजुस ,खुन चुस और आसुरी वृत्ती वाले इनसे बचने की शक्ती तेरे अन्दर है। यह शक्ती मुझमें स्थिर कर, मैं अपने आपको तेरे लिये अर्पण करता हूं। यह मनुष्य परमात्मा के द्वारा बनाया गया है, और गुरुओं के द्वारा शिक्षीत किया गया है। वीरों के द्वारा उत्साहित किया गया है इस लिये यह शुर वीर योद्धा बन कर हमारे अन्दर आया है, और सभी कार्य करता है मात्री भूमी की उपासना करने वाला यह वीर भुख और प्यास से कभी कष्ट को प्राप्त ना है। जो ज्ञानी पुरुष अपने मन और आखों से बद्ध स्थित में रहते हुए, सभी प्राणियों को अनुकम्पा कि दृष्टी से देखते है। उनको ही विश्व का निर्माण करने वाला और प्रजावों में रमने वाले है। उनको ही प्रकाश मय देव सबसे पहले मुक्त करता है। जो ज्ञानी पुरुष सब शरीर में संचार करने वाले प्राण को सब अंगों और अवययों से इकट्ठा करके अपने अधिकार में लाते है। वे ही ज्ञानी पुरुष शरीर से सुदृढ़ होते है। वे ही गमन करते हुए सीधे दिव्य मार्ग से स्वर्ग को जाते है, और प्रकाश का स्थान प्राप्त करते है। और जो अन्न खाते हुये भी श्रेष्ठ कर्तव्यों को नहीं करते है, जिसके कारण उनके वुद्धियों में रहने वाली अत्मा रूपी अग्नि बड़ा पश्चाताप करती है। और दुःखों को उपलब्ध करती है। उनके जो दोष है वह सुधर जाये और विश्वकर्ता परमेश्वर की कृपा से वे हमारे सत्त कर्मो में सम्लित हो। इस जगत में अपना संरक्षण मनुष्य को स्वयं करना चाहिये यह बात पुकार – पुकार कर सभी श्रेष्ठ और आप्त पुरुष करते है। हे मनुष्य तुम अग्निवत तेजस्वी बनो और अपना प्रकाश जगत में फैलावो, यह तभी संभव होगा जब ज्ञान विज्ञान ब्रह्मज्ञान को धारण करने में सक्षम होगे। हे मनुष्यों! जो वेद वाणी को धारण करने वाला विद्वान पंडित नाश रहित दिव्य ज्ञान को विषेश रूप से अपनी वुद्धी में धारण करता है, वही मुक्ती का श्रेष्ठ साधन के बारे में, और उस नित्य चेतन ब्रह्म का शिघ्र गुण कर्म स्वभावो के सहित उपदेश करता है। और जो इस ब्रह्मज्ञान में कल्याण कि भावना के हितार्थ स्थित जानने योग्य तीन उत्पत्ती, स्थिती, प्रलय, भुत, भविष्य ,वर्तमान काल है। उनको अच्छी प्रकार से जानता है। वही पिता स्वरूप सर्वरक्षक परमेश्वर का ज्ञान देने का आस्तिक्ता से रक्षक बनता है।

द्युलोक , पृथिवीलोक, दिन, रात्री, सूर्य, चन्द्र,नक्षत्र, ब्रह्मज्ञानी, योद्धा, सत्य, अनृत, भुत भविष्य आदि सब किसी से भी डरते नहीं है इसी लिये यह विनाश कभी प्राप्त नही होते है। इससे कैवल्य ज्ञान मिलता है की हम निर्भय वृत्ति से रह कर ही अपने विनाश से बचने की संभावन है। अतः हे प्राण तू इस शरीर में निर्भय वृत्ती के साथ रह और अप मृत्यु के भय को दूर कर।

जिस प्रकार से यह जगत जो जागते हुए निरंतर गती कर रहा है। अपनी विविधता को त्याग कर एक रुपपता को धारण करता है। और जिस परम तत्व का निवास हृदय में है। उस परम तत्व को मानव भाव से ही अपने हृदय में साक्षात देखता है, इस प्रकृती ने उसी एक आत्मा की विविध शक्तियों को निचोड़ कर उत्पन्न होने वाले विविध जगत का निर्माण किया है। इसलिये आत्मज्ञानी मनुष्य सदा उस आत्मा की ही गुण गान करते है। जिस प्रकार से अपने हृदय में उपस्थित उस परम अमृत तत्व के परम धाम का वर्णन केवल आत्मज्ञानी संयमी वक्ता ही कर सकता है। जिसके तीन पाद है ज्ञान विज्ञान ब्रह्मज्ञान हृदय में गुप्त है जो उनको जानता है, वही ब्रह्मज्ञानी होता है। वहीं हम सब का पिता, जन्म दाता और भाई के समान है। वही सभी प्राणियों को सभी अवस्थाओं में यथावत जानता है। वह केवल अकेला ही एक है उसी के अनेक अग्नि आदि सम्पूर्ण अन्य देवों के नाम प्राप्त होते है। अर्थात उसी को दिये जाते है, जिज्ञासु जन उसी के विषय में बारम्बार प्रश्न पुछते है, और अन्त में उसी को प्राप्त होते है।

पृथ्वी सूर्य समेत अनन्त ब्रह्माण्डों के अन्दर जो अनन्त पदार्थ है उन सब का निरीक्षण करने के बाद पता लगता है कि अटल शाश्वत नियमों का पहला प्रवर्तक एक ही परमात्मा है। इसलिये मैं उसी परमात्मा की प्रार्थना और उपासना करता हूं। जिस प्रकार वक्ता में वाणी विद्यमान रहती है, उसी प्रकार जग के सभी पदार्थों में अथवा सभी प्राणियों में उपस्थित हो कर सबका धारण पालन पोषण कर्ता के रूप में एक आत्मा रहता है। उसको अग्नि भी कहते है, जिस प्रकार अग्नि लकड़ी में गुप्त रूप से विद्यमान रहती है, उसी प्रकार से वह परमेश्वर गुप्त रूप से सभी पदार्थो में अदृश्य हो कर व्यापता है।

जिस एक परमेश्वर में अग्नि, वायु, सूर्यादि देव समान रीति से आश्रित है, और जिसकी अमृत मई शक्ती सम्पूर्ण उक्त देवों में कार्य कर रही है। वही एक सर्वत्र फैला हुआ व्यापक काल जई सत्य है। उसी का साक्षात्कार करने के लिये मैंने सब वस्तु का निरीक्षण किया। जिसके पश्चात मैंने पाया कि वह सबके अन्दर एक सूत्र कि तरह फैला हुआ है। जिस तरह से एक माला में फुल कई प्रकार के होते है यद्यपी उनको एक साथ जोड़ने वाला तागा एक ही है। इसको मैंने अनुभव किया, इसके साथ जीवन की अनन्त कलायें भी है। इन सब का निवास स्थान मध्य लोक अन्तरीक्ष है, जहां यह सब शक्तियां प्रकट होती है, और वहीं पर यह अदृश्य भी हो जाती है।

जिस प्रकार से यह ईख नामक वनस्पत्ति स्वभाव से मधुर मीठी है, उसका लगाने वाला और उखाड़ने वाला भी मधुरता की भावना से ही उसको लगाता और उखाड़ता है। जिस प्रकार यह वनस्पत्ति परमात्मा से यह मिठास अपने साथ ले कर आती है। उसी प्रकार से हम सब भी अपने जीवन में परमात्मा से मिठास और मधुरता को प्राप्त कर के अपने जीवन को मीठा और मधुर बनाये। मेरी जीभ्भा के मुख्य भाग में मधुरता रहे, जीभ्भा के अग्र भाग में और जीभ्भा के मध्य भाग में भी मधुरता हमेंशा बनी रहे। मेरे कर्म में मधुरता रहे, मेरा चित्त मधुर विचारों का ही चिन्तन और मनन हमेशा करता रहे। मेरा चाल चलन हमेशा मधुर और मिठा हो, मेरा आना जाना मिठा हो, मेरे इसारे और भाव तथा मेरें शब्द भी मीठे दूसरे को सुख देने वाले हो। ऐसा होने से मै अन्दर बाहर से मिठास की मुर्ती बनुगां। मैं शहद से भी मिठा बनता हू मैं मिठाई से भी मिठा बनता हूं, इस प्रकार जिस प्रकार से मधुर फल वाली शाखा को पक्षी प्रेम करते है। तुम सब भी मुझ से प्रेम करों, कोई किसी का द्वेष ना करें इस उद्देश्य से व्यापक मधुर विचारों की की चार दिवारी चारों ओर बनाता हूं। जिससे इस चार दिवारी में सब ओर मधुरता ही बढ़े सब एक दूसरे से हमेंशा प्रेम करें और विद्वेष से कोई किसी से विमुख ना हो।

जो विद्युत के समान है जिस तरह से बल्ब फ्युज होता है। मगर विद्युत निश्चित रहती है। उसी प्रकार से हमारी शरीर बल्ब के समान फ्युज होती है। मगर जो इसकी चेतना विद्युत के समान है। वह हमेंशा उपस्थित रहती है। यह एक बात निश्चित जान ले कि मेरे आत्म मन जो भी तुम्हे मिलता है। इसको तुमने बहुत परिश्रम से कमाया है, मुफ्त में तुम्हे यहां कुछ भी नहीं मिलता है। कांटों के समान पिड़ा देने वाले अथाह दुःख, ताप , संस्कार या फिर फुलों के समान हल्के सुख और आनन्द देने वाले परिणाम गुण संस्कार यहीं दो कोटि हैं। किसी भी मनुष्य को दोनो कभी साथ में नहीं मिलते यह प्रकाश और अंधकार की आते जाते रहते है। कोई फुलों के लालाइत है तो कोई काटों से भागना चाहता है।

कभी भी इनको देख कर भागना मत इनको भोगना। जो भी हो सुख या दुःख तुम्हारे हिस्सें में जो भी आये। यह एक कषौटी तुम्हारे धैर्य के असली परीक्षा कि, जो दोनों को सहने के लिए तैयार है। परमेश्वर का पुरुष्कार मान कर और अपने कर्मों का फल समझ कर, वहीं जीवन का सच्चा सुख पाता है। जिसने स्वयं को पत्थर के समान दृढ़ और मजबुत और फौलाद जैसा स्वयं को बना लिया है। यह जीवन उसी को प्रसन्न करता है। जो एक-एक कदम मृत्यु को अपने सामर्थ से पिछे धकेल देता है।

ब्रह्म जो विद्युत से सुक्ष्म विद्युत के समान है। जो अपनी वाणी से ही ब्रह्माण्ड की उत्पत्ती करता है। और अपनी इसी वाणी से दुष्ट व़त्तियों वालों जीवों को संतप्त करता है। जिस प्रकार से आकाशिय विजली की मात्र

भयंकर आवाज को सुन कर कितने प्राणियों का हृदय भय व्याप्त हो जाता है। और वह कापंने लगता है। उसी प्रकार वह परमेश्वर मानव मन में भय, लज्जा, शोक, मातम जैसी वेदनाओं आदि के भावों को उत्पन्न कर के उनको गलत कार्यों को करने से निरंतर रोकता है। जो सज्जनो के आदर सत्कार नमस्कार के योग्य है। जो हमारें लिये बिभन्न प्रकार के सुख और ऐश्वर्यों को प्रकट करता है। जिसको प्राप्त करने के लिये जो सज्जन विद्वान पुरुष है। वह अपने जीवन में संयम को धारण करके उसको प्राप्त करने के लिये निरंतर उसकी उपासना प्रार्थना स्तुती करते है। उसको मै बारम्बार नमस्कार करता हूं।

कोई भी हमारा मित्र या शत्रु हमारी जाती वाला या पर जाती वाला बड़ा या छोटा कोई भी क्यों नाहो? यदि वो हमे दाश बनाने का प्रयाश करता है, या हमारा नाश करने की चेष्टा करता है। तो उसका नाश शस्त्रों से करना योग्य है। जो प्रकट या छुपा हुआ हमारा शत्रु है। और वह हमारा नाश करने चाहता है, या हमें बुरे ओर कड़वे शब्द बोलता है। सब सज्जन उस दुष्ट वृत्ती के मनुष्य को समाज से दूर करें। मेरा आन्तरिक कवच मेरा सत्य ज्ञान ही है अर्थात ब्रह्मज्ञान ही है। इसके साथ कैलाशने अपने वाणी को विराम दिया और अगले लिन सुबह संग्राम का ऐलान किया।

अगले दिन सुबह पुरब से राजा काशी नरेश कि सेना और पश्चिम से इलहाबाद के राजा की सेना ने धावा बोल दिया। जैसे ही उत्तर से मुगल सामाराज्य कि विशाल सेना लाव लस्कर के साथ गंगा की तराईयों प्रवेश करने के लिये नदी को नाव से पार करने का प्रयास कर रही थी। उसी समय दोनो सेनायों में भयंकर युद्ध छीड़ गया। कैलाशकि सेनाये नदीं में ही मुगलों के सेनावों कि नावों पर आक्रमण करके उनकी नाव को डुबोने लगे जिससे कैलाशकी सेना के लिये गंगा नदि भी एक हथियार कि तरह से काम कर रही थी। आगे कैलाशने अपने पुत्रों से नहर के पानी से सारा का सार इलाका डुबो के रखा था जिससे मुगलसेना की दम उखड़ने लगे क्योंकि घोड़ों हाथीयों कि सेना किचड़ में फंस कर मरने लगे, आगें बढ़ने भंयकर मुश्किल होने लगी। जिससे पैदल सेना भी किचड़ में फसने लगी, जिसका फायदा सर्वप्रथम बैजु कि सेना और उसके पुत्रों ने खुब उठाया। और बहुत सारी सेना का संहार कर दिया। अपने तिर बाड़ और तलवारों से ही पहाडियों के उपर खड़े हो करके। यह युद्ध कई दिनो तक चलता रहा जिसमें दोनों तरफ की सेनाओं के विर योद्धा और सैनिक मारे गये। इसके बाद मुगल सेनापती शमशेर ने अपने विर योद्धाओं को तोप के गोले को वरसाने का आदेश दिया। जिसका प्रयोग मुगल सेना के द्वारा तब किया गया। जब कैलाशकि सेना थक चुकी थी। जिससे कैलाशकी सेना के पैर उखड़ने लगे युद्ध के मैदान से क्योंकि कैलाशका एक लड़का विरगति को उपलब्ध हुआ। उसके स्थान पर कैलाशके दूसरे लड़के ने जगह लि और बड़ी बहादुरी से लड़ता रहा अपनी अन्तिम शासों तक। लेकिन वह भी अधिक देर तक नहीं मुगल सेना का सामना कर सका वह भी बुरी तरह से मारा गया। जिसका प्रभाव राजा हरिश्चन्द्र और कैलाशकि सेना पर नाकरात्मक पड़ने लगा, जिससे उनकी सेना निरुत्साहित होने लगी। इसको देख कर मुगलों कि सेना और उसके सेनापती शमसेर का हौशला अत्यधिक बढ़ने लगा और उनकी सेना और चौगुने उत्साह से लड़ने लगी शमशेर हाथी पर सवारा अपनी सेना का हौशला बढ़ा रहा था। अल्ला हु अकबर के नारे से जैसे सारा आकाश ही गुज रहा था। इधर कैलाशऔर राजा हरिश्चन्द्र कि सेना का हौशला पस्त हो रहा था। उनको यह डर सता रहा थ। इस तरह से यदि मुगलों की सेना आगें बढती रही तो विजयपुर पर फतह करने में दोदिन से अधिक समय नहीं लगेगा। तभी रात्री ढलने लगी और दोनों सेनायें अपने अपने शिविरों में प्रस्थान करने लगी दोनों तरफ से घायल सैनिको को सिविरों में इलाज करने के लिये ले जाया जा रहा था। जिसमें दो कैलाशके वेटों की लाशें भी थी जिसको देखकर कैलाशकी आंखें नम होगई। लेकिन यह उसने दूसरें अधिकारियों को प्रतित नहीं होने दिया। उसने राजा से मिल कर एक गुप्त सभा रात्री में ही बुलाने को कहा राजा नें सभी को आदेश दिया कि सभी जल्द से जल्द राजा हरिश्चन्द्र के शिवीर में आजाये, ऐसा ही हुआ।

कैलाशनें अपने मित्र मानस और उनके दो पुत्रों को खास रूप से आमंत्रित किया सभा में आनें के लिए, जब सभी विशेष लोग सबा में आ गये। तब सेनापती बैजु नें अपने मित्र मानस को संबोधित करते हुए कहा कि मै आपको एक पुरानी ज्ञान बर्धक कथा सुनाता हूं। एक राज कुमार के बलिदान कि कथा जो इस तरह से है।

राजकुमार और उसके पुत्र के बलिदान की कहानीः- किसी समय शूद्रक नामक राजा राज्य किया करता था। उसके राज्य में वीरवर नामक महाराज कुमार किसी देश से आया और राजा की ड्योढ़ी पर आ कर द्वारपाल से बोला, मैं राजपुत्र हूँ, नौकरी चाहता हूँ। राजा का दर्शन कराओ। फिर उसने उसे राजा का दर्शन कराया और वह बोला- महाराज, जो मुझ सेवक का प्रयोजन हो तो मुझे नौकर रखिये, शूद्रक बोला - तुम कितनी तनख्वाह चाहते हो ? वीरवर बोला - नित्य पाँच सौ मोहरें दीजिये। राजा बोला - तेरे पास क्या- क्या सामग्री है? वीरवर बोला - दो बाँहें ओर तीसरा खड्ग। राजा बोला यह बात नहीं हो सकती है। यह सुनकर वीरवर चल दिया। फिर मंत्रियों ने कहा- हे महाराज, चार दिन का वेतन दे कर इसका स्वरुप जान लीजिये कि यह क्या उपयोगी है? जो इतना धन लेता है या उपयोगी नहीं है। फिर मंत्री के वचन से बुलवाया और वीरवर को बीड़ा देकर पाँच सौ मोहरें दे दी। और उसका काम भी राजा ने छुप कर देखा। वीरवर ने उस धन का आधा देवताओं को और ब्राह्मणों को अर्पण कर दिया। बचे हुए का आधा दुखियों को, उससे बचा हुआ भोजन के तथा विलासादि में खर्च किया। यह सब नित्य काम करके वह राजा के द्वार पर रातदिन हाथ में खड्ग लेकर सेवा करता था और जब राजा स्वयं आज्ञा देता, तब अपने घर जाता था। फिर एक समय कृष्णपक्ष की चौदस के दिन, रात को राजा को करुणा सहित रोने का शब्द सुना। शूद्रक बोला - यहाँ द्वार पर कौन- कौन है ? उसने कहा - महाराज, मैं वीरवर हूँ। राजा ने कहा - रोने की तो टोह लगाओं। जो महाराज की आज्ञा, यह कहकर वीरवर चल दिया और राजा ने सोचा- यह बात उचित नहीं है कि इस राजकुमारों को मैंने घने अंधेरे में जाने की आज्ञा दी। इसलिये मैं उसके पीछे जा कर देखता हूं कि यह क्या है ? और इसका निश्चय करू। फिर राजा भी खड्ग लेकर उसके पीछे नगर से बाहर गया । और राजा जो उसके पिछे छुपकर देखता रहा जब वीरवर ने जा कर एक रोती हुई, रुप तथा यौवन से सुंदर औरत को देखा जो सब आभूषण पहिने हुए थी। जिस स्त्री को देख विरवर ने पूछा - तू कौन है? किसलिये रोती है? स्त्री ने कहा - मैं इस शूद्रक की राजलक्ष्मी हूँ। बहुत काल से इसकी भुजाओं की छाया में बड़े सुख से विश्राम करती थी। अब दूसरे स्थान में जाऊँगी। वीरवर बोला- जिसमें नाश का संभव है, उसमें उपाय भी है। इसलिए कैसे फिर यहाँ आपका रहना होगा? लक्ष्मी बोली- जो तू बत्तीस लक्षणों से संपन्न अपने पुत्र शक्तिधर को सर्वमंगला देवी की भेंट करे, तो मैं फिर यहाँ बहुत काल तक रहूँ। यह कह कर वह अंतर्धान हो गई। फिर वीरवर ने अपने घर जा कर सोती हुई अपनी स्त्री को और बेटे को जगाया। वे दोनों नींद को छोड़, उठ कर खड़े हो गये। वीरवर ने वह सब लक्ष्मी का वचन उनको सुनाया। उसे सुन कर शक्तिधर आनंद से बोला- मैं धन्य हूँ, जो ऐसे, स्वामी के राज्य की रक्षा के लिए मेरा उपयोग प्रशंसनीय है। इसलिए अब विलंब का क्या कारण है? ऐसे काम में देह का त्याग प्रशंसनीय है।

धनानि जीवितं चैव परार्थे प्राज्ञ उत्सृजेत। सन्निमित्ते वरंत्यागो विनाशे नियते सति।। अर्थात, पण्डित को परोपकार के लिए धन और प्राण छोड़ देने चाहिए, विनाश तो निश्चत होगा ही, इसलिये अच्छे कार्य के लिए प्राणों का त्याग श्रेष्ठ है। शक्तिधर की माता बोली- जो यह नहीं करोगे तो और किस काम से इस बड़े वेतन के ऋण से उनंतर होगे? यह विचार कर सब सर्वमंगला देवी के स्थान पर गये। वहाँ सर्वमंगला देवी की पूजा कर वीरवर ने कहा- हे देवी, प्रसन्न हो, शूद्रक महाराज की जय हो, जय हो। यह भेंट लो। यह कह कर पुत्र का सिर काट डाला। फिर वीरवर सोचने लगा कि लिये हुए राजा के ऋण को तो चुका दिया। अब बिना पुत्र के जीवित किस काम का? यह विचार कर उसने अपना सिर काट दिया। फिर पति और पुत्र के शोक से पीड़ित स्त्री ने भी अपना सिर काट डाला, तब राजा आश्चर्य से सोचने लगा,

जीवन्ति च म्रियन्ते च मद्विधाः क्षुद्रजन्तवः। अनेन सदृशो लोके न भूतो न भविष्यति।।

अर्थात, मेरे समान नीच प्राणी संसार में जीते हैं और मरते भी हैं, परंतु संसार में इसके समान न हुआ और न होगा। इसलिए ऐसे महापुरुष से शून्य इस राज्य से मुझे भी क्या प्रयोजन है? बाद में शूद्रक ने भी अपना सिर काटने को खड्ग उठाया। तब सर्वमंगला देवी ने राजा का हाथ रोका और कहा- हे पुत्र, मैं तेरे ऊपर प्रसन्न हूँ, इतना साहस मत करो। मरने के बाद भी तेरा राज्य भंग नहीं होगा। तब राजा साष्टांग दंडवत और प्रणाम

करके बोला- हे देवी, मुझे राज्य से क्या है या जीन से भी क्या प्रयोजन है? जो मैं कृपा के योग्य हूँ तो मेरी शेष आयु से स्त्री पुत्र सहित वीरवर जी उठे। नहीं तो मैं अपना सिर काट डालूँगा। देवी बोली- हे पुत्र, जाओ तुम्हारी जय हो। यह राजपुत्र भी परिवार सहित जी उठे। यह कह कर देवी अन्तध्यान हो गई। बाद में वीरवर अपने स्त्री- पुत्र सहित घर को गया। राजा भी उनसे छुप कर शीघ्र रनवास में चला गया। इसके उपरांत प्रातः काल राजा ने ड्योढ़ी पर बैठे वीरवर से फिर पूछा और वह बोला- हे महाराज, वह रोती हुई स्त्री मुझे देखकर अंतर्ध्यान हो गई, और कुछ दूसरी बात नहीं थी। उसका वचन सुन कर राजा सोचने लगा-""इस महात्मा की किस प्रकार बड़ाई करूँ।"

प्रियं ब्रूयादकृपणः शूरः स्यादविकत्थनः। दाता नापात्रवर्षी च प्रगल्भः स्यादनिष्ठुरः।

क्योंकि, उदार पुरुष को मीठा बोलना चाहिये, शूर को अपनी प्रशंसा नहीं करनी चाहिये, दाता को कुपात्र में दान नहीं करना चाहिए और उचित कहने वाले को दयारहित नहीं होना चाहिये। यह महापुरुष का लक्षण इसमें सब है। बाद में राजा ने प्रातःकाल शिष्ट लोगों की सभा करके और सब वृत्तांत की प्रशंसा करके प्रसन्नता से उसे कर्नाटक का राज्य दे दिया।

आगे कैलाशने कहा कि यह कहानि कहने का मेरा उद्देश्य यह कि हमें अपने राजा के लिय धन और पुत्रों कि परवाह किये वगैर अपने कर्तव्य और राज्य कि रक्षा करनी चाहिये। मानस तुम तुरंत अपने दोनों पुत्रों को विजयपुर नगर में भेज कर के, इस सुचना को गुप्त रूप कि सभी जनता को युद्ध के मैदान में अपने हथियार लेकर आने को कहे। क्योंकि हमारे राज्य पर बहुत बड़ा खतरा आ चुका है। हम सब को एक साथ रात्री में हि हमला करना होगा। दिन के प्रकाश में इनसे युद्ध जीतना मुश्किल होगा। क्योंकि इनकी सेना विशाल है। और इनके पास हमसे आधुनिक हथियार भी है। इनसे जीतने के लिये हम सभी जनता इनको चारों तरफ से घेर कर उस इलाके कि तरफ खदेड़े जहां पर ज्यादा मात्रा में किचड़ है। और वहां से निकलने ना दे हम सब सारी सेना को चारों तरफ से घेर कर चारों तरफ से तोप के गोलों से हमला करेंगे। इस तरह मानस के दोनों पुत्र मुरली और विद्याधर अपने साथ अपने विश्वस्थ कुछ आदमीयों को लेकर अपने विजय पुर नगर के सभी युवावों को एकत्रित कर लिया। और रात्री के अन्तिम पहर में सबने मिल कर हमला बोल दिया मुगलों के शिविरों पर जब सभी गहरी निद्रा में सो रहे थे। कुछ एक पहरेदार सैनिकों को छोड़ कर अचानक हमला से वह से सम्हल पाते उससे पहल सभी सेना और बहादुर योद्धा कैलाशके पुत्र मानस के पुत्रों ने ओर दुसरी राज्यों कि सेनाओं तांडव मचा दिया भयंकर मार काट चारो तरफ चल रहा था। उसी विच शमशेर मुगल सामराज्य का सेनापती अपने सिविर से बाहर निकला और बगल में ही मानस अपने वफादार सैनिको के साथ खड़ा था। जिसने शमसेर के गले को अपने तलवार से अलग कर दिया। जिसकी सुचना मुगल सैनिको को मिलते ही उनमें भगदण मचगई, सभी इधर उधर भागने लगे। उस मैदान से में भाग जाना आसान था लेकिन निकलना बहुत कठिन था क्योंकि वहां कि मिट्टि वहुत अधिक चिप चिपी थी। पानी पाने से वह बहुत भयानक बन चुकी थी। जिससे उसमें निकलना मुगल सैनिको के लिये बहुत कठीन हो गया। सब को घेर कर कैलाशकी सेना ने सबका सर कलम कर दिया कुछ बड़ी मुस्किल से जान बचा कर वहां से भागने में सफल हुए।

फिर भी इस संग्राम कि सफलता के श्रेय कैलाशके सर पर राजा हरिश्चन्द्र ने मढ़ दिया। और राजा हरिश्चन्द्र ने कहा यह सब कैलाशके ज्ञान और विजय के प्रति अगाध श्रद्धा के कारण ही इस नामुमकिन कार्य को मुमकिन कर दिया इसीलिये हमारे शास्त्रों में श्रद्धा के विषय में बहुत कुछ कहा गया है जैसे- "दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत् सत्यानृते प्रजापतिः । अश्रद्धाममनृतेऽधाच्छ्रद्धां सत्ये प्रजापतिः ।।" (यजुर्वेदः–१९.७७)

सर्वज्ञ और आदिस्रष्टा परमेश्वर ने अश्रद्धा को असत्य में तथा श्रद्धा को सत्य में स्थापित किया है । "श्रद्धा"–शब्द श्रत् धा इन दो तत्त्वों के योग से निष्पन्न होता है । "श्रत्" का अर्थ है सत्य या ज्ञान और धा का तात्पर्य धारण करना या भावना है । अतः केवल सहज विश्वास अथवा अन्धविश्वास का नाम श्रद्धा नहीं है । सत्य को निश्चयपूर्वक जानकर उसे दृढता के साथ धारण करना श्रद्धा है । सत्य धारणा अथवा निष्ठा के साथ अभीष्ट की ओर उन्मुख रहना श्रद्धा है अथवा हृद की गहनतम भावना के

साथ साध्य की साधना करना श्रद्धा है ।श्रद्धा हृदय की उत्कृष्टतम अनुभूति है । अन्य शब्दों में श्रेष्ठता की प्रति अटूट आस्था का नाम ही श्रद्धा है । अन्तःकरण की दिव्यभूमि में जब श्रद्धा अंकुरित होती है तो व्यक्ति का समग्र जीवन प्रशस्त हो उठता है । श्रद्धा आध्यात्मिक क्षेत्र की ऊर्जा है । जिस प्रकाप भौतिक क्षेत्र में अग्नि या सूर्य की शक्ति ऊर्जा मानी जाती है, वैसे ही अध्यात्म के क्षेत्र में आन्तरिक ऊर्जा श्रद्धा ही है । श्रद्धा ही सारे धार्मिक कृत्यों और आयोजनों का प्राण है, उसके बिना मनुष्य के सब धर्म निष्फल है । धार्मिक कर्मकाण्ड और मान्यताएँ श्रद्धा के अभाव में मूल्यहीन हो जाती है । अतः शक्ति या प्रभाव आडम्बर की विशालता में नहीं, श्रद्धा की शक्ति में सन्निहित होता है । कर्मकाण्ड की या साधन-विधान की उतनी महत्ता नहीं, जितनी उसके मूल में काम करने वाला श्रद्धा की है । श्रद्धाविहीन कर्म मनुष्य को लकीर का फकीर बना देते हैं । श्रद्धा न हो तो यज्ञ की अग्नि और रसोई के चूल्हे की अग्नि, वेदमन्त्रों और साधारण शब्दों तथा गाय और घोडे में कोई अन्तर नहीं रह जाएगा । इसीलिए श्रुति का उद्घोष है- "श्रद्धयाग्निः समिध्यते श्रद्धया हूयते हविः ।" (ऋग्वेदः–१०.१५१.१) श्रद्धा के अभिसिञ्चन से असाध्य कार्य भी सिद्ध हो सकते हैं, पाषाण में भी प्राणवानों जैसी दिव्य शक्ति का सञ्चार हो सकता है । श्रद्धा के बल पर ही एकलव्य ने मिट्टी की द्रोणाचार्य की प्रतिमा से उतनी शिक्षा प्राप्त कर ली थी, जितनी पाण्डव साक्षात् द्रोणाचार्य से भी प्राप्त नहीं कर सके । श्रद्धा के कारण ही युधिष्ठिर का विशाल राजसूय यज्ञ नेवले के आधे शरीर को सुवर्णमय नहीं बना सका, किन्तु निर्धन ब्राह्मण के त्याग ने उसे आधी कञ्चन काया प्रदान कर दी थी । इसलिए नारदपुराण में कहा गया है कि श्रद्धा से ही सब कुछ सिद्ध होता है और श्रद्धा से ही भगवान् सन्तुष्ट होते हैं । श्रद्धा की महिमा प्रकट करते हुए गीताकार ने भी कहा है— "सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत । श्रद्धामयोऽयं पुरुषों यो यच्छर्द्धः स एव सः ।।" (गीता–१७.३)

अर्थ—जिसकी जैसी श्रद्धा होती है, वह वैसा ही बन जाता है । व्यक्तित्व की श्रेष्ठता-निकृष्टता की पहचान यही श्रद्धा ही है । श्रद्धा से ही सत्य की सिद्धि होती है—"श्रद्धया सत्यमाप्यते" (यजुर्वेदः–१९.३०) श्रद्धा से ही वसु की उपलब्धि होती है—"श्रद्धया विन्दते वसु" (ऋग्वेदः–१०.१५१.४) तथा श्रद्धा से ही विद्वान् जन देवत्व को प्राप्त करते हैं—"श्रद्धया देवो देवत्वमश्नुते ।" (तैत्तिरीय-ब्राह्मण—३.२.३) मानव जीवन में ज्ञान का महत्त्व सर्वोच्च है—"नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते ।" (गीता–३.३८) अर्थात् संसार में ज्ञान से बढकर पवित्र कुछ भी नहीं है तथा ज्ञान प्राप्ति के मार्ग में श्रद्धा का विशेष महत्त्व है—"श्रद्धावांल्लभते ज्ञानम्।" (गीता–३.३९) श्रद्धावान् व्यक्ति को ही ज्ञान-लाभ होता है । श्रद्धा से ही ज्ञानरूप अग्नि प्रज्वलित होती है । श्रद्धा होने पर ही सद्गुरु एवं सद्ग्रन्थ प्रभावी होते हैं । इसीलिए कहा गया है कि श्रद्धायुक्त कर्मों का उल अनन्त होता है—

"श्रद्धाविधिसमायुक्तं कर्म यत् क्रियते नृभिः । सुविशुद्धेन भावेन तदनन्ताय कल्पते ।।" (याज्ञवल्क्य-स्मृतिः) साधना के क्षेत्र में श्रद्धा की अपरिमित शक्ति ही काम करती है । श्रद्धा और विश्वास होने पर ही परमात्मा की प्राप्ति होती है, यह तर्क से संभव नहीं है । हमारे शास्त्रकार स्वयं यह घोषणा करते हैं कि जो हमारे अच्छे आचरण है, उन्हीं का तुम्हे अनुसरण करना चाहिए, अन्य का नहीं—"यान्यस्माकं सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि ।" आज हमारे समाज में नैतिक मूल्यों का संकट विषम रूप में उपस्थित है । एक ओर वैज्ञानिक प्रगति ने तथाकथित शिक्षित मनुष्य को मानवीय गुणों से शून्य, यन्त्रवत् बना डाला है तो दूसरी ओर अधिसंख्य अशिक्षित जन अन्धश्रद्धा के जाल में जकडे हुए हैं । अतः इस बात की महती आवश्यकता है कि "श्रद्धा" जैसे सार्वकालिक, सार्वभौमिक सद्गुणों के सत्य स्वरूप को जनसाधारण तक पहुँचाया जाए, ताकि भारतीय संस्कृति के सनातन सन्देश सर्वजनग्राह्य हो सके । वैदिक ऋषि की यह कामना पूर्ण हो— "श्रद्धां प्रातर्हवामहे श्रद्धां मध्यन्दिनं परि । श्रद्धा सूर्यस्य निम्रुचि श्रद्धे श्रद्धापयेह नः ।।" (ऋग्वेदः–१०.१५१.४)

इसके बाद राजा कि तरफ से दिये गये विजय उत्सव दावत में सभी ने मिल कर अपनी जीत कि खुशिया मनाने में व्यस्त हो गये। इस तरह से मुगलसेना का बुरी तरह से हारने का सदमा को मुगल साम्राट दिल्ली में बैठा औरंगजेब बर्दास्त नहीं कर सका। जिसके कारण वह मृत्यु को उपलब्ध हुआ। और उसके सामराज्य का पतन बहुत तिब्रता से होने लगा। एक समय ऐसा भी आगया। जब मुगलसामराज्य केवल दिल्ली के कुछ इलाको में ही सिमट कर रह गया था।

राजा हरिश्चन्द्र को अपने जीत कि उम्मिद नहीं थी उन्होने केवल कैलाशके कहने पर ही युद्ध का ऐलान किया था। और कैलाशकि सुझ बुझ के कारण ही युद्ध में विजय को उपलब्ध हुए। उसमें सबसे बड़ा घाटा भी बैजु को हि उठाना पड़ा क्योंकि उसके दो बहादुर पुत्र भी हजारों सेना के साथ शहिद होगये। विजयपुर के राजा हरिश्चन्द्र ने युद्द के कुछ दिनो के बदा ही एक शानदार जलसे का आयोजन अपनी हवेली में किया। सब को

यथा योग्य जित की खुशी में बधाई के साथ उपहार में बहुत सारा अपना धन दान किया जो मुगलों की सेना से लुटा गया था। इसके अतिरिक्त कैलाशको हजारों एकड़ जमिन दिया गया। इसके साथ मानस को भी कई सौ एकड़ जमिन को दिया गया। यह कैलाशऔर मानस विजयपुर क्षेत्र के छनवर इलाके के सबसे बड़े जिमदार की उपाधी से नवाजे गये। ऐसा ही सब कुछ चलता रहा।

3 हमारे पुर्वज मे संघर्ष

मुगलो के सामराज्य के पतन के साथ ही दूसरी तरफ से अग्रेंजी इश्ट इंडिया कम्पनी ने अपने पैर बंगाल में जमा लिया था। और उसने अपने पैर पसारता हुआ बक्सर से होते हुए वनारस इलहाबाद अवध आदि पर अपना कब्जा जमाते हुये गंगा के रास्ते चलते हुये उसने अपना एक अड्डा विन्ध्य क्षेत्र में भी वसा लिया। और इसका नाम उसने मिर्जापुर रखा। जिसके अंतरगत ही विजयपुर राज्य आता था। जो एक प्रकार से मिर्जापुर का हृदय था। जिसकी खबर अंग्रेजों को भली भाति हो चुकी थी जिसके कारण ही वह इस हृदय रूपी विजयपुर नगर को समटने के लिये सड़यंत्र सुरु कर दिया। उसी बिच इस हरे भरे इलाके जो हर प्रकार से समपन्न था। इस पर अंग्रेजो कि निगाह पड़ गई जब वह गंगा में यात्रा करते हुए वानरस से इलहाबाद दिल्ली के लिये सफर पर होते जिसको प्राप्त करने के लिये उन्होने एक बहुत खतरनाक सडयंत्र रचा जिसकी किसी को कानो कान पता नहीं चला, ना कैलाशको ही खबर हुई, ना ही विजयपुर के राजा हरिश्चन्द्र को ही हुआ। अंग्रेजो में एक बहुत चालाक और धुर्त किस्म का अफसर था जिसका नाम पिटर डिसुजा था। उसनें राजा के दामाद को अपना मित्र बना लिया,और उनको अपने साथ रख लिया उनके लिये अच्छि अच्छि विदेशी औरतों की व्यवस्था कर दि। जिससे राजा का दामाद अपनी सारी राजा से संबंधित गुप्त जानकारीयां उन अंग्रेजों के सपुर्द कर दिया। जिसका अंग्रेजो ने काफी फायदा उठाया। अंग्रेजों ने सिधा सिधा आमने सामने युद्ध नहीं किया क्योंकि वह जानते थे। कि वह इस तरह से गंगा के तराई में फंस जायेंगे। और यहां कि जमिन इन जमिदारों और किसानो के साथ राजा के पक्ष में जित जायेंगी। क्योंकि छानबे क्षेत्र छनवर के इलाके से बाहर निकला आसान नहीं था। वहां पर वहां के लोकल लोग बहुत अधिक थे। अंग्रेजों सबसे पहले कैलाशको और राजा हरिश्चन्द्र को खत्म करने की योजना बनाई। क्योंकि वह जानते थे की इस राज्य के यह ही दो आधार भुत स्तम्भ है यदि इनको नष्ट कर दिया जाये तो विजयुर राज्य को नष्ट करने में ज्यादा समय नहीं लगेगा। यह विजयपुर रेत के महल कि तरह से विखर जायेगा।

जैसा कि राजा को मारने के लिये राजा कि सबसे कमजोर कड़ी उसके दामाद को अंग्रेजों नें अपना मुहरा बना लिया था। इसी तरह से कैलाशको मारने के लिये जो उसकी कमजोर कड़ी उसका मित्र उसके हि पड़ोष के मानस को भड़काया और उसे जमीन का लालच दिया। यद्यपि वह कैलाशऔर मानस दोनो मित्रा थे। लेकिन जमिन के मामले में दोनों जिमदारों में सबसे अधिक धाक और राजा के साथ निकटता बैजु की अधिक थी। उसके पास जमिन भी काफी अधिक थी। मानस कि तुलना में इसको साथ कैलाशकि अपनी सेना के साथ हाथी घोड़ों से सुसज्जीत सेना भी थी। जैसा कि मानस के पास अपनी सेना नहीं थी। इसके दो बेटों के साथ में किसानों मजदूरों की बड़ी सख्या थी। राजा हरिश्चन्द्र को मारने के लिये अंग्रेजों ने राजा के दामाद को हि तैयार कर लिया गया। इसका लालच दे कर कि राजा के दामाद को ही राजा विजयपर का बना दिया जायेगा। राजा का दामाद एक चरित्र हिन और विलाशी था। जिससे लालच में आकर वह तैयार होगया। मानस बहुत सम्मान करता था। कैलाशका लेकिन अन्दर ही अन्दर वह कुढ़ता भी था। उसकी तरक्कि को देख कर उसे भी हजारों एकड़ जमिन के लालच ने पकड़ लिया।

मानस ने अपने कुछ आदमियों को कैलाशको मारने के लिये तैयार कर लिया। और अपने आदमियों कि गुप्त सभा बुलाया और अपने सभी आदमियों को अपने विश्वास में ले कर उसने कहा कि यही समय की मांग है। कि हमें अंग्रेजो से मित्रता कर लेनी चाहिये, क्योंकि अब हम अंग्रेजों से लड़ तो सकते नहीं है। क्योंकि

इन्होंने मुगलों को परास्त करके सम्पूर्ण भारत पर अपना एक तरफा अधिकार कर लिया है। जैसा कि राजनिती का नियम है कि अवसर को देख कर जो उसका फायदा उठाता है वहीं अपनी गाथा इतिहास के पन्नों में लिखता है। जैसा कि पंच तन्त्र में एक कथा आती है- दक्षिण दिशा में सुवर्णवती नामक नगरी है, उसमे वर्धमान नामक एक बनिया रहता था। उसके पास बहुत- सा धन भी था, परंतु अपने दूसरे भाई- बंधुओं को अधिक धनवान देखकर उसकी यह लालसा हुई, कि और अधिक धन इकट्ठा करना चाहिए। अपने से नीचे (हीन) अर्थात दरिद्रियों को देख कर किसकी महिमा नहीं बढ़ती है? अर्थात सबका अभिमान बढ़ जाता है और अपने से ऊपर अर्थात अधिक धनवानों को देखकर सब लोग अपने को दरिद्री समझते हैं।

ब्रह्महापि नरः पूज्यो यस्यास्ति विपुलं धनम्। शशिनस्तुल्यवंशोऽपि निर्धनः परिभूयते।।

जिसके पास बहुत सा धन है, उस ब्रह्मघातक मनुष्य का भी सत्कार होता है और चंद्रमा के समान अतिनिर्मल वंश में उत्पन्न हुए भी निर्धन मनुष्य का अपमान किया जाता है। जैसे नवजवान स्त्री बूढ़े पति को नहीं चाहती है, वैसे ही लक्ष्मी भी निरुद्योगी, आलसी, "प्रारब्ध में जो लिखा है, सो होगा" ऐसा भरोसा रख कर चुपचाप बैठने वाले, तथा पुरुषार्थ हीन मनुष्य को नहीं चाहती है। आलस्यं स्त्री सेवा सरोगता जन्मभूमिवात्सल्यम्। संतोषो भीरुत्वं षड् व्याघाता महत्वस्य।।

और भी आलस्य, स्त्री की सेवा, रोगी रहना, जन्मभूति का स्नेह, संतोष और डरपोकपन ये छः बातें उन्नति के लिये बाधक है।

संपदा सुस्थितंमन्यो भवति स्वल्पयापि यः। कृतकृत्यो विधिर्मन्ये न वर्धयति तस्य ताम्।। जो मनुष्य थोड़ी सी संपत्ति से अपने को सुखी मानता है, विधाता समाप्तकार्य मान कर उस मनुष्य की उस संपत्ति को नहीं बढ़ाता है। निरुत्साही, आनंदरहित, पराक्रमहीन और शत्रु को प्रसन्न करने वाले ऐसे पुत्र को कोई स्त्री न जने अर्थात ऐसे पुत्र का जन्म न होना ही अच्छा है। नहीं पाये धन के पाने की इच्छा करना, पाये हुए धन की चोरी आदि नाश से रक्षा करना, रक्षा किये हुए धन को व्यापार आदि से बढ़ाना और अच्छी तरह बढ़ाए धन को सत्पात्र में दान करना चाहिए। क्योंकि लाभ की इच्छा करने वाले को धन मिलता ही है एवं प्राप्त हुए परंतु रक्षा नहीं किये गये खजाने का भी अपने आप नाश हो जाता है और भी यह है कि बढ़ाया नहीं गया धन कुछ काल में थोड़ा व्यय हो कर काजल के समान नाश हो जाता है और नहीं भोगा गया भी खजाना वृथा है।

धनेन किं यो न ददाति नाश्नुते, बलेन कि यश्च रिपून्न बाधते। श्रुतेन किं यो न च धर्ममाचरेत्, किमात्मना यो न जितेन्द्रियो भवेत्।

उस धन से क्या है? जो न देता है और न खाता है, उस बल से क्या है? जो वैरियों को नहीं सताता है, उस शास्त्र से क्या है? जो धर्म का आचरण नहीं करता है और उस आत्मा से क्या है? जो जितेंद्रिय नहीं है। जैसे जल की एक बूँद के गिरने से धीरे- धीरे घड़ा भर जाता है, वही कारण सब कारण सब प्रकार की विद्याओं का, धन का और धर्म का भी है।

दानोपभोगरहिता दिवसा यस्य यान्ति वै। स कर्मकारभस्त्रेव श्वसन्नपि न जीवति।। दान और भोग के बिना जिसके दिन जाते हैं, वह लुहार की धोंकनी के समान सांस लेता हुआ भी मरे के समान है। यह सोच कर नंदक और संजीवक नामक दो बैलों को जुए में जोतकर और छकड़े को नाना प्रकार की वस्तुओं से लादकर व्यापार के लिए कश्मीर की ओर गया।

अंजनस्य क्षयं दृष्ट्व वल्मीकस्य च संचयम्। अवन्धयं दिवसं कुर्याद्दानाध्ययनकर्मसु।। काजल के क्रम से घटने को और वाल्मीक नामक चीटी के संचय को देखकर, दान, पढ़ना और कामधंधा में दिन को सफल करना चाहिए। बलवानों को अधिक बोझ क्या है? और उद्योग करने वालों को क्या दूर है? और विद्यावानों को विदेश क्या है? और मीठे बोलने वालों का शत्रु कौन है? फिर उस जाते हुए का , सुदुर्ग नामक घने वन में, संजीवक घुटना टूटने

से गिर पड़ा। यह देखकर वर्धमान चिंता करने लगा- नीति जानने वाला इधर- उधर भले ही व्यापार करे, परंतु उसको लाभ उतना ही होता है, कि जितना विधाता के जी में है। सब कार्यों को रोकने वाले संशय को छोड़ देना चाहिये, एवं संदेह को छोड़ कर, अपना कार्य सिद्ध करना चाहिये। यह विचार कर संजीवक को वहाँ छोड़ कर फिर वर्धमान आप धर्मपुर नामक नगर में जा कर एक दूसरे बड़े शरीर वाले बैल को ला कर जुए में जोत कर चल दिया। फिर संजीवक भी बड़े कष्ट से तीन खुरों के सहारे उठ कर खड़ा हुआ। समुद्र में डूबे हुए की, पर्वत से गिरे हुए की और तक्षक नामक सपं से डसे हुए की भी आयु की प्रबलता मर्म (जीवनस्थान) की रक्षा करती है।

अरक्षितं तिष्ठति दैवरक्षितं, सुरक्षितं दैवहतं विनश्यति। जीवत्यनाथोऽपि वने विसर्जितः। कृतप्रयत्नोऽपि गृहे न जीवति।।

दैव से रक्षा किया हुआ धन, बिना रक्षा के भी ठहरता है और अच्छी तरह रक्षा किया हुआ भी, दैव का मारा हुआ नहीं बचता है, जैसे वन में छोड़ा हुआ सहायताहीन भी जीता रहता है, घर पर कई उपाय करने से भी नहीं जीता है। फिर बहुत दिनों के बाद संजीवक अपनी इच्छानुसार खाता पीता वन में फिरता- फिरता हृष्ट- पुष्ट हो कर ऊँचे स्वर से डकराने लगा। उसी वन में पिंगलक नामक एक सिंह अपनी भुजाओं से पाये हुए राज्य के सुख का भोग करता हुआ रहता था। जैसा कहा गया है, मृगों ने सिंह का न तो राज्यतिलक किया और न संस्कार किया, परंतु सिंह अपने आप ही पराक्रम से राज्य को पा कर मृगों का राजा होना दिखलाता है। और वह एक दिन प्यास से व्याकुल होकर पानी पीने के लिए यमुना के किनारे गया और वहाँ उसे एक सिंह ने नवीन ऋतुकाल के मेघ की गर्जना के समान संजीवक का डकराना सुना। यह सुन कर पानी के बिना पिये वह घबराया सा लौट कर अपने स्थान पर आ कर विचारने लगा यह क्या है? यह सोचता हुआ चुप- सा बैठ गया और उसके मंत्री के बेटे दमनक और करटक दो गीदड़ों ने उसे वैसा बैठा देखा। उसको इस दशा में देख कर दमनक ने करटक से कहा- भाई करटक, यह क्या बात है कि प्यासा स्वामी पानी को बिना पीये डर से धीरे- धीरे आ बैठा है? करटक बोला- भाई दमनक, हमारी समझ से तो इसकी सेवा ही नहीं की जाती है। जो ऐसे बैठा भी है, तो हमें स्वामी की चेष्टा का निर्णय करने से क्या प्रयोजन है? क्योंकि इस राजा से बिना अपराध बहुत काल तक तिरस्कार किये गये हम दोनों ने बड़ा दुःख सहा है।

सेवया धनमिच्छाद्भिः सेवकैः पश्य यत्कृतम। स्वायब्यं यच्छरीरस्य मूढैस्तदपि हारितम।।

सेवा से धन को चाहने वाले सेवकों ने जो किया, ऐसा देख कर शरीर की स्वतंत्रता भी मूर्खो ने हार दी है। और दूसरे पराधीन हो कर जाड़ा, हवा और धूप में दुःखों को सहते हैं। और उस दुःख के छोटे से छोटे भाग से तप करके बुद्धिमान सुखी हो सकता है। स्वाधीनता का होना ही जन्म की सफलता है। और जो पराधीन होने पर भी जीते है, तो मरे के समान से हैं? अर्थात वे ही मुर्दों के समान हैं, जो पराधीन हो कर रहते हैं। धनवान पुरुष, आशारुपी ग्रह से भरमाये गये हुए याचकों के साथ, इधर आ, चला आ, बैठ जा, खड़ा हो, बोल, चुप सा रह इस तरह खेल किया करते हैं।

अबुधैरर्थलाभाय पण्यस्त्रीभिरिव स्वयम्। आत्मा संस्कृत्य संस्कृत्य परोपकरणीकृतः।।

जैसे वेश्या दूसरों के लिए सिंगार करती है, वैसे ही मूर्खों ने भी धन के लाभ के लिए अपनी आत्मा को संस्कार करके हृष्ट पुष्ट बनवा कर पराये उपकार के लिए कर रखी हैं। जो दृष्टि स्वभाव से चपल है और मल, मूत्र आदि नीची वस्तुओं पर भी गिरती है, ऐसी स्वामी की दृष्टि का सेवक लोग बहुत गौरव करते हैं।

मौनान्मूर्खः प्रवचनपटुर्वातुलो जल्पको वा, क्षान्त्या भीरुर्यदि न सहते प्रायशो नाभिजातः। धृष्टः पार्श्वे वसति नियतं दूरतश्चाप्रगल्भः,

सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः।।

चुपचाप रहने से मूर्ख, बहुत बातें करने में चतुर होने से उन्मत्त अथवा बातूनी, क्षमाशील होने से डरपोक, न सहन सकने से नीतिरहित, सर्वदा पास रहने से ढ़ीठ और दूर रहने से घमंडी कहलाता है। इसलिए सेवा का धर्म बड़ा रहस्यमय है, योगियो से भी पहचाना नहीं जा सका है। विशेष बात यह है कि जो उन्नति के लिए झुकता है, जीने के लिए प्राण का भी त्याग करता है और सुख के लिए दुःखी होता है, ऐसा सेवक को छोड़कर और कौन भला मूर्ख हो सकता है। दमनक बोला- मित्र, कभी यह बात मन से भी नहीं करनी चाहिये, क्योंकि खामियों की सेवा यत्न से क्यों नहीं करनी चाहिये, जो सेवा से प्रसन्न हो कर शीघ्र मनोरथ पूरे कर देते हैं। स्वामी की सेवा नहीं करने वालों को चमर के ढलाव से युक्त ऐश्वर्य और ऊँचे दंड वाले श्वेत छत्र और घोड़े हाथियों की सेना कहाँ धरी है? करटक बोला- तो भी हमको इस काम से क्या प्रयोजन है? क्योंकि अयोग्य कामों में व्यापार करना सर्वथा त्यागने के योग्य है। दमनक ने कहा- तो भी सेवक को स्वामी के कामों का विचार अवश्य करना चाहिये। करटक बोला- जो सब काम पर अधिकारी प्रधान मंत्री हो वही करे। क्योंकि सेवक को पराये काम की चर्चा कभी नहीं करनी चाहिये। पशुओं का ढुढ़ना हमारा काम है। अपने काम की चर्चा करो। परंतु आज उस चर्चा से कुछ प्रयोजन नहीं। क्योंकि अपने दोनों के भोजन से बचा हुआ आहार बहुत धरा है। दमनक क्रोध से बोला- क्या तुम केवल भोजन के ही अर्थी हो कर राजा की सेवा करते हो? यह तुमने अयोग्य कहा। मित्रों के उपकार के लिये, और शत्रुओं के अपकार के लिए चतुर मनुष्य राजा का आश्रय करते हैं और केवल पेट कौन नहीं भर लेता है? अर्थात सभी भरते हैं।

जीविते यस्य जीवन्ति विप्रा मित्राणि बान्धवा:।सफलं जीवितं तस्य आत्मार्थे को न जीवति ? जिसके जीने से ब्राह्मण, मित्र और भाई जीते हैं, उसी का जीवन सफल है और केवल अपने स्वार्थ के लिए कौन नहीं जीता है? जिसके जीने से बहुत से लोग जिये वह तो सचमुच जिया और यों तो काग भी क्या चोंच से अपना पेट नहीं भर लेता है? कोई मनुष्य पाँच पुराण में दासपने को करने लगता है, कोई लाख में करता है ओर कोई एक लाख में भी नहीं मिलता है।

मनुष्यजातौ तुल्यायां भृत्यत्वमतिगर्हितम। प्रथमों यो न तत्रापि स किं जीवत्सु गण्यते।। मनुष्यों को समान जाति के सेवकाई काम करना अति निन्दित है और सेवकों में भी जो प्रथम अर्थात सबका मानस नहीं है, क्या वह जीते हुओं में गिना जा सकता है? अर्थात उसका जीना और मरना समान है।

अहितहितविचारशून्यबुध्दे:। श्रुतिसमयैर्वहुभिस्तिरस्कृतस्य। उदरभरणमात्रकेवलेच्छो:। पुरुषपशोश्च पशोश्च को विशेषः? हित और अहित के विचार करने में जड़मति वाला, और शास्त्र के ज्ञान से रहित होकर जिसकी इच्छा केवल पेट भरने की ही रहती है, ऐसा पुरुष रुपी पशु और सचमुच पशु में कौन सा अंतर समझा जा सकता है? अर्थात ज्ञानहीन एवं केवल भोजन की इच्छा रखने वाले से घास खाकर जीने वाला पशु अच्छा है। करकट बोला- हम दोनों मंत्री नहीं है, फिर हमें इस विचार से क्या? दमनक बोला- कुछ काल में मंत्री प्रधानता व अप्रधानता को पाते हैं। इस दुनिया में कोई किसी का स्वभाव से अर्थात जन्म से सुशील अर्थवा दुष्ट नहीं होता है, परंतु मनुष्य को अपने कर्म ही बड़पन को अथवा नीचपन को पहुँचाते हैं। मनुष्य अपने कर्मों से कुए के खोदने वाले के समान नीचे और राजभवन के बनाने वाले के समान ऊपर जाता है, अर्थात मनुष्य अपना उच्च कर्मों से उन्नति को और हीन कर्मों से अवनति को पाता है। इसलिये यह ठीक है कि सबकी आत्मा अपने ही यत्न के अधीन रहती है। करकट बोला- तुम अब क्या कहते हो? वह बोला- यह स्वामी पिंगलक किसी न किसी कारण से घबराया-सा लौट करके आ बैठा है। करटक ने कहा- क्या तुम इसका भेद जानते हो? दमनक बोला- इसमें नहीं जानने की बात क्या है? जताए हुए अभिप्राय को पशु भी समझ लेता है और हांके हुए घोड़े और हाथी भी बोझा ढ़ोते हैं। पण्डित कहे बिना ही मन की बात तर्क से जान लेता है, क्योंकि पराये चित्त का भेद जान लेना ही बुद्धियों का फल है। आकार से, हृदय के भाव से, चाल से, काम से, बोलने से और नेत्र और मुंह के विकार से औरों के मन की बात जान ली जाती है। इस भय के सुझाव में बुद्धि के बल से मैं इस स्वामी को अपना कर लूँगा। जो

प्रसंग के समान वचन को, स्नेह के सदृश मित्र को और अपनी सामर्थ्य के सदृस क्रोध को समझता है, वह बुद्धिमान है। करटक बोला- मित्र, तुम सेवा करना नहीं जानते हो। जो मनुष्य बिना बुलाये घुसे और बिना पूछे बहुत बोलता है और अपने को राजा का प्रिय मित्र समझता है, वह मूर्ख है। दमनक बोला- भाई, मैं सेवा करना क्यों नहीं जानता हूँ? कोई वस्तु स्वभाव से अच्छी और बुरी होती है, जो जिसको रुचती है, वही उसको सुंदर लगती है।

यस्य यस्य हि यो भावस्तेन तेन हि तं नरम। अनुप्रविश्य मेधावी क्षिप्रमात्मवशं नयेत।। बुद्धिमान को चाहिये कि जिस मनुष्य का जैसा मनोरथ होय उसी अभिप्राय को ध्यान में रख कर एवं उस पुरुष के पेट में घुस कर उसे अपने वश में कर ले। थोड़ा चाहने वाला, धैर्यवान, पण्डित तथा सदा छाया के समान पीछे चलने वाला और जो आज्ञा पाने पर सोच- विचार न करे। अर्थात यथार्थरुप से आज्ञा का पालन करे ऐसा मनुष्य राजा के घर में रहना चाहिये।

करटक बोला- जो कभी कुसमय पर घुस जाने से स्वामी तुम्हारा अनादर करे। वह बोला- ऐसा हो तो भी सेवक के पास अवश्य जाना चाहिये। दोष के डर से किसी काम का आरंभ न करना यह कायर पुरुष का चिंह है। हे भाई, अजीर्ण के डर से कौन भोजन को छोड़ते हैं?

आसन्नमेव नृपतिर्भजते मनुष्यं, विद्याविहीनमकुलीनमसंगतं वा। प्रायेण भूमिपतयः प्रमदा लताश्च, यः पार्श्वतो वसति तं परिवेष्टयन्ति।। पास रहने वाला कैसा ही विद्याहीन, कुलहीन तथा विसंगत मनुष्य क्यों न हो राजा उसी से हित करने लगता है, क्योंकि राजा, स्त्री और बेल ये बहुधा जो अपने पास रहता है, उसी का आश्रय कर लेते हैं।

करटक बोला- वहाँ जा कर क्या कहोगे ? वह बोला- सुनो पहिले यह जानूँगा कि स्वामी मेरे ऊपर प्रसन्न है या उदास है? करटक बोला- इस बात को जानने का क्या चिंह है? दमनक बोला- सुनो दूर से बड़ी अभिलाषा से देख लेना, मुसकाना, समाचार आदि पूछने में अधिक आदर करना, पीठ पीछे भी गुणों की बड़ाई करना, प्रिय वस्तुओं में स्मरण रखना।

असेवके चानुरक्तिर्दानं सप्रियभाषणम्। अनुरक्तस्य चिह्मानि दोषेऽपि गुणसंगंहः। जो सेवक न हो उसमें भी स्नेह दिखाना, सुंदर सुंदर वचनों के साथ धन आदि का देना और दोष में भी गुणों का ग्रहण करना, ये स्नेहयुक्त स्वामी के लक्षण हैं। आज कल कह करके, कृपा आदि करने में समय टालना तथा आशाओं का बढ़ाना और जब फल का समय आवे तब उसका खंडन करना ये उदास स्वामी के लक्षण मनुष्य को जानना चाहिये। यह जान कर जैसे यह मेरे वश में हो जायेगा वैसे करूँगा, क्योंकि पण्डित लोग नीतिशास्त्र में कही हुई बुराई के होने से उत्पन्न हुई विपत्ति को और उपाय से हुई सिद्धि को नेत्रों के सामने साक्षात झलकती हुई सी देखते हैं। करटक बोला- तो भी बिना अवसर के नहीं कह सकते हो, बिना अवसर की बात को कहते हुए वृहस्पति जी भी बुद्धि की निंदा और अनादर को सर्वदा पा सकते हैं। दमनक बोला- मित्र, डरो मत, मैं बिना अवसर की बात नहीं कहूँगा, आपत्ति में, कुमार्ग पर चलने में और कार्य का समय टाले जाने में, हित चाहने वाले सेवक को बिना पूछे भी कहना चाहिये। और जो अवसर पा कर भी मैं राय नहीं कहूँगा तो मुझे मंत्री बनना भी अयोग्य है। मनुष्य जिस गुण से आजीविका पाता है और जिस गुण के कारण इस दुनिया में सज्जन उसकी बड़ाई करते हैं, गुणी को ऐसे गुण की रक्षा करना और बड़े यत्न से बढ़ाना चाहिये। इसलिए हे शुभचिंतक, मुझे आज्ञा दीजिये। मैं जाता हूँ। करटक ने कहा- कल्याण हो, और तुम्हारे मार्ग विघ्नरहित अर्थात शुभ हो। अपना मनोरथ पूरा करो। तब दमनक घबराया सा पिंगलक के पास गया। तब दूर से ही बड़े आदर से राजा ने भीतर आने दिया और वह साष्टांग दंडवत करके बैठ गया। राजा बोला- बहुत दिन से दिखे। दमनक बोला- यद्यपि मुझ सेवक से श्री महाराज को कुछ प्रयोजन नहीं है, तो भी समय आने पर सेवक को अवश्य पास आना चाहिये, इसलिए आया हूँ। हे राजा, दांत के कुरेदने के लिए तथा कान खुजाने के लिए राजाओं को तीनके से भी काम पड़ता है। फिर देह, वाणी तथा

हाथ वाले मनुष्य से क्यों नहीं? अर्थात अवश्य पड़ना ही है। यद्यपि बहुत काल से मुझ अनादर किये गये की बुद्धि के नाश की श्री महाराज शंका करते ही सो भी शंका न करनी चाहिये।

कदर्थितस्यापि च धैर्यवृत्ते, र्बुध्देर्विनाशो न हि शंड्कनीयः। अधःकृतस्यापि तनूनपातो, नाधः शिखा याति कदाचिदेव।। अनादर भी किये गये धैर्यवान की बुद्धि के नाश की शंका नहीं करनी चाहिये, जैसे नीच की ओर की गई भी अग्नि की ज्वाला कभी भी नीचे नहीं जाती है, अर्थात हमेशा ऊँची ही रहती है। हे महाराज, इसलिए सदा स्वामी को विवेकी होना चाहिये। मणि चरणों में ठुकराता है और कांच सिर पर धारण किया जाता है, सो जैसा है वैसा भले ही रहे, काँच- काँच ही है और मणि- मणि ही है।

दमनक ने अपने राजा पींगलक की मित्रता संजीवक से करा देता है और अपनी वुद्धि से और राजा की मुर्खता और संजीवक की बेबसी का फायदा उठाकर । दमनक पिंगलक को कहता है कि यह संजीवक बहुत शक्तिशाली है इससे आप मित्रता करले जिससे आपको फायदा ही होगा। और ऐसा ही दमनक संजीवक को भी बोलता है। जिससे पिंगलक संजीवक को अपना मित्र बनाकर उसे निर्भयता का अभय़ दान देकर अपने दरबार का सदस्य बना लेता है। ऐसा ही कुछ दिन चलता है। इसके बाद एक दिन उस सिंह पिंगलक का भाई स्तब्धकर्ण नामक सिंह उसके पास आया। उसका आदर- सत्कार करके और अच्छी तरह बैठा कर पिंगलक उसके भोजन के लिये पशु मारने चला।

इतने में संजीवक बोला कि- महाराज, आज मरे हुए मृगों का माँस कहाँ है? राजा बोला- दमनक करटक जाने, संजीवक ने कहा- तो जान लीजिये कि है या नहीं सिंह सोच कर कहा- अब वह नहीं है, संजीवक बोला- इतना सारा मांस उन दोनों ने कैसे खा लिया? राजा बोला- खाया, बाँटा, और फेंक फांक दिया। नित्य यही हाल रहता है। तब संजीवक ने कहा महाराज के पीठ पीछे इस प्रकार क्यों करते हैं? राजा बोला- मेरे पीठ पीछे ऐसा ही किया करते हैं। फिर संजीवक ने कहा- यह बात उचित नहीं है। निश्चय करके वही मंत्री श्रेष्ठ है जो दमड़ी दमड़ी करके कोष को बढ़ावे, क्योंकि कोषयुक्त राजा का कोष ही प्राण है, केवल जीवन ही प्राण नहीं है। यह सुन कर स्तब्धकर्ण बोला- सुनों भाई, ये दमनक करटक बहुत दिनों से अपने आश्रय में पड़े हैं और लड़ाई और मेल कराने के अधिकारी है। धन के अधिकार पर उनका कभी नहीं लगाने चाहिये। जब जैसा अवसर हो वैसा जान कर काम करना चाहिये। सिंह बोला- यह तो है ही, पर ये सर्वथा मेरी बात को नहीं मानने वाले हैं। स्तब्धकर्ण बोला- यह सब प्रकार से अनुचित है। भाई, सब प्रकार से मेरा कहना करो और व्यवहार तो हमने कर ही लिया है। इस घास चरने वाले संजीवक को धन के अधिकार पर रख दो। पिंगलक ने अपने भाई कि सलाह मान कर संजीवक को अपने धन का रक्षक बना देता है। ऐसा करने पर उसी दिन से पिंगलक और संजीवक का सब बांधवों को छोड़कर बड़े स्नेह से समय बीतने लगा।

फिर सेवकों के आहार देने में शिथिलता देख दमनक और करटक आपस में चिंता करने लगे। तब दमनक करटक से बोला- मित्र, अब क्या करना चाहिये। यह अपना ही किया हुआ दोष है, स्वयं ही दोष करने पर पछताना भी उचित नहीं है। जैसे मैंने इन दोनों की मित्रता कराई थी, वैसे ही मित्रों में फूट भी कराऊँगा। करटक बोला- ऐसा ही होय, परंतु इन दोनों का आपस में स्वभाव से बढ़ा हुआ बड़ा स्नेह कैसे छुड़ाया जा सकता है। दमनक बोला- उपाय करो, जैसा कहा है कि- जो उपाय से हो सकता है, वह पराक्रम नहीं हो सकता है। बाद में दमनक पिंगलक के पास जा कर प्रणाम करके बोला- महाराज, नाशकारी और बड़े भय के करने वाले किसी काम को जान कर आया हूँ। पिंगलक ने आदर से कहा- तू क्या कहना चाहता है? दमनक ने कहा- यह संजीवक तुम्हारे ऊपर अयोग्य काम करने वाला सा दिखता है और मेरे सामने महाराज की तीनों शक्तियों की निंदा करके राज्य को ही छीनना चाहता है। यह सुनकर पिंगलक भय और आश्चर्य से मान कर चुप हो गया। दमनक फिर बोला- महाराज, सब मंत्रियों को छोड़ कर एक इसी को जो तुमने सर्वाधिकारी बना रखा है। वही दोष है।

सिंह ने विचार कर कहा- हे शुभचिंतक, जो ऐसा भी है, तो भी संजीवक के साथ मेरा अत्यंत स्नेह है। बुराईयाँ करता हुआ भी जो प्यारा है, सो तो प्यारा ही है, जैसे बहुत से दोषों से दूषित भी शरीर किसको प्यारा नहीं है। दमनक फिर भी कहने लगा- हे महाराज, वही अधिक दोष है। पुत्र, मंत्री और साधारण मनुष्य इनमें से जिसके ऊपर राजा अधिक दृष्टि करता है, लक्ष्मी उसी पुरुष की सेवा करती है। हे महाराज सुनिये, अप्रिय भी, हितकारी वस्तु का परिणाम अच्छा होता है और जहाँ अच्छा उपदेशक और अच्छे उपदेश सुनने वाला हो, वहाँ सब संपत्तियाँ रमण करती है। सिंह बोला- बड़ा आश्चर्य है, मैं जिसे अभय वाचा दे कर लाया और उसको बढ़ाया, सो मुझसे क्यों वैर करता है? दमनक बोला- महाराज, जैसे मली हुई और तैल आदि लगाने से सीधी करी हुई कुत्ते की पूँछ सीधी नहीं होती है, वैसे ही दुर्जन नित्य आदर करने से भी सीधा नहीं होता है। और जो संजीवक के स्नेह में फँसे हुए स्वामी जताने पर भी न मानें तो मुझ सेवक पर दोष नहीं है। पिंगलक (अपने मन में सोचने लगा) कि किसी के बहकाने से दूसरों को दंड न देना चाहिये, परंतु अपने आप जान कर उसे मारे या सम्मान करें। फिर बोला- तो संजीवक को क्या उपदेश करना चाहिये? दमनक ने घबरा कर कहा- महाराज, ऐसा नहीं, इससे गुप्त बात खुल जाती है। पहले यह तो सोच लो कि वह हमारा क्या कर सकता है? सिंह ने कहा- यह कैसे जाना जाए कि वह द्रोह करने लगा है? दमनक ने कहा- जब वह घमंड से सींगों की नोंक को मारने के लिए सामने करता हुआ निडर सा आवे तब स्वामी आप ही जान जायेंगे। इस प्रकार कह कर संजीवक के पास गया और वहाँ जा कर धीरे- धीरे पास खिसकता हुआ अपने को मन मलीन सा दिखाया। संजीवक ने आदत से कहा मित्र कुशल तो है? दमनक ने कहा- सेवकों को कुशल कहाँ? संजीवक ने कहा- मित्र, कहो तो यह क्या बात है दमनक ने कहा- मैं मंदभागी क्या कहूँ? एक तरफ राजा का विश्वास और दूसरी तरफ बांधव का विनाश होना क्या करू? इस दुःख सागर में पड़ा हूं। यह कह कर लंबी साँस भर कर बैठ गया। तब संजीवक ने कहा- मित्र, तो भी सब विस्तारपूर्वक मनकी बात कहो। दमनक ने बहुत छिपाते- छिपाते कहा- यद्यपि राजा का गुप्त विचार नहीं कहना चाहिये, तो भी तुम मेरे भरोसे से आये हो। अतः मुझे परलोक की अभिलाषा के डर से अवश्य तुम्हारे हित की बात करनी चाहिये। सुनो तुम्हारे ऊपर क्रोधित इस स्वामी ने एकांत में कहा है कि संजीवक को मार कर अपने परिवार को दूँगा। यह सुनते ही संजीवक को बड़ा विषाद हुआ। फिर दमनक बोला- विषाद मत करो, अवसर के अनुसार काम करो। संजीवक छिन भर चित्त में विचार कर कहने लगा- निश्चय यह ठीक कहता है, संजीवक छिन भर चित्त में विचार कर कहने लगा- निश्चय यह ठीक कहता है, अथवा दुर्जन का यह काम है या नहीं है, यह व्यवहार से निर्णय नहीं हो सकता है। संजीवक फिर सांस भरकर बोला- अरे, बड़े कष्ट की बात है, कैसे सिंह मुझ घास के चरने वाले को मारेगा? विजय होने से स्वामित्व और मरने पर स्वर्ग मिलता है, यह काया क्षणभंगुर है, फिर संग्राम में मरने की क्या चिंता है? यह सोच कर संजीवक बोला- हे मित्र, वह मुझे मारने वाला कैसे समझ पड़ेगा? तब दमनक बोला- जब यह पिंगलक पूँछ फटकार कर उँचे पंजे करके और मुख फाड़ कर देखे तब तुम भी अपना पराक्रम दिखलाना। परंतु यंह सब बात गुप्त रखने योग्य है। नहीं तो न तुम और न मैं। यह कहकर दमनक करटक के पास गया। तब करटक ने पूछा- क्या हुआ? दमनक ने कहा- दोनों के आपस में फूट फैल गई। करटक बोला- इसमें क्या संदेह है? तब दमनक ने पिंगलक के पास जा कर कहा- महाराज, वह पापी आ पहुँचा है, इसलिये सम्हाल कर बैठ जाइये, यह कह कर पहले जताए हुए आकार को करा दिया, संजीवक ने भी आ कर वैसे ही बदली हुई चेष्ठा वाले सिंह को देखकर अपने योग्य पराक्रम किया। फिर उन दोनों की लड़ाई में संजीवक को सिंह ने मार डाला। बाद में सिंह, संजीवक सेवक को मार कर थका हुआ और शोक सा मारा बैठ गया। और बोला"- कैसा मैंने दुष्ट कर्म किया है? दमनक बोला- स्वामी, यह कौन- सा न्याय है कि शत्रु को मार कर पछतावा करते हो? इस प्रकार जब दमनक ने संतोष दिलाया तब पिंगलक का जी में जी आया और सिंहासन पर बैठा। दमनक प्रसन्न चित्त होकर "जय हो महाराज की", "सब संसार का कल्याण हो," यह कहकर आनंद से रहने लगा।

मानस ने कहा जिस प्रकार से पिंगलक ने अपने मित्र संजीवक को मार कर अपनी स्वतन्त्रता धन के साथ राज्य का विस्तार किया ऐसा ही हमे भी करना होगा। और एक दिन कैलाशराजा हरिश्चन्द्र से मिलकर शाम के समय अपने कुछ वफादार सैनिको और अपने एक पुत्र के साथ अपने हवेली को आ रहा था। सभी घोड़े से थे, इनको

मारने के लिये छानबे क्षेत्र छनवर के लाखों एकड़ का सुनसान इलाका जो था उसमें मानस द्वारा कैलाशकी मृत्यु का चक्रव्युह रचा गया। जो बस्ती से दूर एकांत जंगली घास फुंस सरपत आदि से आच्छादित था। वहीं पर मानस ने अपने सशस्त्र सैकड़ों आदमियों को छुपा रखा था। जिसने कैलाशके घुड़सवार सैनिकों को चारों तरफ से घेर कर तलवार भाला लाठी आदि से आक्रमड़ कर दिया। हंलाकि कैलाशस्वयं एक श्रेष्ठ योद्धा के अतिरिक्त बहुत विद्वान ज्ञानी पुरष थे, उसे पता था। कि उसकी जीत यहां संभव नहीं होगी। क्योंकि उसकी संख्या बहुत कम है, फिर भी उसने शेर कि तरह दहाड़ते हुये कहा। अपने पुत्र और अंगरक्ष सैनिको का हौशला बढ़ाते हुए सब को खत्म कर दो क्या देख रहो हो। इस तरह उस एकांत में चारों तरफ घमासान तलवात भालें कि आवाज गुजने लगी। कैलाशकि उम्र उस समय 75 साल थी फिर भी वह 20 साल और 25 साल के योद्धा के समान धमासान नर संहार कर रहा था। उसने अच्छे अच्छे के छक्के छुड़ा दिया था। लम्बा तगंड़ा साढ़े सात फिट का ज्वान था। उसके समान ही उसके सारे पुत्र भी सब लम्बे तगड़े हट्टे कट्टे और काफी मजदूर थे। यहां पर बैजु के साथ केवल उसका सबसे छोटा वेटा था भी उसके साथ था। जिसकी अभी कुछ एक साल पहले हि शादी हुई है। यदि कैलाशके सभी पुत्र यहां एक साथ होते तो इन पर विजय पाना कठिन था। इसलिये ही मानस ने यह चाल चली थी। इनको एकान्त में घेर कर मारा जाये। जिसमें उसका साथ देने के लिये अंग्रेजों के भी आदमी आगये थे। यह लड़ाई कई घंटों तक चली अंत में मानस जो झाडियों के पिछे छुप कर सब देख रहा था। वह अचानक मौका पाकर झाड़िययों से बाहर निकल कर अपने तिस किलो वजनी तलवार के एक खतरनाक वार से कैलाशका सर धड़ से अलग कर दिया। अब वह कैलाशनाम का योद्धा जो जमिन पर पड़ा था। अभी तक कैलाशअपने बहुत साथियों के साथ जो उसके सबसे चहेते अंगरक्षक थे सब ने मिलकर एक साथ कुल सैकड़ों लोग को मौत कि गर्त में हमेशां के लिये सुला चुके थे। जिनमे कुछ अपने थे और कुछ मानस के आदमी थे। बाकी सब जो अभी तक बचे थे, उनको मारने के लिये मानस के सभी आदमियों ने एक साथ अंग्रेजों के सिपाहियों को भी एक साथ लेकर गुट बंदी कर लिया। और उसी तरह से कैलाशके पुत्र पर आक्रमण कर दिया, जिस तरह से कौरवों ने अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु को मारने के लिये महाभारत के युद्ध में सभी महारथी एक हो गये थे। इस तरह से कैलाशके पुत्र की भी बड़ी बेरहमी से हत्या कर दी गई। यह सुचना नगर गांव में ऐसे फैली जैसे की सुखी घास में आग फैलती है। चारों तरफ त्राहि त्राहि मच गई इसके साथ अंग्रेजों कि सेनाओं ने गांव और नगर में डेरा डाल दिया। एक तरह से कर्फ्यु लागु कर दिया गया। किसी को भी घर के बाहर निकलने कि इजाजत नहीं थी।

राजा को जब यह खबर मिली कि उसका वफादार और विरयोद्धा कैलाशऔर उसके पुत्र के साथ मार दिया गया। तब वह अपने कुछ वफादर सैनिको अंगरक्षको के साथ अपनी हवेली से कैलाशकि हवेली के लिये उसको श्रद्धान्जली देने के लिये उसी रास्ते से निकला। जहां पर कैलाशऔर उसके पुत्र की हत्या हुई। उसे क्या पता था कि उसका काल भी उसका इन्तजार कर रहा है। जिसके इन्तजार में घात लगाकर अंग्रेज सैनिक के साथ मानस के आदमी और राजा का दामाद बैठ हुए थे। उन्होंने सब मिल कर राजा के साथियों समेत राजा कि अंधेरी रात्री में बड़ी निर्मम हत्या कर डाली। जिसके कारण भयंकर कोहराम मच गया। इसी बीच राजा हरिश्चन्द्र का एक लौता दामाद राजा बना दिया गया। औरं इस तरह से अंग्रेजों ने अपने मन माफिक राजा बना कर अपनी नितियों को लागु करना सुरु कर दिया विजयपुर के राज्य को कई टुकड़ों मे विभाजित कर दिया जिसमें से शहरी इलाको को अपने वस कर लिया और ग्रामिण इलाको का मानस को सबसे बड़ा जिमदार बनाया गया। और कैलाशके बचें पुत्रों को कुछ सौ एकड़ जमिन जिने खाने का देकर बाकी सारी जमिन छिन ली गई। उस जमिन में से कुछ जमिन को मानस को दिया गया। बाकि जमिन को अंग्रेज के उन सिपाहियो सैनिको को बांट दिया गया, जो कैलाशऔर उसको पुत्र के साथ राजा की हत्या करने में, और अंग्रेजों की सत्ता को लागु करने में, अंग्रेज सरकार कि मदत कि थी। और कैलाशके व्यक्तिगत सैनिको को नष्ट कर दिया गया। इसके साथ भयंकर लुट पाट व्मभिचार किया गया अंग्रेज सिपाहियों के द्वारा जिसमें अक्सर भारतिय सैनिक ही थे। जो दूसरे प्रान्तो से बुलाये गये थे। उनको वहीं गांव और नगरों में हमेशा के लिये वसा दिया गया। शसस्त्र हथियारों जिनके पास

आधुनिक राइफल और बंदुके थी। इस तरह से यह सारे अंग्रेज सैनिक के वंशज आज राजपुत गहरवार नाम से विजयपुर के इलाके में पाये जाते है।

अंग्रेजों ने अपने मकसद को तो प्राप्त कर लिया मगर कैलाशऔर मानस दो खानदान में भयानक गृहयुद्ध छिड़ गया जिसे अंग्रेजो को शान्त करने में पसिने छुटने लगे। जो छः पुत्र अभी जीन्दा है वह किसी तरह से भी अपने पिता कि हत्या का बदला लेने के लिये उतावले है। जिनको शान्त करने के लिये। अंग्रेजों के आदमियों का मानस की हवेली पर हमेशा पहरा रहता था। साथ में कैलाशके परिवार और उनके पुत्रों को मानस परिवार के किसी भी सदस्य से मिलने की मनाही थी। यदि ऐसा पाया गया तो मृत्यु दण्ड दिया जायेगा। एक तरफ तो मानस कि हवेली में चहल पहल और हमेंशा खुशी का माहौल रहता है और हमेशा मेहमान हाथी घोड़ो से आते जाते रहते थे। दूसरी तरफ कैलाशके परिवार में मातम का माहौल छाया रहता था। जिनमें तीन युवा और विधवां औरते भी थी जिनके पुत्र और पुत्री अभी छोटे छोटे थे। उनके उपर जैसे दुःखों का पहाड़ गिर गया था। वह सब अभी अपने दुःखों से उभर नहीं पाये थे। कि एक दिन अचानक कैलाशके दो मझले पुत्रों ने अपने कुछ विश्वस्थ आदमियों के साथ मानस के बड़े पुत्र मुरली को, वहीं छानबे छनवर के एकान्त में घेर लिया। जब वह मिर्जापुर शहर से कुछ सामान ले कर, अपने कुछ आदमियो के साथ, शाम को वापिस आरहे थे। जहां पर उनके पिता कैलाशको मारा गया था। वह इलाका इतना विरान और एकांत दिन में ही था। जहां पर शिवाय कुछ पक्षिययों के और निल गांयों के कोई दूसरा व्यक्ती दूर दूर तक दिखाई नहीं देता था। उस पर भी शाम का समय तब सभी सर्दि के समय में अपने अपने घरों में ऱजाईयों में दुबके हुये थे। कुछ आग का अलाव जला कर अपने शरीर को गर्म करते हुए अपने अपने झोपड़े में पड़े हुये है। बाहर गांव में शिवाय कुछ अंग्रेज सिपाहियों के कोई नही, जो वहीं के निवासी है उनको भी नहीं पता कि इस समय यहा गांव से आठ किलोमिटर दूर छनवर के मैदानों में क्या हो रहा है? जहां पर आज मानस का बेटा मुरली अपने आदमिययों के साथ अपनी जाने का भीख मांग रहा है। जिस पर कैलाशके दो ज्वान वेटे तलवार और गंड़ासे से उसके एक एक अंगों को काट रहे है। अपने पिता और भाई की हत्या का बदला लेने के लिये। इस तरह से कैलाशके पुत्रों ने मुरली को मार कर जैसे आग में जलते हुए घि डालते है यही काम किया। पहले तो किसी को पता ही नहीं चला कि मुरली कि हत्या कैसे हुई उनकी लास का भी पता नहीं चला क्योकि उनकी लास के टुकड़े करके रात्री के समय में गंगा कि धारा में प्रवाहित कर दिया गया था। जहां पर एक मछुआरें ने कैलाशके पुत्रों को देख लिया था। जिसके कारण उनको उस माझी कि भी हत्या कर के उसको भी गंगा नदी में डाल दिया। अंग्रेज सैनिको ने बहुत इस हत्या का पता लगाने के लिये बहुत छान बिन की लेकिन कुछ पता नहीं चला। इस बात का पता बहुत समय के बाद मानस को हुआ।

मानस को इस बात का बहुत दुःख हुआ वह अभी किसी प्रकार का संघर्ष नही करना चाहता था क्योंकि उस समय मुरली के चार पुत्र और एक पुत्री है। जो अभी छोटे छोटे बच्चे थे। जिनका नाम क्रमशः मातरूप, हरिशंकर, रमाशंकर, दयाशंकर जिसकी पालने पोषने शिक्षा के जिम्मेदारी मानस पर आगई थी। इसके अतिरिक्त दूसरा पुत्र विद्याधर जो अभी कुछ दिन पहले ही अपनी दूसरी शादी कि है। वह अपनी नई पत्नी के साथ हनिमुन मनाने के लिये कश्मिर गये है। विद्याधर की पहली पत्नी का देहान्त हो चुका है जिसे एक पुत्र शुबेदार और एक शुगना नाम कि पुत्री है। आगे चल कर विद्या धर के दूसरी पत्नि को तिन पुत्र हुये जिसमें केशव, बुटी, हिरा है यह सब अभी एक साथ ही रहते है। जो विद्या धर की पत्नी को अच्छा नहीं लगता है। वह अपने लिये नई हवेली बनाना चाहते है। जिसके लिये मानस ने कहा ठीक है तुम्हारे लिये एक हवेलि का निर्माण कर दिया जायेंगा, लेकिन तुम्हे मुरलि के बच्चों का ध्यान देना होगा। जब तक कि वह स्वयं को सम्हालने के योग्य नहीं हो जाते है। इस बात पर विद्या धर तैयार हो जाते है। और एक नई हवेली का निर्माण किया जाता हो जिसमें वह अपनी पत्नी और बच्चों के साथ रहने के लिये जाते है। और एक हवेली का और निर्माण किया जाता है जिसमें मुरली कि विधवा पत्नी अपने चार पुत्र और पुत्री के साथ रहने लगी।

इस तरह से मानस अपनी पत्नी के साथ अपनी हवेली में रहते थे। अचानक उनकी पत्नी बिमार हो जाती है। जिसको गंगा पार से चिकित्सों को बुला कर दिखाया जाता है। लेकिन उनकी तवियत में सुधार नहीं आता है। और कुछ महिने के बिमारी के बादे उनकी मृत्यु हो जाती है। क्योंकि वह अपने पुत्र मुरली से बहुत अधिक जुड़ी थी मुरली की अचानक युवा अवस्था मृत्यु को वह बर्दास्त नहीं कर सकी। इस तरह से मानस अकेले पड़ गये। उनकी उम्र अभी केवल साठ साल कि थी। वह उस समय भी बहुत युवा और शानदार पुरुष था, उसके पास जमिन जायदाद हाथी घोड़े की कोई कमी नही थी, ना ही किसी नौकर चाकर कि ही। उसे यह महशुष हुआ कि उसकी संपत्ति की देखभाल करने वाले कम है। जिससे उन्होने अपनी दूसरी शादी कर ली और उससे चार पुत्र पैदा किया। जो क्रमशः जितनारायन पैदा हुए। जो बहुत ताकतवर और सात फिटा का ज्वान थे एक बहुत कुशल तलावार बाज जो आगे चलकर उस क्षेत्र का सबसे ताकतवर के रूप में प्रसिद्ध हुए। जिसने अपने तेज से सारा इलाका अपने कब्जे में कर लिया। जो अंग्रेजों कि आखं का तिनका बन गया था। दूसरा फौजदार जो अंग्रेजों का पक्का वफादार खुफिया गुप्तचर बना आगे चल कर, तीसरा पुत्र अमर नाथ जो खुखांर आतंकी की तरह से उभरा, जिसके नाम से ही पुरा क्षेत्र कापंता था। वह किसी कि औरत को अपने पास रात विताने के लिये बुला लेता था। जो उसके आदेश का उलंघन करता था उसका सर कलम कर दिया जाता था। क्योंकि इनके साथ अंग्रेज भि थे। चौथा पुत्र माताचरन जो अंग्रेज का सिपाही बन गया।

इधर मुरली के बड़ा लड़का बहुत बडा जुआरी बना मातारूप जो अपना जीवन विलाश और ऐय्यास पुर्वक विताने मे ही व्यतित करता थ। लोगों कि पंचायत करना उसका प्रमुख कार्य था। जवकी मुरली का दूसरा वेटा हरीशंकर जिमदार बना, और जमिन की देखभाल करने के साथ उसका सारा हिसाब किताब रखता है। हजारों एकड़ में जमिन फैली है जिसमें हजारों किसानो के परिवार कार्य करते है कितने मजदूर का जीवन उस पर आश्रित है। तीसरा वेटा मुरली का रमाशंकर भी अपने घोड़े पर सवार हो कर हरीशंकर के साथ किसानी के काम को देखता है। चौथा वेटा मुरली का बहुत पढ़ने लिखनें में तेज था। इसलिये वह सरकारी इंजिनियर बन कर शहर से बाहर चला गया और अपनी सारी जींदगी बाहर ही व्यतित करता है। विद्याधर के पुत्र पुत्री सभी बड़े हो जाते है सब का शादी विवाह हो जाता है।

अभी भी कैलाशके पुत्रों नें अपने हृदय में उस दुःख समेटे हुए है किस तरह से मानस ने उनको पिता कैलाशकी निर्मम हत्या का सड़यन्त्र रच कर उनको मारा था। इसी फिराक से वह सब थे कि किसी तरह से मानस छनवर के एकान्त में घेर कर इसका काम तमाम कर दिया जा। जिसका वह सब इन्तजार कर रहें थे एक दिन उनको मौका मिल गया। जब मानस अपनी हवेली से दूर अपने घोड़े से छनवर में घुमने के लिये अकेले ही चला गया वह से भुल ही चुका था। कि कुछ लोग उसकी हत्या के लिये उसके लिये जाल फैला कर रखा है। उसका काल उसे अकेला ले जा रहा है। जिसमें वह फंस गया जिसका फायदा कैलाशके पुत्रों ने उठाया। मुखीया को घेर कर सभी कैलाशके पुत्रों ने एक साथ मानस पर आक्रमण कर दिया उस समय मानस 80 साल का था। फिर भी काफी ताकतवर था उसने काफी समय तक अपनी रक्षा कि और लड़ता रहा लेकिन कैलाशके पुत्रों के सामने वह अधिक समय तक नहीं ठहर सका । कैलाशके पुत्रों ने उसके एक एक अंगों को बारी बारी काटा और उसको बहुत तड़पाया मरने से पहले। और जब प्राण पखेरु मानस के निकल गये। तब कैलाशके पुत्रों ने मानस कि शरीर को झाड़ फुस एकत्रीत करके उसमें रखा दिया और उसे आग के हवाले कर दिया। इस तरह से उन्होने अपने पिता और भाई का बदला ले लिया, मानस और उसके पुत्र मुरली कि हत्या कर के। लेकिन उनको पता नहीं था कि इसका परिणाम उनके पुरे खानदान के नास का कारण बन जायेगा। जैसा कि क्रोध में आदमी अपना आपा खो देता है।

कैलाशकी अंतिम विधवा बहु जानती है कि यह गलत है इस लिये वह एक दिन अपने परिवार के सदस्यों बुला कर कहती है कि हम सब जीव है हमारे कल्याण के लिये ही इस उपासक जीव को प्रभु प्रेरणा देना प्रारम्भ करते हुए कहते है, कि हे जीव तुम सतत गतिशील कर्मशिल बनो अकर्मण्यता तुम्हे कभी भी दूर–दूर तक स्पर्श ना कर सके। आत्मा शब्द का अर्थ ही होता है निरंतर गतिशील बने रहने वाला तत्व क्योंकि अकर्मण्यता वस्तुओं को

जीर्ण शीर्ण कर देती है। जो जड़ता का प्रथम गुण है। इस तरह से कर्मशीलता निरंतर क्रियाशील बने रहना ही विकास और और प्रादुर्भाव का कारण बनती है। अर्थात क्रियाशलता ही जीवन का मुल उद्देश्य स्वयं जीवन रूप निरंतर बहने वाली उर्जा है। बस तुम कुछ ऐसा उद्योग पुरुषार्थ करो की विद्वान महापुरुष तुम्हें आगे बढ़नें में तुम्हारी सहयता करें, जिससे तुम दिन प्रतिदिन निरंतर बढ़ते रहो और तुम्हारा झुकाव श्रेष्ठतम कर्मों की तरफ ही हो। जो तुम्हारे उत्थान के लिये ही हो, तुम्हारा पुरुषार्थ निरंतर सही दिशा में सार्थक अपने जीवन श्रेष्ठ उद्देश्य की प्राप्ती के लिये हो। तुम हिंशा रहित अहिसंक कर्मो को करने वाले मनुष्यों में अग्रणी मनुष्य बनो, तुम्हारे जीवन के प्रत्येक कार्य से यह प्रतिबीम्बित हो कि तुम्हार कार्य मानव कल्याण के साथ मानव निर्माण सर्व जनहिताय और सर्वजन सुखाय हो। तुम्हारे किसी भी कार्य से किसी भी प्राणी का अन्याय से बिनाश ना हो, ना ही तुम्हारा कार्य किसी प्रकार से बिद्धन्सक हो। तुम परम ऐश्वर्यशाली मेरे समान मेरे ही सभी गुणों को धारण करने वाले और तुम्हारे जीवन में मेरे ही श्रेष्ठ गुणों की अधिकता है ना कि मेरे बिपरीत प्रकृत के गुणों की अधिकता अर्थात जणता और नस्वरता की मात्रा आधिकता हो। इस तरह से तुम मेरे साथ मेरे सानिध्य से अपने सभी कार्य को सरलता से सिद्ध करने में सबल होगे। अर्थात तुम केवल प्रेय के पिछे न चल कर मरने वाले मरणधर्मा ना बन कर श्रेय के साथ चलो जिससे तुम अमरता की उपलब्धी अपने जीवन में कर सको। अपने जीवन को तुम ऐसा बना कर निश्चित रूप से उत्तम उत्तम संतानो वालो बनों तुम्हारे जीवन की यह एक महत्त्वपूर्ण असफलता होगी यदी तुम्हारी संतान या प्रजा निकृष्ट स्वभाव कि होगी जो तुम्हारी ही शत्रु बनेगी जिससे तुम्हारा जीवन साक्षात नरक बन कर रह जायेगा। इस जीवन यात्रा में ऐसी समझदारी युक्त यात्रा करना कि तुम्हारी शरीर रोग से आक्रान्त ना हो। यह शरीर रूप तुम्हारा रथ मध्य में ही ना तुम्हारा साथ छोड़ दे यदि ऐसा हुआ तो तुम्हारी जीवन यात्रा कैसे पुरी होगी? इसके प्रती हमेशा सचेत रहना जैसे सूर्य पृथिवी का के प्रती सचेत रहता है। जब तुम हमारा ध्यान करोगे तो हमेशा स्वस्थ रहोगे, दुःखी और बीमार रोग ग्रस्त वही होते है। जो अत्यधिक शारीरिक प्राकृतिक विषय भोग में ही आसक्त तल्लीन रहते है। तुम्हे यक्ष्मा रोग ना घेरे इस राज रोग के घेरे में मत आओ यदि तुम प्रकृती का सही सद् उपयोग करोगे तो इसके शिकार तुम कैसे फंस सकते हो? चोर लुटेरे तुम्हारे संपत्ती के स्वामी कभी ना बनने पाये इसके लिए तुम हमेशा सतर्क रहों और अपनी धन की रक्षा के लिये उचित प्रबन्ध करो। बिना श्रम या पुरुषार्थ के धन संपत्ती को प्राप्त करना भी एक प्रकार की चोरी या स्तेन ही है। इससे तुम हमेशा स्वयं को मुक्त रखो। यह चोरी बिभिन्न प्रकार के सट्टे लाटरी जुआ आदि इसी में आते है। यह मनुष्य कामचोर निकम्मा आरामपसंद विलाशी बनाते है। जिससे मानव भयंकर तम विपत्तीयों गन्दे व्यसनो और बिमारीयों के चपेट मे आ जाता है। जिसमे से निकलना बड़ी मशक्कत के बाद भी मुस्किल होता है कभी– कभी असंभव हो जाता है। पाप को अच्छी तरह से व्यक्ति या चित्रीत करने वाला पापी पुरुष तुम्हारें विचारों तुम्हारें मस्तिस्क पर कभी हाबी या तुम कभी उसके परबस ना हो, या वह पाप आत्मा तुम्हारें विचारों पर कभी भी शासन ना करें। तुम हमेंशा निश्चल एक शान्त चित्त रहो और अपनी इन्द्रियों को हमेंशा अपने वश में रखों और उनको अपने पर नियंत्रण रखो। गो पतौ अर्थात इन्द्रियों के स्वामी परमेश्वर के सानिध्य में रहने से इन्द्रिया अपना मार्ग कभी नहीं भटकती है और जब ऐसा नहीं होता है तो यह इन्द्रिया मानव किसी काम को नहीं छोड़ती है हर प्रकार से पथ भ्रष्ट कर देती है। गो पतौ का मतलब वेद वाणी को जानने वाला परमपिता भी होता है इस प्रभु में तुम हमेशा केन्द्रित रहना अपना ध्रु परमेश्वर को बना कर रखना, जो परमेश्वर के समिप केन्द्रित रहा वहीं यहां बचा है। जिसने ऐसा नहीं किया वह यहां संसार रूपी चक्की के दो पाटों के बिच में फंस कर पिसता रहा उसका बचना असंभव हो गया। प्रभु ही इस विश्वचक्र के धुरी की मुख्य किल है। इसी में तुम हमेंशा स्थिरता से निवास करना। बहुत होना संसार में स्वार्थरत आत्म केन्द्रित बन कर मत रहना अधिक से अधिक प्राणियों और जीवों से अपना संबन्ध स्थापित करने का निरंतर प्रयाश करते रहना दूसरों के भी दुःख दर्द को समझना और एक से मैं बहुत हो जाउ इसका भाव या ख्याल रख कर जीवन को जीना। और परमेश्वर सबसे अन्त में मंत्र से उपदेश कर रहा है। कि यज्ञमानस्य इस श्रृष्टी यज्ञ को चलाने वाला मुझ प्रभु के काम क्रोधादि पशुओं को बहुत ही सुरक्षीत रखना। क्योंकि पानी को ज्यादा सुरक्षित रखना आवश्यक नहीं लेकिन आग को बहुत सावधानी से रखने की जरुरत है अन्यथा इससे बहुत भयंकर कष्ट और दुःख उत्पन्न होता है। इसका मुख्य कारण है इनको असुरक्षित रखना और इनका लापरवाही के तरिके से उपयोग करना। जिस प्रकार से चिड़िया घर में मृगादि को

बहुत अधिक बंधन में रखना आवश्यक नहीं होता है। लेकिन उसी चिड़िया घर में शेरादि प्राणीयों को बहुत शख्त पिजड़े में रखना कितना परम आवश्यक होता है? इसी प्रकार से इन पशु रूप काम क्रोधादि को भी बहुत नियन्त्रण में रखना आवश्यक होता है। क्योंकि यह कामादि के द्वारा ही संसार में प्रजनन आदि का कार्य निरंतर होता है। यह काम उर्जा ही संसार का मूल है मन की भी उत्पत्ती इस काम से हुइ है। मन से शरीर बना और शरीर से संसार बना है। प्रजानात्मक कार्य पवित्र होना चाहिये, लेकिन जब यह अनियन्त्रित हो जाता है, तो यह काम विकास के अस्थान पर विनास क्षयकारक बन जाता है। क्रोध भी आवेश शक्ति है लेकिन जब यह अनियन्त्रित हो जाता है तो विनाशकारी सिद्ध होता है। और सब विद्धनों विपत्तीयों और अनर्थों का मुख्य है।

जैसा की योगेश्वर कृष्ण गीता मे कहते हैः- काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः। महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्।37। काम:विषयवासना; एष:यह; क्रोध:क्रोध; एष:यह; रजो-गुण रजोगुणसे; समुद्भवः उत्पन्न; महा-अशनः सर्वभक्षी; महा-पाप्मा महान पापी; विद्धि—जानो; एनम्—इसे; इह—इस संसार में; वैरिणम्—महान शत्रु। हे अर्जुन इसका कारण रजोगुण के सम्पर्क से उत्पन्न काम है, जो बाद में क्रोध का रूप धारण करता है और जो इस संसार का सर्वभक्षी पापी शत्रु है। जब जीवात्मा भौतिक सृष्टि के सम्पर्क में आता है तो उसका शाश्वत प्रभु प्रेम रजोगुण की संगति से काम में परिणत हो जाता है अथवा दूसरे शब्दों में, ईश्वर-प्रेम का भाव काम में उसी तरह बदल जाता है जिस तरह इमली के संसर्ग से दूध दही में बदल जाता है और जब काम की संतुष्टि नहीं होती तो यह क्रोध में परिणत हो जाता है, क्रोध मोह में और मोह इस संसार में निरंतर बना रहता है। अतः जीवात्मा का सबसे बड़ा शत्रु अनियन्त्रित काम है और यह काम ही है जो विशुद्ध जीवात्मा को इस संसार में फंसा रहने के लिए प्रेरित करता है। क्रोध तमोगुण का प्राकट्य है। ये गुण अपने आपको क्रोध तथा अन्य रूपों में प्रकट करते हैं। अतः यदि रहने तथा कार्य करने की विधियों द्वारा रजोगुण को तमोगुण में न गिरने देकर सतोगुण तक ऊपर उठाया जाए तो मनुष्य को क्रोध में पतित होने से आत्म आसक्ति के द्वारा बचाया जा सकता है। अपने नित्य वर्धमान चिदानंद के लिए भगवान ने अपने आपको अनेक रूपों में विस्तार कर लिया और जीवात्माएं उनके इस चिदानंद के ही अंश हैं। उनको भी आंशिक स्वतंत्रता प्राप्त है, किन्तु अपनी इस स्वतंत्रता का दुरुपयोग करके जब वे सेवा को इंद्रिय सुख में बदल देती हैं तो वे काम की चपेट में आ जाती है। भगवान ने इश सृष्टि की रचना जीवात्माओं के लिए इन कामपूर्ण रुचियों की पूर्ति हेतु सुविधा प्रदान करने के निमित्त की और जब जीवात्माएं दीर्घकाल तक काम-कर्मों में फंसी रहने के कारण पूर्णतया ऊब जाती हैं तो वे अपना वास्तविक स्वरूप जानने के लिए जिज्ञासा करने लगती हैं। कैलाशकी आखिरी बहु का उपदेस उसके घर के किसी सदस्य के गले नहीं उतरा उसी प्रकार से जिस प्रकार से किसी ज्वर ग्रस्त मनुष्य को मिठा रस मिठा नहीं लगता है। बदलें में घर के और सदस्य उसे भिरु और मुर्ख कहने लगे। और कहा कि यह जाहिलों का कार्य है जिसे तुम परमेस्वर का उपदेस कहती हो। अपनी बात को लोगों ने ठीक कहा कि यह हत्यया और बदले का कार्य सर्वथा उचित है। जिससे नाराज हो कर कैलाशकि आखिरी बहु जो बनारस जिले के एक जमिदार कि पुत्री थी वह अपने पिता के घर वहां जा कर रहने लगी क्योंकि उसे इस हत्या का परिणाम पहले से जैसे ज्ञात हो गया था कि आगे क्या होने वाला है?

मानस के वेटों को जब यह ज्ञात हुआ कि उसके पिता कि निर्मम हत्या कर दिया गया है। बैजु के पुत्रों के द्वारा तब उन सबने एक साथ कैलाशकी हवेली पर रात्री के समय हमला बोल दिया। और उसम समय जो उस घर में उपस्थित थे सबको अपनी तलवार और गड़ासे भाले से मौत के घाट उतार दिया जिसमें बच्चे औरते थी। इसके बाद पुरी हवेली में आग लगा दिया गया। जिस सामुहिक नर संहार मानस के कुछ एक सदस्य को छोड़ कर सभी लोग मारे गये थे। यह दृश्य देख कर कितनो के हृदय ने चलना बन्द कर दिया। मानस पुत्रों के हाथों से केवल कैलाशदो पुत्र और उसके परिवार बाल बच्चों के साथ और एक अंतिम विधवा बहु ही बची थी। जो उस समय कैलाशकी हवेली में नहीं थी वह अपने मायके चली गई थी। वह उसी पुत्र की पत्नी थी जिसकी हत्या बैजु के साथ कि गई थी। वह बहुत दयालु और धार्मिक प्रवृत्ति की नेक महिला थी और बहुत धनी थी। वह प्रायः अपने मायके ही रहती थी। इस तरह से मानस के पुत्र उन सब को तलासने लगे। और जो उनके हाथ में

नहीं आये थे। कुछ समय के बाद पता चला कि कैलाशके बचे पुत्रों अपना नया निवास कुसेहरा के जंगल में बसाया है, जो विन्ध्य पर्वत पर है।

कैलाशके परिवार को यह मानस के सभी लोग मिल कर एक एक कर के बारी बारी कर सभी पुत्रों और पौत्रों को धोखें से चाल चल कर अंग्रेजों कि सहायता से एक एक कर इस तरह से मारने लगे बारी बारी करके जिससे किसी को सक भी ना हो, और सब मारे भी जाये। अर्थात खाने में जहर दे दिया या फिर दुर्घटना करा दिया। सराकारी अंग्रेजी हुकुमत ने उन पर तरह तरह के आरोप को लगा दिया था। क्योकि अंग्रेजों को एक बहुत बड़े भुभाग पर अपना रेल्वेस्टेशन बनाना था। जिसका कैलाशका परिवार विरोध कर रहा था। क्योंकि वह जमिन बाजार से सटी हुई किमती थी। जो कैलाशके परिवार के नाम थी। इस तरह से अंग्रेजों ने मानस की मृत्यु के बाद उनके तीनों वेटों को जीत नारायन, अमर नाथ, फौजदार को अपने हाथ का मोहरा बना कर कैलाशके सारे वंश का हि सफाया कर दिया। शिवाय कैलाशकी अन्तिम बहु को छोड़ कर, उसके लिये कुछ सौ एकड़ जमिन को छोड़ कर और उसकी सारी जमिन को मानस के परिवार को दे दिया गया।

जिस जमिन पर बाद में मुरली के पुत्रों का कब्जा बन गया। जब मुरली के पुत्र रमासंकर और उनके पुत्र संतोष कि शादी कैलाशकी आखिरी बहु के भाई अयोध्या की पुत्री राजकुमारी के साथ हो गया। क्योंकि यह जमिन की देखभाल करते थे। जितनारायन ने अपनी एक नौटंकी की कंपनी खोल रखी थी। जो हमेंशा यात्रा पर ही रहता था। जब वह आता जो इधर गुंडे किस्म के लोग उभरते उसका सफाया कर देता था। अंग्रेज सभी का उपयोग मतलब से करते थे। जीत नारायन जो अंग्रेजो के कहने पर रेत कि खान को भी देखता था। जित नारायन के ना रहने पर रेत कि खान को अमरनाथ और फौजदार दोनो भाई देखते थे। यह दोनो की चरित्र हिनता से साधरण जनता ने इनके खिलाफ विद्रोह कर दिया। इस तरह से इनकी दुश्मनी ऐसे लोगों से होगई। जो इनके आतंक और अत्याचार से अत्यधिक दुःखी और परेशान थे। जिसके लिये उन्होने एक गुट बना लिया। जिसका नाम तीवारी गुट था, जिससे इन दोनो गुटों की लड़ाईयां अक्सर होती रहती थी। दूसरी तरफ मुरली का बड़ा लड़का मातारूप भी इनके समान ही था। वह लड़ाईयां नहीं करता। लेकिन जुआरी और विलाशिता के लिये बहुत समाज में प्रसिद्ध हो चुका थ। दुसरों की औरतों को देखना उसकी बुरी आदत थी। जिसके खिलाफ उस क्षेत्र के यादव लोगों ने विद्रोह कर दिया। जिसके लिये बराबर लड़ाई इन गुटों में होती कभी इस गुट के एक दो आदमी मारे जाते, कभी कभी। इन गुटों के पास अपनी बंदुक और दूसरे हथियार भी थे। जिसका यह सब गलत उपयोग करते थे। जिसकी वजह से आगे चल कर अंग्रेजो ने इन गुटों में समझौता कराने के लिये जमिनो का और बटवारां कराया। जिसके जिम्मे जितनी जमिन थी। वह जमिन उन सब को दे दिया गया। इस तरह से जमिन कम होने लगी। और सारे भाई एक में रह नहीं पाये। उन्होने अलग होने का फैसला किया। और सबने अपने अपने लिये अलग अलग घर बनावाया। सब का परिवार बढ़ रहा था। सबके कई कई पुत्र और पुत्रीयां थी।

इस तरह से मानस के वंश में इस समय उसकी पहली पत्नी से दो पुत्र में मुरली और विद्याधर, जिसमें से मुरली के चार पुत्र और विद्या धर के पहली पत्नी से एक पुत्र और दूसरी पत्नी से तीन पुत्र कुल मिला कर चार पुत्र विद्याधर के भी है। और स्वंय मानस के दुसरी पत्नी के चार पुत्र यह सब मिला कर कुल मानस के वंश में छः पुत्र और आठ पौत्र है। जो लग भग हम उम्र ही है। उन सबने अपनी सारी समंप्ती का बटवारां कर लिया जिसमें जमिन के अतिरिक्त हाथी घोड़े सोने चादी भी उसके साथ नौकर चाकर भी बट गये।

इस पर भी अंग्रेज शान्त नहीं हुए उनको और जमिन की जरुरत पड़ गई। रेल्वेस्टेसन के अतिरीक्त दूसरा बड़ा यार्ड बनाने के लिये। जो पचास एकड़ का जमिन का टुकड़ा शहर के पास का था। जो जमिन मानस के दूसरी पत्नी के पुत्रों कि जमिन थी। जिस जमीन से काफी आमदनी होती थी। क्योंकि वह आम अमरुद का बगिचा था जिसको नष्ट करके अंग्रेज वहां रेल्वे का यार्ड बनाने का प्रयाश कर रहे थे। जब इसकी बात एक अंग्रेज अधिकारी ने जीतनारयन मानस के बड़े वेटे से कि, तो वह भड़क गया। और उस अंग्रेज अधिकारी को अपनी दलान से मार कर भगा दिया। यह कहते हुए कि अब यहां कभी मत दिखाई देना, नहीं तो मैं तुम्हे जान

से मार दुंगा। इस बात का पता जब और बड़े अंग्रेज अधिकारियों को चला तो उन सबने एक नई कुरुप योजना बनाई। रघुनाथ जो इस समय सबसे अधिक तपा था। उसको मारने की, जिसके लिये उन्होंने तिवारी गुट को अपने साथ ले लिया। और उनको रेत कि खान देने का वादा किया। जिससे बहुत बड़ी आमदनी जीतनारयन बंधुओं को होती थी। जिसको छिन कर मानस के पुत्र और उनके मुरली विद्याधर के पुत्रों की कमर को तोड़ना चाहते थे।

जीतनारयन को जब यह पता चल कि उसको मारने के लिये अंग्रेज उसके शत्रुओं से मिल कर उसके लिये जाल विछा रहे है। तो उसने भी अपने को मजबुत करने के लिये जनता को अपने साथ करने के लिये। एक योजना बनाई, जैसा कि हम सब जानते है मानस खानदान और कैलाशखानदान कई पुस्तों से दुस्मनी चल रही है। जिसका अंत लगभग हो चुका है। आज के तारिख में केवल मानस कि अंतिम बहु के कोई नहीं जिन्दा बचा है। रघुनाथ एक योद्धा के साथ काफी बुद्धिमान और कलाकार प्रकृति का आदमी है। जो जनता के भावों को समझता है। उसने मानस की बहु को अपने साथ मिलाने कि योजना बनाई। इस तरह से जो मानस के पक्ष में जो साधरण जनता नहीं। जो कैलाशके वफादार लोग है, जो अपने नेता के तौर पर कैलाशकी बहु को ही आज भी देखते है। रघुनाथ यह विचार करता था कि इस तरह से यदि हम अपने लोकल लोगों को अपने साथ करलेगें तो हम अंग्रेजो का सामना कर सकते है। जैसा कि हम जानते है, कि कैलाशका आखिरी बहु जो अपने मायके में रहती है। जिसके पिता बहुत बड़े वनारस के जमिदार और धनी है। वहां पर एक बार जाकर रघुनाथ ने कैलाशकी आखिरी बहु से मिलने का निर्णय किया। जाने से पहले उसने अपने आने का संदेश भेज दिया। कैलाशकी बहु भी यह लड़ाई झगड़ा नहीं चाहती थी और वह किसी तरह से इस लड़ाई को खत्म अपने जीवित रहते ही करना चाहती थी। इसलिये वह रघुनाथ का संदेश स्विकार कर लेती है। और उससे मिलती है। कैलाशकी वहु उस समय तक वृद्धा हो चुकी थी उसकी उम्र 90 साल के करीब थी। जबकि रघुनाथ 60 साल का हो चुका था। यह राजनैतिक मुलाकात थी। दोनों कि मुलाकात एक हवेली में बहुत सारे वफादार आदमीयों मध्य निश्चित किया गया। जहां पर रघुनाथ पहुंच कर अपनी मनसा को कैलाशकी बहु के सामने रखा। और उसने कहा कि यह अंग्रेज हमारी दुस्मनी का गलत इस्तेमाल कर रहे है। हम ऐसे ही लड़ते रहे तो हमारे और आपके आदमी में कोई भी जिन्दा नहीं बचेगा। इस तरह से हम सब को ही मार दिया जायेगा। जैसा कि कहा गया है कि बाहरी शत्रु से लड़ने के लिये अपने आंतरिक शत्रुता से मिल जाना चाहिये। इस समय हमारे साथ अंग्रेज धोखे पर उतर आयें है। जो हमारे पिताजी(मानस) के साथ मित्रता की थी और बहुत सारे वादा किया था। उसको वह सब भुल चुके है। उनका केवल एक मतलब है हम सब का नर संहार। कैलाशकि बहु ने कहां हम युद्द के पछ में कभी नहीं थे। यह तो हमारें बड़े भाईयों के सर पर खुन सवार हो चुका था। जिसका बदला लेने के लिये उन्होनें अपना सब कुछ गवां दिया। यदि तुम्हे हमारी बची हुई जमिन चाहिये तो तुम उसको भी ले सकते हो। उसके लिये तुम्हे हमारे परिवार के एक सदस्य को अपने परिवार में सामिल करना होगा। इस तरह से हमारी दुस्मनी मित्रता में बदल सकती है। मैंने सुना है कि तुम्हारें भाई मुरली के चार पुत्रों में रमासंकर का दूसरा पुत्र शादी के योग्य हो चुका है। उससे मैं अपने भाई कि पुत्री की शादी करा देगे। जिससे हमारी शत्रुता के अस्थान पर मित्रता के विजारोपड़ होगा। जिसके लिये रघुनाथ तैयार होगये। क्योंकि वह किसी भी किमत पर कैलाशके आदमियों को अपने पक्ष में करना चाहता थे। इस तरह से फैसला हो गया और इस खुस खबरी के साथ जीत नारायन अपने घर पर आगये। और यह बात मुरली के पुत्रों को बताया। साथ में नगर में भी फैला दी गयी कि अब मानस और कैलाशखानदान अपनी शत्रुता को भुल कर आपस में मित्रता कर रहे है। और मानस खानदान के लड़के कि शादी कैलाशखानदान के लड़की से तय हो चुकी पुरे नगर में इसका ढिढोरा पिट दिया गया।

इसके साथ विवाह कि तारिक तय कर दिया गया। और विवाह कि चारों तरफ तैयारी होने लगी। दूर दूर तक सबी को निमंत्रण विवाह में सामिल होने के लिये भेजा गया। निश्चित तारिख पर रमासंकर के दूसरें वेटे संतोष और अयोद्धया प्रसाद जो बैजु के छोटे भाई है उनकी पुत्री राजकुमारी का विवाह वैदिक मंत्रोच्चारण के

मध्य संपन्न हुआ। बारात में सैकड़ो हाथी घोड़ा हजारों बारती सब अयोद्धया प्रसाद के घर पर ही दो तीन रहे, और उनके स्वागत खाने पिने की रहने की किसी प्रकार कि कमी नहीं कि गई थी। जब वहां से बारत वापिस चली तो कई पंड़ावों के बाद अपने गांव पहुंची। वाहां पर भी पुरे गांव और नगर के नर नारी सबी लोगों ने उन सब का भव्य स्वागत किया। और नये विवाह के बंधन में बधें दामपत्य जोड़ी को आशिर्वाद के साथ, बहुत सारा भेट सभी लोगों के द्वारा दिया गया। जिसके साथ पुरे नगर और गांव में जैसे दिवाली का माहौल हो गया। हर तरफ घी के दिये जलाये गये और कमना कि गई यह कैलाशऔर मानस खानदान की प्रसन्नता हमेशा ऐसी ही बनी रहे। लेकिन यह बात अंग्रेजो को अच्छी नहीं लगी।

एस दिन रात्री में जीत नाराय को पकड़ने के लिये भारी मात्रा में अंग्रेजी सिपाही गांव ब्रह्मपुरा में आ टपके और फायर करना सुरु कर दिया जब गांव वालों ने विरोध किया। तो उन पर गोलीयां बरसाई जाने लगी। उस समय अंग्रेजों का एक आफिसर और उसके साथ पुरी एक सैनिक टुकड़ी भी जो सब हथियार बंद थे। जिसमें कुछ एक को छोड़ कर सभी भारतिय सैनिक ही थे। जब गांव वालों ने देखा कि अंग्रेज सिफाई गोलियों कि बारिस कर रहें है। तो सभी गांव के आदमी बाहर आगये जिसमे हजारों कि संख्या में युवा और तलवार बाज थे। उन्होंने अंग्रेज सिपाहियों पर हमला बोल दिया, कुछ ऐसे भी गांव बड़े किसान थे। जो जीतनारायण के लिये अपनी जान कि बाजी लगाने में भी पिछे नहीं हट रहे थे। गांव के बड़े किसाने ने अपने सरदार कि रक्षा करने के लिये अपनी अपनी बंदुके निकाल लिया। और अंधाधुन फायरिगं दोनो तरफ से होने लगी। कितनी क्रास फयरिंग हुई जिससे दोनो तरफ लासों पर लासें गिरने लगी। गांव के लोग भारी पड़ने लगे। कुछ ही घंटें में रघुनाथ और उसके भाईयों ने किसानों मजदुरों और गांव वालों कि मददत से अंग्रेज सिपाहियों को अपने कब्जे में कर लिया सब जो बचे थे। सब का सर कलम करके गंगा की धारा में बहा दिया। जैसे गंगा के पानी में खुल घोल दिया गया हो। जो रात्री के चन्द्रमा के प्रकाश में ऐसे चमक रहा था जैसे नदि ही खुन कि बह रही हो। पुरे क्षेत्र में हाहा कार कोह राम जैसा मच गया। सब अपने अपने घरों से बाहर आ गये। रात्री के समय दुसरी सेना बी नहीं आ सकि ना हि उनके पास इसकी सुचना ही जिल मुख्यालय पहुंच पाई कि अंग्रेज के सभी सैनिक और अधिकारी मारे गये।

जब यह सुचना अंग्रेजों के कानों में पहुंची तो उन्होंने सुबह हि ब्रह्मपुरा में हजारों कि सेना में पुलिस फोर्स को जिला मुख्यालय मिर्जापुर से भेज दिया और पुरे क्षेत्र को एक छावनी में बदल दिया गया। और ब्रह्मपुरा नगर के हर गांव के हर घर की तलासी कि जाने लगीग। जहां पर केवल बच्चे बृद्ध औरते ही मिली वहां पर कोई भी युवा या जिसकी तलास अंग्रेज सेना और पुलस को थी, उसमें कोई नहीं मिला। क्योकि जीत नारायनजानता था। कि यह अंग्रेज सुबह ही जायेगे और उससे पहले ही वह अपने मुख्य आदमीयों के साथ ब्रह्मपुरा कि सिमा को छोड़ कर विन्ध्य पर्वत की पहाड़ियों और गुफाओं में अपनी मंडली के साथ जा कर रहने लगा । इधर अंग्रेज सैनिक और अधिकारी निर्दोष जनता और जितनारायन के दूसरें आदमियों और दुर के रिस्तेदारों पर अपने आतंक का कहर ढाने लगे। कितने निर्दोष लोगों के महिलाओं बच्चों और बृद्धों को जान से मार दिया और कितने सारे लोगों को धरों में जिन्दा जला दिया गया।

जब जीतनारयन को यह सब ज्ञात हुआ तो उसने अपनी एक डकैतो कि सेना खड़ी कर ली। रात को ब्रह्मपुरा में आते और सुबह से पहले ही सब विन्ध्य की पहाड़ीयों में खो जाते थे। जहां पर अंग्रेंजों कि दाल नहीं गलती थी। और रात्री के समय सभी अंग्रजों और अंग्रेज अधिकारी जो भी मिल जाते थे। वह सब मारें जाते रघुनाथ और उसके आदमियों के द्वारा। ब्रह्मपुरा के नगर वासियों के लिये जीत नारायन कि गैंग भगवान के समान थी भले ही वह मर जाये। लेकिन साधरण ब्रह्मपुरा का एक भी नागरिक रघुनाथ के खिलाफ एक भी शब्द बोलने के लिये तैयार नहीं थे। अंग्रेजों के नाको में लोहे का चना चबवा दिया। मिर्जापुर नगर के सबी बड़े व्यापारी रघुनाथ के सेना के लिये हर प्रकार के धन साधन को पहुंचाते थे। उनके पास जितनारायन का पत्र पहुंचता और वह व्यापारी सामान भेज देता था। जो नहीं भेजता था, और अंग्रेजो के साथ देते थे। उनके जितनारयन गैंग के लोग चुन चुन कर मौत के घाट उतार दिया करते थे। इस तरह से जीत नारायन पुरे मिर्जापुर में एक ऐसा नाम होगया ।

जिसके नाम से ही लोगों की पैंट गिली हो जाती थी। जितनी भी अंग्रेजी सेना रात्री के समय ब्रह्मपुरा नगर में प्रवेश किया। उन सब को उसी छानबे छनवर में खदेड़ सभी ग्रामवासियों और साथ नगर वासी एक साथ किचड़ में फंसा कर उन सबका काम तमाम कर देते। वहां का राजा जित नारायन ही बना रहा। और उनको अस्त्रों को छिन कर उनके उपर ही हमला किया जात था। अंग्रेज भी उससे हार मानने वले नहीं थे। फिर भी सभी अंग्रेज सतर्कता बरतने लगे और रात्री के समय ब्रह्मपुरा के गांवों और नगर में प्रवेश करने से बचने लगे। क्योंकि अंग्रेज दस लोगों को मारते तो रघुनाथ कि सेना 20 अंग्रेज सिपाही और अफसरो को मारती थी। अंग्रेज डाल डाल चलते जो रघुनाथ पात पात चलता था। और कई सालों तक अंग्रोजों को चकमा दे कर उनको और उनके आदमियों को मारते रहा।

रघुनाथ कि सेना के लिये हथिययार गोला बारुद और खाद्य सामग्री आदि को जब जरुरत पड़ती । वह सब इलहाबाद से कलकत्ता कि तरफ जाने वाली ट्रेनों को छनवर के एकान्त में रोक लेते ते। रात्री के समय में जिससे वह अपने जरुरत कि सभी बस्तुओं को लुट लेते थे। इसके अतिरीक्त अंग्रेज यात्रियों से उनका धन भी छिन लेत थे। ऐसा भी होता था। कभी कलकत्ता से से दिल्ली के लिये ट्रेन भी लुट लि जाती थी। ट्रेन के चालक उस मिर्जापुर के इलाके से इतने भयभित हो चुके थे कि जित नारायन की गैंग का आदमी भी आकर यह लुट पाट को अंजाम देता था। अंग्रेजों को अपना सभी सामान दिल्ली से कलकत्ता और कलकत्ता से दिल्ली का यह रेलगाणियों का मुख्य रुट था। जो चारों तरफ जंगल और पहाड़ियों से घिरे होने के कारण अंग्रेजों के लिये इस गैंग को बस में करना एक समय मुस्किल लगने लगा, और वह जितनारायन गैंग नैक्सल घोषित कर दिया। और उससे भिड़ने से बचने लगे थे। साथ में लाखों रुपये का इनाम भी घोसित कर दिया था। इस सभी कार्य को अक्सर रघुनाथ का भाई अमरनाथ काफी तेज और दबंग किस्म का व्यक्ती के साथ अपनी सेना का नेतृत्व बहुत करता था उसकी आवाज में हू एक अजिबों किस्म का आकर्षण और तेज था। और सारी खुफिया जानकारी अंग्रेजों कि रघुनाथ का तीसरा भाई फौजदार एकत्रित करके रघुनाथ तक पहुंचाता था। इस तरह से रघुनाथ के दोनों भाई उसके दो हाथ के समान हो चुके थे। और आंतरिक किले कि सारी व्यवस्था को मुरली के पुत्र के साथ विद्या धर देखता था। इन सब भाईयों ने अपनी योग्यता पर उस समय इतना अधिक धन सम्पदादि लुट कर जमा कर लिया था। जिसको रखने के लिये कि और अपने पुरे आदमी और परिवार के साथ रहनें के लिये। जमिन के अन्दर अन्दर ही एक विशाल किला बनवाने का कार्य शुरु कर दिया, जिसको कुछ एक सालों में ही बड़ी सफाई से पुरा भी कर लिया और उसमें अपने सभी अदमियों के साथ जीतनारान राजा कि तरह वहां पर रहने लगा। वह किला जमिन के अन्दर इतना बड़ा था कि उसमें लाखों लोग आराम से कई सालो तक रह सकते थे। वहां किसी अंग्रेज आदमी और उसको गुप्तचर का पहुचना मुस्किल ही नहीं असंभव था। अंग्रेजों के अधिकारियों के नाक के निचे इतना बड़ा विशाल कार्य हो गया। जिसकी उनको कानो कान खबर नहीं हुई। उस किले में पहुंचने का रास्ता सुरंग के रास्ते से पहाड़ियों से हो कर जाता था, कई रास्ते थे। एक रास्ता नदि किनारे भी निकलाता। जिस रास्ते से कभी कभी जीत नारायन गंगा दर्शन के लिये भी आता। जहां पर रेत की खान थी । एक दिन किसी मुखविर ने जो तिवारी गुट का था जिनका दबदबा नदी के पार उसी प्रकार से था जिस प्रकार से नदि के इस पार विंध्य क्षेत्र में जीतनारायन और उसके भाईयों का था। एक अंग्रेज अधिकारी को यह सुचना दि की रघुनाथ हर मांह की आमावश्या के दिन रात्री के तिसरे पहर में गंगा स्नान के लिये आता है।

अंग्रेज अधिकारियों ने गुप्त रूप से अपने सशस्त्र सैनिकों को रेत की खानों में छुपा दिया। साथ में तीवारी गुट के कई खतरनाक गुर्गों को भी सामिल किया गया था। और जब रघुनाथ अपने कुछ बिशेष आदमियों के साथ सुरंग के रास्ते से गंगा किनारे नहाने के लिये आया, अंग्रेज सैनिको नें उसकों पकड़ने के लिये उसको चारों तरफ से घेर लिया और ताबड़तोड़ फायरिगं शुरु कर दिया। जिससे पहले तो जितनारायन और और उसके आदमी सकते में आगये। इसके साथ ही सबने अपना मोर्चा सम्हाल लिया। और दोनों तरफ से नदि किनारें रेत कि खदान में बंदुखें गरजने लगी। जिसमें से एक रघुनाथ का अंग रक्षक वापिस जितनारायन को किले के दरवाजे के पास ले गया और भाग जाने के लिये कहा। लेकिन जितनारायन ने कहा कि हमने कभी पिठ दिखा कर भागना नहीं सिखा है। काफी समय तक यह संघर्ष चलता रहा अंत में रघुनाथ और उसके आदमियों कि गोलिया खत्म हो गई। और उसके आदमि भी अंग्रेजो के

गोलियों के शिकार हुए। जिसके बाद जितनारायन ने आत्म समर्पण करना ही उचित समझा और अपनी सफेद पगड़ी को अपपने सर से खोल कर अपनी बंदुक कि नाल पर रख कर हवा में लहराने लगा। उस समय सुर्य अपनि लालिमा के साथ आकाश में प्रकट हो रहा था। रघुनाथ को जब अंग्रेज आफिसर नें देख कर अपने सेना को गोलीबारी रोकने का हुक्म देता है। और कहता है गिरप्तार कर लो हमें यह आदमी जिंदा चाहिये। अंग्रेज सिपाही रघुनाथ को पकड़ कर उसके हाथों में हथकड़ी डाल देते है। लेकिन किसी भी अंग्रेज सैनिक कि या अंग्रेज अधिकारी की रघुनाथ पर हाथ उठाने या मारने कि हिम्मत नहीं हुई। रघुनाथ को पकड़ कर अंग्रेज सिपाही गंगा नदी के द्वारा ही नाव से ही मिर्जापुर के चुनार के किले में ले गये। और वहां पर उसकों कैद कर दिया। इसके बाद उसे यातना दे कर उससे पुछ ताक्ष करने का प्रयास करने लगे, लेकिन उससे कुछ काम कि जानकारी नही देने पर, बाद में रघुनाथ पर राजनैतिक कैदि बनाया गया। और उनके उपर लोगों को और साधारण जनता को भड़का कर आंदोलन का रूप दिया जिसमें हजारों लोगों कि जान गई। इसका आरोप लगाया गया।

इधर जब ब्रह्मपुरा नगर और यहां के नागरिकों पता चला कि रघुनाथ को अंग्रेजों ने पकड़ लिया है। तो रघुनाथ के किले का साशक उसका छोटा भाई अमरनाथ बन गया। और उसने हर एक प्रयास किया की रघुनाथ को अंग्रेजो के कैद से मुक्त कराया जाये। उसके लिये उसने एक बार चुनार के किले पर भी हमला किया लेकिन उसे सफलता नहीं मिली। क्योंकि यह बात अंग्रेज अफसर जानते थे। कि यह आदमी बहुत खतरनाक है इसको यहां रखने का मतलब बहुत बड़ा बिद्रोह होगा। इसलिये रात्री के समय ही रघुनाथ और उसके कुछ और आदमियों को ट्रेन सें अपनी राजधानी कलकत्ता भेज दिया। कड़ी सुरक्षा के विच और वहां पर भी नहीं रखा वहां से भी एक पानी की जहाज से काले पानी की जेल में भेज दिया गया। जहां पर जीतनारयन और उसके आदमियों के साथ बहुत जुल्म और अमानविय व्यवहार किया जाता तरह तरह की यातना दि जाती थी।

अमरनाथ ने जब ब्रह्मपुरा के किले पर अपना कब्जा किया तो वह पुरी तरह से जमिन के अन्दर ही रहता था। उसने एक जोरदार हमला करके तिवारी गुट का सारा नामों निसान मिटा दिया। और बहुत लुट पाट करने के बाद उनके गांव को पुरी तरह से आग के हवाले कर दिया गया। क्योंकि उसको यह ज्ञात हो चुका था। कि जितनारायन के बारे में गुप्त सुचना देने वाला यह तिवारी गुट ही था। उसनें उस रास्ते को जो नदि कि तरफ खुलता था। उसको हमेशा के लिये बन्द करा दिया जो नदी के किनारे के लिये जाता था। वह केवल उन रास्तो का ही प्रयोग करता था जो पहाड़ीयों और जगंलों में निकलती थी। धन कि कोई कमी नहीं थी। क्योंकि काफी धन संपदा जीतनारयन ने एकत्रित कर रखी थी। जो उसके भाईयों और भान्जों के लिये बहुत थी। उसके अतिरीक्त जमिन जो मानस और बैजु की थी उसमें भी बहुत कुछ हर साल पैदा होता था। जो गुप्त रूप से किला में पहुंच जाता था। क्योंकि अब भी लोग वफादार थे। क्योकि जमिन का सारा व्यापार और कारोबार मुरली के दो वेटे ही देखते थे। हरिशंकर और रमासंकर इनका व्यवहार साधरण जनता के साथ बहुत अच्छा और मजबुत था। ऐसे ही समय गुजरने लगा।

एक दिन अंग्रेज अधिकारीयों को वह गुप्त मार्ग एक जंगली गड़ेरियें ने दिखा दिया जो ब्रह्मपुरा किले के अन्दर जाता था। जहां पर अचानक अंग्रेज अधिकारी अपनी हजारों की सेना को लेकर पहुंच गये। और अमरनाथ के साथ उसके भाई फौजदार को भी गिरप्तार कर लिया। और उनको मिर्जापुर के कारगार में डाल दिया। ब्रह्मपुरा का किला अब मुरली के पुत्रों के अन्तर्गत में आ गया। इनका स्वाभाव ठीक था इस लिये अंग्रेजों नें उनको भी कुछ समय के लिये जेल में डाला मगर कोई गवाह उनके किलाफ ना मिलने के कारण मुरली के लड़के मातासंकर, हरीसंकर, रमासंकर को छोड़ना पड़ा। जबकि विद्या धर के पुत्र इसमें नहीं रहते थे। वह अलग ही रहे अपने गावं की हवेली में जिससे उनको किसी प्रकार की ज्यादा दिक्कत का समान नहीं करना पड़ा। उस समय द्याघर बहुत विमार चल रहा था। जिसकी थोड़े समय के बाद मृत्यु होगई।

रमासंकर के पुत्र संतोष और उनकी पत्नी राज कुमारी को विवाह के दस साल पुरे कर लिये थे। और उनके दो पुत्र और एक पुत्री भी हो चुके थे। संतोष काफी पढ़ा लिखा और समझदार था इसलियें वह अपनी पत्नी और बच्चों के साथ सहर में रहने लगा। जहां पर अपने पुत्रों और पुत्री को शिक्षा ग्रहण करने के लिये एक

अच्छे विद्यालय में प्रवेस कर दिया। और स्वयं वह एक चिकित्सक का कार्य करता था जिससे उसको अच्छा पैसा मिल जाता था। जिससे उसकी जीवन की गाड़ी अच्छी तरह चल रही थी। इसके साथ संतोष गुप्त भेड़िया के समान धुर्त था जिसके कारण वह राजकुमारी और अपने बच्चे काफी नफरत करता था क्योंकि वह एक रुढ़ी वादी विचारदारा वाला व्यक्ति है। जो यह अब भी मानता है कि यह राजकुमारी और इसके बच्चे उसके शत्रु खानदान कैलाशसे संबंध रखते है। यद्यपी उसने कभी खुल कर ऐसा नहीं कहा लेकिन यह बात काफी समय के बाद सामने आती है। इस तरह से धिरे धिरे यह मानस खानदान का पुरा परिवार विखरने लगा। और लोग ब्रह्मपुरा नगर को छोड़ कर शहर कि तरफ रुख करने लगे। एक समय ऐसा आगया कि लोग धिरे धिरे किला को छोड कर अंग्रेजो के आतंक से बचने के लिये। वहां से दूरे वनारस और इलहाबाद में बसने लगे। क्योंकि अंग्रेज हर किसी को रघुनाथ का ही साथी समझते थे। जो भी ब्रह्मपुरा के किले में रहता था। और उनको तरह तरह की यातना दे कर उस किला को छोड़ने के लिये विवश करते थे। जिससे उस किले पर उनका कब्जा हो सके। एस समय ऐसा भी आता है जब अंग्रेज उस किला पर अपना अधिकार कर लिया। और अपने सैनिको के साथ कुछ अंग्रेज अधिकारी उसमें रहने लगे। जो उनका साथ देता वह उसमें रहता और जो उनके खिलफ जाता उसकों और उसको परिवार को दंड का सामना करना पड़ता अंत में वह परिवार या तो मारा जाता या फिर किला से बाहर अपना ठीकान बना लेते थे। इस में मुरली और विद्या धर के लड़के भी थे। जो वहां से बाहर रहने के लिये आगये। और अपने एक एक पुत्रों को अंग्रेजी सेना में भरती कर दिया। जिसके कारण अंग्रजो का रुख इनके प्रती थोड़ा नरम होगया । अब अंग्रेज फिर अपने मन का अत्याचार और कर वसुली करने लगे इनका विरोध करने वाला कोई नहीं था। लोगों को अपनी रोजी रोटी भी कमाने में दिक्कत का सामना करना पड़ रहा था। कुछ एक बड़े जमिदार को छोड़ कर जैसे विद्याधर और मुरली धर के पुत्रों के और सभी किसान कर्ज में डुबने लगे। क्योंकि अंग्रेज जितना पैदा खेत में होता उससे अधिक कर में ही लेते थे। जिसमें बहुत से किसानो को अपनी जमिन भी बेचनी पड़ रही थी। जो आगे चल कर मातासंकर जब अपने परिवार से अलग हो कर अपने एक पुत्र के साथ अलग रहने लगा तो उसका खर्च खेती की आमदनी से नहीं चलता था। जिसके लिये अपनी बहुत सारी जमिन उन अंग्रेज सैनिको को बेचना पड़ा जो अंग्रेजों के द्वारा जमिदारों के झगड़ों को सुलझाने के लिये ब्राह्मपुरा में बसाये गये थे। राजपुत और गहरवार आदी। इस तरह से मानस के परिवार के द्वार कैलाशके खानदान का अंत और बाद मे समझौता किया जाना और कुछ समय के लिये एक तरफा अधिकार मानस के परिवार का होना । जिसके बाद उस जमिन में राजपुत और गहरवारों ने भी अपना हिस्सा बना लिया। धिरे धिरे इस तरह से उस क्षेत्र में गहरवार और राजपुत हावी होने लगे। और पुराने मानस और बैजु के परिवार का पतन सुरु होगया।

इसके साथ ही अंग्रेजो कि भी भारत देश पर उनकी पकड़ कमजोर पड़ने लगी। जिससे उन्होने भारत को दो भागों में बाट दिया भारत और पाकिस्तान फिर भी समस्या का समाधान नहीं हुआ। तो उन्होने भारत को छद्म भेष में रहकर अपने अधिकार का प्रारंभ किया जिसमें सभी जन्म से भारतिय रंग से भारितय थे। मगर संस्कृत सभ्यता से वह सब काले अंग्रेज और उनकी दोगली नस्ल ने अधिकार करना सुरु कर दिया। जब संसार में मसिनी क्रान्ति का युग सुरु हो रहा था। वैल के अस्थान पर ट्रैक्टर ने लिया। हाथी घोड़ों के स्थान पर कार और मोटर सायकिल ने ले लिया। जो इस दौड़ में आगे बढ़ गया वह आगे ही बढ़ता गया। और जो अपने पुराने रिती रिवाज के साथ ही जुड़े रहे वह पिछण गये। इसे अंधी दौण में। जैसा कि मुरली का एक लड़का जो इन्जिनियर बन चुका था उसके लड़के अमेरिका इंगलैड और दूसरे वाहर देशों में जा कर वहां के नागरिक बन गये।

जित नारायन एक दिन काले पानी कि जेल से रात्री के समय वहां की गुप्त सुरंग के रास्ते से भाग निकला और समुन्दर में छलांग लगा दिया और तैर कर ही समुद्र को पार करने का प्रयास करने लगा। क्योकि वह गंगा नदी के किनारे का रहने वाला है। अच्छी तरह से तैरना जानता है। काफी तैरने के बाद उसको समन्दर में एक बड़ी ह्वेल मछली मरी हुई तैरती मिलती है पहले तो वह उसे समुद्र में कोई छोटा द्विप समझता है। लेकिन वह पास आया। तो देखा कि वह एक मछली की लास थी। जो तैर रही उस लास के उपर चढ़ कर रघुनाथ उसको एक नाव कि तरह से उपयोग किया। और उसी के सहारे समुद्र को पार करने का प्रयास करता रहा। जब भुख

लगती तो मछलियों को खाता और जब प्यास लगती तो धुप से समुद्र के पानी को भाप बना करता मछलियों के खाल का पात्र बना कर उनकी सहायता से, इस तरह से रात दिन समुद्र से संघर्ष करता हुआ। और इसी तरह से कई एक साल तक वह यात्रा कर के वह पांच एक साल में भारत के दक्षिण समुद्र किनारे पहुंच गया। और वहां से चलकर कई एक महिने में भिक्षु बन कर अपने नगर ब्रह्मपुरा पहुंचा जहां पर उसने सब कुछ बदला हुआ पाया। उस समय उसकी उम्र 80 साल हो चुकी थी जब उसे पता चला कि उसके भाई जेल में बन्द है। तो उसने स्वयं सांयास ले कर उसी किले के दरवाजे पर एक छोटी झोपड़ी बना कर रहने लगा। यद्यपी अब उस किले का केवल दरवाजा ही बचा है क्योकि अंग्रेज को जब यह ज्ञात हो गया कि उनको भारत छोड़ना है तो वह नहीं चाहते थे कि यह किला दुबारा किसी क्रान्ति कारी गिरोह के कब्जे में आये। क्योंकि वह बहुत गुप्त और जमिन के अन्दर था, जिसके कारण बहुत अधिक लोगों को उसके बारे में ज्ञान भी नहीं था। अंग्रेजो ने उसको एक पहाड़ी गुफा के रुप में प्रचारित किया जो डकैतो का ठिकाना थी। जिसके कारण लोगों का उस किले पर से ध्यान हट गया। जिसका उन्होने खुब फायदा उठा कर उस किले को अन्दर से ही तबाह कर दिया। अर्थात किले के अन्दर भयानक बम विस्फोट किया जिससे वब किला जमिन के अन्दर धरासाई हो गया। जब जित नारायन को यह सब ज्ञात हुआ तो उसने अपना सब कुछ भुल कर। एक नये जीवन को जीने का निर्णय किया कि वह किसी को भी अपने बारें में नही बतायेगा। और वही जंगल में रह कर लोगों को ज्ञान विज्ञान ब्रह्मज्ञान का उपदेश देते रहे। जिससे उनके बहुत भक्त बन गये। और लोग दूर दुर से उससे मिलने के लिये आते थे। बाद में उनको लोग देवरहवा बाबा के नाम से जानते थे। जिनके नाम का एक बहुत बड़ा आश्रम आज भी विन्ध्याचल के पहाड़ियों के उपर है। जहां पर एक बार मुझे भी जाने का अवसर मिला। जिससे मुझे कुछ उनके बारे में गुप्त जानकारी मिली।

यह सत्य है कि इस भारत को आज आजाद देश माना जाता है। लेकिन यह आजाद नहीं हुआ है, आज भी मानस और बैजु कि खानदान को समाप्त करने के लिये प्रयाश कर रही है। हलांकि अब मानस और बैजु नहीं रहे लेकिन जो उनके वंशज है, जिनमें से ही एक मै भी हूं। आज का समय बदल गया है। आज आदमियों को सताने का और किसी की सम्पत्ती को हड़पने का तरिका बदल गया गया। लेकिन सड़यन्त्र आज भी चल रहा है। सरकार आज कहने को भारतिय है लेकिन इसका सारा कार्य बाहरि शक्तियां निश्चित करती है। मैं तो यह मनता हूं हमारा देश आज भी किसी प्रकार से आजाद नहीं हुआ है। आज भी पहले से भी खतरनाक जाहिल और दूष्ट प्रकृति के व्यक्तियों का ही अधिकार इस देश पर है। जब से मेरा जन्म हुआ तभी से मेरे साथ किसी कैदि के समान व्यवहार किया जाता रहा है। कहने को मैं आजाद हूं मैं किसी जेल में नहीं रहता हूं लेकिन यह भी सत्य है कि यह दुनिया ही मेरे लिये यातना गृह बन गई है। और जब से मैं जानने लायक हुआ तब से ही मुझे ज्ञात हुआ है, कि मेरे साथ को गृह युद्ध हो रहा है। जिसको हम शित युद्ध कह सकते है। प्रारम्भ में यह युद्ध मेरे साथ केवल मेरा परिवार करता था धिरे धिरे जैसा मैं बड़ा होता गया मेरा युद्ध क्षेत्र भी बढ़ता गया। और उसके योद्धा जो मेरे खिलाफ लड़ने के लिये बदलते रहे। मुझे इसका ज्ञान तब हुआ जब मैने उस छनवर की जमिन पर एक ज्ञान विज्ञान ब्रह्मज्ञान नामक वैदिक विश्वविद्यालय बनाने की योजना पर काम करना शुरु किया। जो लाखों एकड़ में फैली है, जिसमें आज भी मेरी कुछ जमिन उस मैदान के बिच में उपस्थित है। क्योंकि वह क्षेत्र काफी बड़ा और खाली है वहां केवल एक खेती होती है। या केवल एक फसल उपजाई जाती है। जब गंगा में बाढ़ आने से सारा लाखों एकड़ का इलाका पानी से डुब जाता है। वहां पर विसों फिट उंचा पानी गंगा के बाढ़ने पर जमा हो जाता है। इस लिये मैने वहां पर जमिन के अन्दर किला बना कर विस्वविद्यालय चलाने का निर्णय किया। क्योंकि मुझे ज्ञात हुआ कि यहां हमारे समाज में दुःख का कारण अज्ञान है। ज्ञान का प्रसार करने के लिये एक बृहद विश्वविद्यालय बनाया जाये। क्योकि मिर्जापुर में आज भी कोई विश्वविद्यालय नहीं है। कहने के लिये वह राजावों का शहर है। आज मिर्जापुर को नक्सल प्रभावित क्षेत्र की श्रेणी में रखा गया है। वह ऐसा क्षेत्र है भी इसका भी मुझे आभास हो चुका है। क्योंकि उस क्षेत्र की कुछ ऐसी विशेषता है जहां पर आज कि सरकार के लिये खतरा महसुष होता है। भारत सरकार को डर है जिसको पिछे से अंग्रेज चला रहे है। कि यहां यदि किला बनाया गया तो वह भारती अंग्रेजों जो देश को चला रहे है उनके सामने वही चुनौति खड़ी हो सकती है जो कभी रघुनाथ और उसे भाईयों कि गैंग ने किया था। अंग्रेजों के जाने बाद भी आज तक पुरे भारत में कोई वैदिक विश्वविद्यालय नहीं है। कहने के लिये बैदिक ज्ञान सर्वोपरि है। जितने भी विश्वविद्यालय भारत में चलते है वह सब अंग्रेजी कि शिक्षा पद्दती से से चलते है। जिसको कार्ल मार्क्स, लार्ड मैकाले, और मैक्समुलर नें मिलकर तैयार किया था। या कुछ ऐसे भी है जो संस्कृत के भी है जैसे संपूर्णनन्द जो वाराणसि में है। वहां पर भी केवल पौराणिक ज्ञान के प्रचार किया जाता है। यह मेरे द्वारा एक बहुत बड़ा कदम उठाया गया। जिससे ऐसा प्रतित होता है। कि जैसे कोई जिन्न कई सौ वर्सों से किसी कब्र में

कैद था वह मेरे इस कृत्य से जागृत होगया। जिसे यह सारी दुनिया एक साथ मुझको मारने के लिये मेरे पिछे पड़ गई है। क्या अपने क्या पराये? जहां भी गया मैं हर जगह जैसे मुझ पर निगाह रखी जाती है। और हर प्रकार से मुझे नष्ट किया जाने का प्रयाश किया जाने लगा है। जैसे मैने इस दुनिया के किसी दुःखती रग पर अपनी पैनी तलवार को चुभा दिया है। जिससे यह हमारी खुन कि प्यासी बन गई। यद्यपि मै शुरु से ही साधु किस्म का आदमी रहा हूं जिसके कारण ही मै यहां पर अब तक जिन्दा हूं यद्यपि मैं किसी भी क्षेत्र में आज तक सफल नहीं हो पाय हूं। हर क्षेत्र में मुझे परास्थ करने के लिये मेरे शत्रु पहले से खड़े मुझे मिलते रहे है। फिर भी मैने हार नहीं माना है आज भी संघर्ष रत हूं। मै जानता हूं कि मै इस दुनिया से नहीं जित सकता हूं लेकिन मै लड़ते लड़ते मरना चाहता हूं। जैसा कु गिता मे कृष्ण अर्जुन को कहते है कि जब जित जावोंगे तो तुम्हे यहां याद किया जायेगा और हार जावोंगे तो भी एक योद्धा के रूप में याद किये जाओंगे। हर हालत में संघर्ष करना ही श्रेयस्कर है। आज से हज़ारो साल पहले महाभारत के युद्ध मे जब अर्जुन अपने ही भाईयों के विरुद्ध लड़ने के विचार से कांपने लगते हैं, तब भगवान श्री कृष्ण ने अर्जुन को गीता का उपदेश दिया था। कृष्ण ने अर्जुन को बताया कि यह संसार एक बहुत बड़ी युद्ध भूमि है, असली कुरुक्षेत्र तो तुम्हारे अंदर है। अज्ञानता या अविद्या धृतराष्ट्र है, और हर एक आत्मा अर्जुन है। और तुम्हारे अन्तरात्मा मे श्री कृष्ण का निवास है, जो इस रथ रुपी शरीर के सारथी है। ईंद्रियाँ इस रथ के घोड़ें हैं। अंहकार, लोभ, द्वेष ही मनुष्य के शत्रु हैं। गीता हमे जीवन के शत्रुओ से लड़ना सीखाती है, और ईश्वर से एक गहरा नाता जोड़ने मे भी मदद करती है। गीता त्याग, प्रेम और कर्तव्य का संदेश देती है। गीता मे कर्म को बहुत महत्व दिया गया है। मोक्ष उसी मनुष्य को प्राप्त होता है। जो अपने सारे सांसारिक कामों को करता हुआ ईश्वर की आराधना करता है। अहंकार, ईर्ष्या, लोभ आदि को त्याग कर मानवता को अपनाना ही गीता के उपदेशो का पालन करना है।

गीता सिर्फ एक पुस्तक नही है, यह तो जीवन मृत्यु के दुर्लभ सत्य को अपने मे समेटे हुए है। कृष्ण ने एक सच्चे मित्र और गुरु की तरह अर्जुन का न सिर्फ मार्गदर्शन किया बल्कि गीता का महान उपदेश भी दिया। उन्होने अर्जुन को बताया कि इस संसार मे हर मनुष्य के जन्म का कोई न कोई उद्देशय होता है। मृत्यु पर शोक करना व्यर्थ है, यह तो एक अटल सत्य है जिसे टाला नही जा सकता। जो जन्म लेगा उसकी मृत्यु भी निश्चित है। जिस प्रकार हम पुराने वस्त्रो को त्याग कर नए वस्त्रो को धारण करते है, उसी प्रकार आत्मा पुराने शरीर के नष्ट होने पर नए शरीर को धारण करती है। जिस मनुष्य ने गीता के सार को अपने जीवन मे अपना लिया उसे ईश्वर की कृपा पाने के लिए इधर उधर नही भटकना पड़ेगा।

श्री कृष्ण का मानव जीवन जीने का उपदेश, श्रीमद भगवद एकादश स्कंध अध्याय ७ श्लोक ६-१२

तुम अपने आत्मीय स्वजन और बन्धु-बांधवों का स्नेह सम्बन्ध छोड़ दो और अनन्य प्रेम से मुझमें अपना मन लगाकर सम दृष्टी से पृथ्वी पर स्वच्छंद विचरण करो| इस जगत में जो कुछ मन से सोचा जाता है, वाणी से कहा जाता है, नेत्रों से देखा जाता है, और श्रवण आदि इन्द्रियों से अनुभव किया जाता है, वह सब नाशवान है, स्वप्न की तरह मन का विलास है। इसीलिए माया-मात्र है, मिथ्या है-ऐसा जान लो। जिस पुरुष का मन अशांत है, असयंत है उसी को पागलों की तरह अनेकों वस्तुयें मालूम पड़ती हैं ; वास्तव में यह चित्त का भ्रम ही है। नानात्व का भ्रम हो जाने पर ही "यह गुण है" और "यह दोष है" इस प्रकार की कल्पना करी जाती है। जिसकी बुद्धि में गुण और दोष का भेद बैठ गया हो, दृणमूल हो गया है, उसी के लिए कर्म, अकर्म और विकर्म रूप का प्रतिपादन हुआ है। जो पुरुष गुण और दोष बुद्धि से अतीत हो जाता है, वह बालक के समान निषिद्ध कर्मों से निवृत्त होता है; परन्तु दोष बुद्धि से नहीं। वह विहित कर्मों का अनुष्ठान भी करता है, परन्तु गुण बुद्धि से नहीं। जिसने श्रुतियों के तात्पर्य का यथार्थ ज्ञान ही प्राप्त नहीं कर लिया, बल्कि उनका साक्षात्कार भी कर लिया है, और इस प्रकार जो अटल निश्चय से संपन्न हो गया है, वह समस्त प्राणियों का हितैषी सुहृद होता है। और उसकी सारी वृत्तियाँ सर्वथा शांत रहती हैं| वह समस्त प्राणिमात्र विश्व को मेरा ही स्वरुप – आत्मस्वरूप देखता है; इसलिए उसे फिर कभी जन्म-मृत्यु के चक्र में नहीं पड़ना पड़ता।

श्रीकृष्ण ने जहां तक हो सका मित्रता, सहयोग सामंजस्य आदि के बल पर ही परिस्थितियों को सुधारने का प्रयास किया, लेकिन जहां जरूरत पड़ी वहां सुदर्शन चक्र उठाने में भी उन्होंने संकोच नहीं किया। वहीं अपने निर्धन सखा सुदामा का अंत तक साथ निभाया और उनके चरण तक पखारें। गीता को हिन्दु धर्म मे बहुत खास स्थान दिया गया है। गीता अपने अंदर भगवान कृष्ण के उपदेशो को समेटे हुए है। गीता को आम संस्कृत भाषा मे लिखा गया है, संस्कृत की आम जानकारी रखना वाला भी गीता को आसानी से पढ़ सकता है। गीता मे चार योगों के बारे विस्तार से बताया हुआ है, कर्म योग, भक्ति योग, राजा योग और ज्ञान योग। गीता को वेदों और उपनिषदों का सार माना जाता, जो लोग वेदों को पूरा नही पढ़ सकते, सिर्फ गीता के पढ़ने से भी आप को ज्ञान प्राप्ति हो सकती है। गीता न सिर्फ जीवन का सही अर्थ समझाती है बल्कि परमात्मा के अनंत रुप से हमे रुबरु कराती है। इस संसारिक दुनिया मे दुख, क्रोध, अंहकार ईर्ष्या आदि से पिड़ित आत्माओं को, गीता सत्य

और आध्यात्म का मार्ग दिखाकर मोक्ष की प्राप्ति करवाती है। गीता मे लिखे उपदेश किसी एक मनुष्य विशेष या किसी खास धर्म के लिए नही है, इसके उपदेश तो पूरे जग के लिए है। जिसमे आध्यात्म और ईश्वर के बीच जो गहरा संबंध है उसके बारे मे विस्तार से लिखा गया है। गीता मे धीरज, संतोष, शांति, मोक्ष और सिद्धि को प्राप्त करने के बारे मे उपदेश दिया गया है। आज से हज़ारो साल पहले महाभारत के युद्ध मे जब अर्जुन अपने ही भाईयों के विरुद्ध लड़ने के विचार से कांपने लगते हैं, तब भगवान श्री कृष्ण ने अर्जुन को गीता का उपदेश दिया था। जो इस रथ रुपी शरीर के सारथी है। ईंद्रियाँ इस रथ के घोड़ें हैं। अंहकार, लोभ, द्वेष ही मनुष्य के शत्रु हैं। गीता हमे जीवन के शत्रुओ से लड़ना सीखाती है, और ईश्वर से एक गहरा नाता जोड़ने मे भी मदद करती है। गीता त्याग, प्रेम और कर्तव्य का संदेश देती है। गीता मे कर्म को बहुत महत्व दिया गया है। मोक्ष उसी मनुष्य को प्राप्त होता है जो अपने सारे सांसारिक कामों को करता हुआ ईश्वर की आराधना करता है। अहंकार, ईर्ष्या, लोभ आदि को त्याग कर मानवता को अपनाना ही गीता के उपदेशो का पालन करना है।

कृष्ण ने एक सच्चे मित्र और गुरु की तरह अर्जुन का न सिर्फ मार्गदर्शन किया बल्कि गीता का महान उपदेश भी दिया। उन्होने अर्जुन को बताया कि इस संसार मे हर मनुष्य के जन्म का कोई न कोई उद्देशय होता है। मृत्यु पर शोक करना व्यर्थ है, यह तो एक अटल सत्य है जिसे टाला नही जा सकता। जो जन्म लेगा उसकी मृत्यु भी निश्चित है। जिस प्रकार हम पुराने वस्त्रो को त्याग कर नए वस्त्रो को धारण करते है, उसी प्रकार आत्मा पुराने शरीर के नष्ट होने पर नए शरीर को धारण करती है। जिस मनुष्य ने गीता के सार को अपने जीवन मे अपना लिया उसे ईश्वर की कृपा पाने के लिए इधर उधर नही भटकना पड़ेगा।

ज्ञानी भक्त के चरित्र पर यह श्लोक और अधिक प्रकाश डालता है। इन छ गुणों को बताकर भक्त के चित्र को और अधिक स्पष्ट किया जा रहा है। जो अनपेक्ष (अपेक्षारहित) है सामान्य पुरुष अपने सुख और शान्ति के लिए बाह्य देश? काल? वस्तु ? व्यक्ति और परिस्थितियों पर आश्रित होता है। इनमें से प्रिय की प्राप्ति होने पर वह क्षण भर रोमांचित कर देने वाले हर्षोल्लास का अनुभव करता है। परन्तु एक सच्चा भक्त अपने सुख के लिए बाह्य जगत् की अपेक्षा नहीं रखता? क्योंकि उसकी प्रेरणा? समता और प्रसन्नता का स्रोत हृदयस्थ आत्मा ही होता है। जो शुचि अर्थात् शुद्ध है एक सच्चा भक्त शारीरिक शुद्धि तथा उसी प्रकार आन्तरिक शुद्धि से भी सम्पन्न होता है। जो भक्त साधक की स्थिति में भी शरीर मन और जगत् के साथ अपने सम्बन्धों में शुद्धि रखने के प्रति जागरूक रहता है वही फिर सिद्ध भक्त शुचि को प्राप्त होता है। यह एक सुविदित तथ्य है कि कोई पुरुष जिस वातावरण में रहता है? उसे देखकर तथा उसकी वस्तुओं? वस्त्रों आदि की दशा देखकर उस पुरुष के स्वभाव? अनुशासन तथा संस्कृति का अनुमान किया जा सकता है। शारीरिक शुचिता तथा व्यवहार में भी पवित्रता रखने पर भारत में अत्यधिक बल दिया गया है। बाह्य शुद्धि के बिना आन्तरिक शुद्धि मात्र दिवास्वप्न? या व्यर्थ की आशा ही सिद्ध होगी। दक्ष (कुशल) सदा सजगता तो सुगठित पुरुष का स्वभाव ही बन जाता है। किसी भी कार्य़ की सफलता की कुंजी उत्साह है। कुशल और समर्थ व्यक्ति वह नहीं है जो अपने व्यवहार और कार्य में त्रुटियां करता रहता है। दक्ष भक्त मन से सजग और बुद्धि से समर्थ होता है। उसमें मन की शक्ति का अपव्यय नहीं होता अत एक बार किसी कार्य का उत्तरदायित्व अपने कन्धों पर लेने के पश्चात् वह उस कार्य का सिद्धि के लिए सदा तत्पर रहता है। जैसा कि हम देख रहे हैं? यदि धार्मिक कहे जाने वाले लोग अपने कार्य में आलसी? असावधान और अशिष्ट हो गये हैं? तो हम समझ सकते हैं, कि हिन्दू धर्म अपने प्राचीन वैभव से कितना दूर भटक गया है। उदासीन समाज में ऐसे अनेक भक्त कहे जाने वाले लोगों का मिलना कठिन नहीं हैं? जिन्होंने अपने आप को एक अनभिव्यक्त दुखपूर्ण स्थिति में समर्पित कर दिया है। और उसका कारण केवल यह है कि किसी ने उसके साथ विश्वासघात अथवा दुर्व्यवहार किया था। ऐसे मूढ़ भक्त सोचते हैं कि समाज के इन अपराधों के प्रति वे उदासीन रहेंगे। बाद में उनकी भक्ति ही उन्हें एक दुर्भाग्यपूर्ण दायित्व प्रतीत होने लगती है? न कि एक वास्तविक लाभ दर्शनशास्त्र को विपरीत समझने पर उसकी समाप्ति समाज के आत्मघात में ही होती है। उदासीन भाव का प्रयोजन केवल अपने मन की शक्तियों का अपव्यय रोकने के लिए ही है। मनुष्य के जीवन में? छोटी छोटी कठिनाइयाँ? सामान्य बीमारियां सुख सुविधा का अभाव आदि का होना तो स्वाभाविक और सामान्य बात है। उनको ही अत्यधिक महत्व देना और उनकी निवृत्ति के लिए दिन रात प्रयत्न करते रहने का अर्थ जीवन भर परिस्थितियों को अनुकूल बनाने के संघर्ष में ही डूबे रहना है। यहाँ साधक को यह उपदेश दिया गया है कि जीवन की इन साधारण परिस्थितियों में वह अपनी मानसिक शक्ति को व्यर्थ ही नहीं खोने दे? बल्कि इन घटनाओं में उदासीन भाव से रहकर शक्ति का संचय करे। छोटे मोटे दुःख और कष्ट अनित्य होने के कारण स्वतः ही निवृत्त हो जाते हैं? अत उनके लिए चिन्ता और संघर्ष करने की कोई आवश्यकता नहीं है। व्यथारहित (भयरहित) जब मनुष्य किसी वस्तु विशेष की कामना से अभिभूत हो जाता है? तब उसे मन में यह भय लगा रहता है कि कहीं उसकी इच्छा अतृप्त ही न रह जाये। परन्तु ज्ञानी भक्त सब कामनाओं से मुक्त होने

के कारण निर्भय होता है। सर्वारम्भ परित्यागी संस्कृत में आरम्भ शब्द का अर्थ कर्म भी होता है। अत सर्वारम्भ परित्यागी शब्द का अर्थ कोई यह नहीं समझे कि भक्त वह है? जो सब कर्मों का त्याग कर देता है इस प्रकार के शाब्दिक अर्थ के कारण बहुसंख्यक हिन्दू लोग कर्म करने में अकुशल और आलसी हो गये हैं। इन लोगों को देखकर ही अन्य लोग हमारी आलोचना करते हुए कहते हैं कि हिन्दू धर्म में आलस्य को ही दैवी आदर्श के रूप में गौरवान्वित किया गया है। परन्तु यह अनुचित है? क्योंकि इस शब्द के आशय की सर्वथा उपेक्षा की गयी है। यदि कोई व्यक्ति किसी कर्म में निश्चित प्रारम्भ देखता है? तो इसका अर्थ यह हुआ कि वह स्वयं को उस कर्म का आरम्भकर्ता मानता है। उसके मन में यह भाव दृढ़ होना चाहिए कि उसने ही यह कर्म विशेष किसी विशेष फल को प्राप्त करने के लिए प्रारम्भ किया है? जिसे प्राप्त कर वह कोई निश्चित लाभ या सुख प्राप्त करेगा। जो पुरुष भगवान् का भक्त है? और सांस्कृतिक पूर्णत्व को प्राप्त करना चाहता है? उसको इस प्रकार के मान और कर्तृत्व के अभिमान को सर्वथा त्याग कर निरहंकार भाव से जगत् में कर्म करने चाहिए। वास्तविकता यह है कि हमारे जीवन में कोई भी कर्म नया नहीं है? जिसका अपना स्वतन्त्र प्रारम्भ और समाप्ति हो। सम्पूर्ण जगत् के सनातन कर्म व्यापार में ही सभी कर्मों का समावेश हो जाता है। यदि भलीभांति विचार किया जाये तो ज्ञात होगा कि हमारे सभी कर्म जगत् में उपलब्ध वस्तुओं और स्थितियों से नियन्त्रित? नियमित? शासित और प्रेरित होते हैं। ईश्वर के भक्त को विश्व की इस एकता का सदैव भान बना रहता है? और इसलिए? वह जगत् में सदा ईश्वर के हाथों में एक करण या निमित्त के रूप में कर्म करता है? न कि किसी कर्म के स्वतन्त्र कर्ता के रूप में। उपर्युक्त सद्गुणों से सम्पन्न भक्त मुझे प्रिय है। भक्त के कुछ और लक्षण बताते हुए भगवान् कहते हैं।

वह पुरुष परम भक्त कहलाता है जिसने मन और बुद्धि की अनात्म उपाधियों तथा जगत् से अपने तादात्म्य को त्याग कर आनन्दस्वरूप आत्मा में दृढ़ स्थिति प्राप्त कर ली है। अत यह स्वाभाविक ही है कि अनात्म जगत् से होने वाले सुखदुखादिक अनुभव उसे किसी भी प्रकार से न आकर्षित कर सकते हैं और न विचलित। इसे ही इस श्लोक में बताया गया है। सामान्य मनुष्य जगत् की सभी वस्तुओं को वे जैसी हैं? वैसी ही नहीं देखता। उसे कोई वस्तु प्रिय होती है? तो कोई अप्रिय। तत्पश्चात् वह प्रिय वस्तु की आकांक्षा या इच्छा करता है और अप्रिय से द्वेष। इसके पश्चात्? तीसरा द्वन्द्व उत्पन्न होता हैं प्रवृत्ति और निवृत्ति का? अर्थात् इच्छित वस्तु को प्राप्त करने के लिए और द्वेष्य वस्तु को त्यागने के लिए वह प्रयत्न करता है। इसके परिणामस्वरूप इष्ट की प्राप्ति होने पर वह हर्षित होता है? अन्यथा शोक करता है। ज्ञानी भक्त में इन समस्त विकारों और प्रतिक्रियाओं का यहाँ अभाव बताया गया है। इसका कारण यह है कि वह अपने परम आनन्दस्वरूप में स्थित होने के कारण बाह्य मिथ्या वस्तुओं में सुख और दुःख की कल्पना करके उनसे राग या द्वेष नहीं करता। राग और द्वेष के द्वन्द्व के अभाव में हर्ष और शोक का स्वत अभाव हो जाता है। वह भक्त जगत् को अपनी कल्पना की दृष्टि से न देखकर यथार्थ रूप में देखता है। शुभाशुभ परित्यागी जब मनुष्य अपने आनन्दस्वरूप को नहीं जानता है वह बाह्य जगत् में सुख और शान्ति की खोज करता रहता है। उस स्थिति में? अपने राग और द्वेष के कारण वस्तुओं की प्राप्ति के लिए शुभ और अशुभ (पुण्य और पाप) दोनों ही प्रकार के कर्म करता है। परन्तु? भक्त के मन में राग और द्वेष नहीं होने के कारण वह शुभ और अशुभ दोनों ही से मुक्त हो जाता है।इस प्रकार हम देखते हैं कि उपर्युक्त श्लोक में प्रयुक्त सभी शब्दों का एक विशेष गूढ़ अभिप्राय है? अन्यथा केवल वाच्यार्थ को ही स्वीकार करने पर ऐसा प्रतीत होगा कि ज्ञानी भक्त कोई शव अथवा पाषाण मात्र है? क्योंकि वह न इच्छा करता है और न द्वेष न हर्षित होता है और न दुखी अर्थात् वह मृत पड़ा रहता है। यह श्लोक इस बात का अत्यन्त प्रभावी उदाहरण है। कि धर्मशास्त्रों के शब्दों का वाच्यार्थ उसके मर्म या प्रयोजन को स्पष्ट नहीं करता है। अत उनके लक्ष्यार्थ पर विचार करना आवश्यक हो जाता है। इस श्लोक में वर्णित गुणें से युक्त भक्त भगवान् को प्रिय होता है। यह श्लोक प्रस्तुत प्रकरण का चतुर्थ भाग है? जिसमें ज्ञानी भक्त के और छः लक्षण बताये गये हैं। इस प्रकार अब तक छब्बीस गुणों को बताया गया है? जो भक्त के स्वाभाविक लक्षण होते हैं।

जैसा कि हमने बताया कि कैलाशके खानदान में केवल उनके अंतिम पुत्र कि पत्नी जो बनारस की रहने वाली थी। और वह अपने खानदानी छोटे भाई जीमदार अयोध्या प्रसाद के यहां, अपने मायके में रहती थी। अपने पती के मृत्यु के बाद। उनका पती बैजु जीमदार का आखिरी संतान था। जो दो भयंकर शत्रु खानदानों के बीच में अपनी दुस्मनी कि आग में जल रहे थे। जिसमे बहुत सारे लोग दोनो तरफ के अपनी जान को गवा चुके थे। उसमें एक कैलाशका आखिरी पुत्र भी था। जिसकी पत्नी बहुत धार्मिक प्रवृत्ति की थी। वह और खानदानों के बिच में खुन खराबा नही चाहती थी। वह इन दोनो कट्टर खुन के प्यासे खानदानों को फिर से प्रेम के मधुर सुत्र में बाधंना चाहता थी। जिसमें उसका साथ मानस का दूसरी पत्नी का पुत्र जीतनारयण ने दिया। और उसने अपने भाई मुरली को पुत्र रमासंकर के पुत्र संतोष और कैलाशकी बहु के भाई अयोध्या प्रसाद की पुत्री राज कुमारी

का विवाह करा दिया था। जिससे यह दो जलती हुई अग्नि ज्वाला आपस में मिलकर एक हो सके। और इन दोनों के मध्य जो झगड़े का कारण जमिन है, उसको एक कर दिया जाये। लेकिन यह पुरी तरह से संभव नहीं हो पाया उपर से तो प्रेम संबंध नाम दिया गया। लेकिन वास्तव में वह एक परिवार का गृहयुद्ध बन गया। जिसमें कुछ निर्दोष लोगों को प्रताणित किया जाने लगा। उस राजकुमारी का सबसे बड़ा पुत्र मैं हुआ। जिसके जन्म के साथ ही मृत्यु के साथ संघर्ष सुरु हो गया।

4 एक मैं हूं दूसरा कोई नहीं

मैं पढ़ा लिखा अनपढ़ गवार जाहिल किस्म का मुर्ख आदमी हूं। इस लियें तो कोई मेरी बातों को नही सुनता है। और मुझे यहां संसार में शान्ती के साथ जीना नहीं आता है, मुझे हमेसा संसार से शिकायत ही रहती है। यह विल्कुल सत्य है। इसे मैं हि जानता हूं कि किस तरह मैंने अपने आलस्य और व्यर्थ पूर्ण कार्य को करने में, और क्षणिक सांसरिक सुख कि चाह में मैंने अपने शाश्वत सुख और आनन्द को आग लगा दिया। अब जब मैंने स्वयं अपनी चिता तैयार कर के स्वयं ही उसमें आग लगा कर बैठ गया। मेरे पास अब इतना सामर्थ भी नहीं है। कि मैं स्वयं को अपनी चिता से अलग कर सकु। अब मुझसे यह जलने का असहनि पिड़ा दर्द सहा नहीं जा रहा है। फिर भी मै सह रहा हूं मैं लाख चाह कर भी स्वयं को इससे मुक्त नहीं कर पा रहा हूं। मेरी मजबुरियों और कमजोरियों ने मुझको इस कदर जकड़ कर पकड़ लिया है, जैसे सूर्य के प्रकास को बादल रोक लेते है। आकाश में ही, और उस प्रकाश को पृथ्वी पर नहीं आने देते है। उसकी विरोधी शक्तिया जिसे हम बादल कहते है। यहां सम्पूर्ण जीवन आहें भरते हुए रोता है। जिस प्रकार से किसी नदी को बांध बनाकर उसके पानी को रोक लिया जाता है। जिस प्रकार से किसी शेर को पिजड़े बन्द कर लिया जाता है, बिना उसकी इच्छा के विपरीत, वह लाख प्रयास करता है। मगर वह शेर पिजड़े से निकल नहीं पाता है। जीवन में जैसे कोई प्रकाश ही नहीं है। हर तरफ केवल अंधेरी घाटिया ही नजर आ रही है। अपनी इचछा होती है, कि स्वयं को ले कर किसी अंजाने कन्दरें में हमेंशा के लिये खो जाउ, जहां ना जीने कि चाह हो ना मरने का गम हो। वहां यह सब कुछ भी नहीं हो। लेकिन यह भी मेरे लिये संभव नहीं है, क्योकि वह मेरा शत्रु मेर अन्तर जगत में हर समय विद्यमान रहता है। और वह हमारी सभी गुप्त से गुप्त जानकारियों की खबर रखता है। उससे मेरा कोई भी राज छुपा नही है। जो आज हमारे चारों तरफ संसार विद्यमान है। क्योंकि यह संसार मुझे रास नहीं आया। जैसा कि किसी शायर ने कहां है कि यह दुनिया यह महफिल मेरें काम की नहीं। या फिर मैं स्वयं इस दुनिया और महफिल के किसी का काम का नहीं रहा। मैं विल्कुल बेकार हो चुका हूं। मेरा कोई उपयोग नहीं है इस संसार में, ना ही यह संसार ही मेरे किसी कार्य का सिद्ध हो रहा है। इस तरह से हमारा इस संसार से कोई संबधं ही नहीं बन रहा है। मुझे वह गित प्रिय लगता है जिसमें संसार के दर्द कि कराहने की आवाज आती है। जिसमें मुझे आत्मिक ध्वनी सुनाई देती है। बाकि सब गित तो मुझे फिके फिके बिना स्वाद के लगते है। कोई रस ही नहीं आता, ना मुझे किसी कार्य से प्रसन्नता का ही अनुभव हो रहा है, ना ही मैं किसी से अप्रसन्न ही हो रहा हूं। मैं भरी भिड़ में भी स्वयं को अकेला पा रहा हूं। ऐसा मेरे साथ ही क्यों हो रहा है, क्या मैं पागल हो रहा हू? या मेरा दिमाग काम नहीं कर रहा है। मुझे अपना फायद क्यों नहीं दिख रहा है? इस संसार में मुझे ही क्यों रास नहीं आ रहा? यह संसार, जबकि हमारे अतिरिक्त सभी यहां मजा लुट रहे है। मैंने भी मजा लेने का प्रयाश किया। बदलें में मुझे स्वयं को मजा नहीं आया। मैने स्वयं के सर्वनाश की आधार शिला अवश्य रख दी जिसके उपर ही आज मेरे जीवन का महल खड़ा है। जो धिरे धिरे धरा साई हो कर गिर रहा है। जिस प्रकार से किसी रेत का महल जिसको ना बनते देर लगती है ना ही बिगड़ते ही। यहां हमारे साथ भी कुछ ऐसा ही हो रहा है। मेरा दिल डुबता जा रहा है। मेरे हृदय से वेवश आह निकल रहीं है। अपनी नाकामियों और अपनी असमर्थता को देख कर मुझे आश्चर्यय हो रहा है। कि यह सब मैंने क्या कर दिया, क्या यह सब मैने स्वयं किया है। मुझे

स्वयं पर भरोशा नहीं हो रहा है। मुझे स्वयं से बहुत भय और आतंक महशुश हो रहा है। या फिर मेरे अतिरीक्त कोई मेरे अन्दर रहता है। जो मेरी इच्छा के विपरीत मेरे से कार्य कराता है। जिसका फायदा, सुख और आनन्द स्वयं लेता है। उसको मेरे साथ नहीं बाटता है। और दुनिया भर के क्लेश पिड़ा अपमान और सांसारिक मुर्खता पूर्ण कर्मों के परिणाम है। वह हमारे सर पर दे मारता है। इस बात में दम है मैंने यह अनुभव किया है कि कोई एक दूसरा जो मुझसे ताकत वर और बहुत शक्तिशाली है। वह विल्कुल मेरे जैसा ही मेरा ही नकल है। लेकिन उसके पास शरिर नहीं है। वह मेरी शरीर में निवास करता गुप्त रूप से, मुझे खुब याद है। जब वह मेरे अन्दर मेरे हृदय में प्रकट हुआ था। ऐसा केवल एक या दो बार ही हूआ। वह कुछ ऐसी बातें मेरे से कर कर रहा था। जैसे वह मेरे जीवन का स्वामी हो, मैं उसे परमात्मा समझ बैठा, मेरा हृदय इस समय बैठा जा रहा था। एक समय के लिये तो मैं बहुत भयभित हो गया। कि यह मेरे अन्दर से कौन बोल रहा है। क्योंकि उसकी वाणी में शक्ती थी, उसने जो कहा मेरी ही तरह कहा, लेकिन वह मुझसे अलग था। क्योकि मैं अपने आपको जबसे जानता हूं। ऐसा कभी नहीं हुआ कि मेरे अन्दर से मैं ही दो रूपों प्रस्न उत्तर किया हो अपने आप से ही। उसके बाद मैंने कई बार उससे बात चित करने का प्रयास किया, जो मेरे ही अंदर मेरी दूसरी कापी रहती है। लेकिन मैं सफल नहीं हो सका। क्योकि वह अपनी मर्जी से आता है और अपनी मर्जी से जाता है। और वह बहुत संक्षिप्त में बाते करता है। वह शब्द रूप है जो हमारे अंदर अचानक प्रकट हो जाता है। उसने जो कहा वह विल्कुल सत्य हमारे साथ सिद्ध हो रहा है। उसने मेरी असमर्थता को मेरे सामने प्रकट किया। मैंने कहा कि समर्थ हूं, लेकिन मुझे यह बहुत समय के बाद ज्ञात हुआ। कि वह हमारे भविषय कि घटना को देखने वाला है। जबकि मैं अपने अतित को भी अच्छि तरह से देख नहीं पा रहा हूं। तो अपनी भविष्य को कहां से देख पाउंगा। जिससे अपने भविश्य के लिये कुछ अच्छे कदम उठा सकु। वह हम पर बहुत मेहर बान है। उसने हम पर कृपा कर मेरे जीवन की सिमा को कुछ समय के लिये बढ़ा दिया है। जब वह मुझमें प्रकट हुआ तो उसने कहा कि तुम मेरे लिये बेकार हो, मैं तुम्हे मार दुंगा। मैंने कहा कि मैं काम का बनुगां। लेकिन यही तो मेरी कमजोरी है कि मैं उसके काम का नहीं बन पाया। यहा तो मैं स्वयं के भी काम का नही बन पाया। तो उस परमात्मा के काम का कैसे बन पाउंगा? उसने ठिक ही कहा है कि वह मुझे मार देगा। और यह कार्य कर रहा है, रोज मुझे वह मार रहा है। जिसके मार कि चोट का कोई निसान भी नहीं पड़ रहा है। लेकिन मैं उसको और उसके द्वारा दिये जा रहे हर कष्ट को अच्छी तरह से अनुभव कर रहा हूं। वह यह भी कह सकता हे कि यह तुम्हारें कर्मों का फल है जबकि मैं यह मानने को तैयार नहीं हूं। क्योंकि मैं जब से स्वयं को जानता हूं प्रारंभ से ही मैं कर्मों में स्वतन्त्र नहीं हूं। यह कोई वहुत पहुचां हुआ है, जो हमारे जैसा ही आदमी है जिसने किसी सुक्ष्म और गुप्त तकनिकी के द्वारा हमारें अन्तर जगत में प्रवेश कर लिया है। और और वह हमारे जीवन का उपयोग करता है। वह परमात्मा नहीं है। कोई और क्योंकि परमात्मा दयालु और न्याकारी ही है। जबकि जो आदमी मेरे अन्दर मेरे साक्षात्कार के समय में आया वह स्वार्थी है और दया हीन है। जिससे हम किसी दया या न्याय कि कामना नहीं कर सकते है। वह हमारी बाहरी प्रकृति पर भी अधिकार कर लिया है। मुझे यह अनुभव होता है केवल मैं ही भयभित नहीं होता हूं, यद्यपि जो हमारी प्रकृत है जैसे आकाश, पृथ्वि, सुर्य, वायु, जल यह भी भय भित हो जाते है। और यहं हमेशा रात्री के समय भयभित करता है। इसको केवल मैने ही अनुभव नहीं किया मेरे साथ मेरे बहुत बड़ा परिवार जो हजारों कि संख्या वाला है। गांव के और दूसरे लोगों ने भी अनुभव किया है। जैसे यह भयभित और आतंकित करने कि घटना किसी सुक्ष्म मसिन के द्वारा किया जा रहा है। वह हमारे मनो मस्तिस्क पर अधिकार कर लेता है।

एक ऐसी ताकत है जिसका उपयोग केवल अमिर देश या अमिर लोग ही कर रहें है। जिसका उपयोग करके किसी भी क्षेत्र में भुकंप, बाढ़, या ऐसी हवावों के सात तरंगों को फैलाया जा सकता है जिसके प्रभाव में आने के बाद उस क्षेत्र के किसी भी व्यक्ती या बहुत बड़े समुह पर अधिकार किया जा सकता है। इसका भरपुर उपयोग किया गया है, मुझे और मेरे परिवार, मेरे रिस्तेदारों को और मेरे समाज को भयभित करने के लिये। ऐसे अमिर आतंकवादी है, जो यह नहीं चाहते है, कि लोग सत्य और ज्ञान को उपलब्ध करें। जिसने कर लिया हो उसके पुरे समुह को ही पुरी तरह से समाप्त हत्या कर उसकी समपत्तियों को अपने अधिकार में कर लेने कि

योजना बना लिया है। इसमें हमारी सरकार का भी हाथ है यह भी निश्चित है। और इस तकनिकि के साथ आज भि कार्य कर रहे है। हमारे खानदान के, हमारे गांव के लोगों पर, हमारे परिवार के लोगों पर, हमारे सम्प्रदाय के लोगों पर इस तरह कि सुक्ष्म मसिनो का उपयोग करके। उन सब कि हत्या हो रही है और काम इतनी सफाई से करते है। कि इसका कोई प्रमाण प्रशासन को नहीं मिलता है। यह केवल मेरे जीवन या मेरे परिवार या समाज कि बात नहीं यह सभी पर प्रयोग किया जायेगा जो सत्य और इमानदारी के कार्य में लगे हुऐ। उन सब कि किसी ना किसी प्रकार से समाज में हत्या हो रही है। जैसा कि मेरी भी हत्या का प्रयाश कई बार हो चुका है। मैं अपनी दैविय शक्तियों के प्रभाव से कई बार बच चुका हू। लेकिन वह जो हमारे शत्रु है वह हमें किसी भी किमत पर समाप्त करने के लिये उतारु है। इनके जाल बहुत बड़े है। इनके अंडर में दुनिया कि सरकारे चलती है। यह स्वयं को परमात्मा समझते है। भहुत भयानक तरह से यह सब गुप्त रुप से लोगों का शोषड़ और लुट पाट के साथ हत्या भी करते है।

यह उन दिनो कि बात है जब मैं अपने गांव में रहता था। और मैंने एक क्रान्तिकारी कदम उठा लिया था। और अपना व्यक्तिगत ज्ञान विज्ञान ब्रह्मज्ञान वैदिक विश्वविद्यालय बनाने के लिये कार्य कर रहा था। जिसके आधार शिला को रखने के लिये। मिर्जापुर छानबे क्षेत्र में स्वामी रामदेव जि को हरिद्वार वाले को आमन्त्रित किया था। और स्वामी जी अपने नियमित समय पर आयें और उस स्थान का मुआयना भी किया, उसको बनाने के लिये। उन्होंने एक बड़ी रकम को देने का वायदा भी किया जनता के समाने। जिससे जनता में एक प्रकार कि लहर व्याप्त हो गई कि मेरे पास बहुत बड़ा धन आ चुका है। सुनने वालों में ज्यादातर लोगों को यह अच्छा नहीं लगा, जिसमें हमारें जो सबसे करिबी थे। उन्हें बहुत गहरा दुःख हुआ। वह सब हमारे विपरित खड़े हो गये। क्योंकि वह सब नहीं चाहते थे कि मैं वहां पर किसी प्रकार निर्माण का कार्य कराउ। मेरे पक्ष में कोई नहीं था अक्सर लोग हमारे खिलाफ ही थे। मैं जि जान से लगा हुआ था कि मुझे विश्वविद्यालय बनाना है। मुझसे जो भी संभव था वह कार्य कर रहा था। लेकिन मेरे द्वारा कार्य जा रहा था, वह कार्य किसी मायने से बहुत तुक्ष्य था। क्योकि आज के समय में किसी प्रकार का कार्य करने के लिये सबसे पहले धन चाहिये। धन का वादा तो सब के सामने रामदेव ने कर दिया। लेकिन समय आने पर वह मुकर गये। अर्थात धन नहीं दिया, जिसको बनाने के लिये मैंने सबसे शत्रुता कर ली थी। मैं यह समझता था कि राम देव का पैसा मिल जायेगा इस तरह से मेरा कार्य संभव हो जायेगा। मेरे साथ कोई देने के लिये तैयार नहीं हुआ। उस समय मेरे पास धन कि बहुत कमी थी। यहां तक मेरा खाना पिना भी बड़ी मुस्किल से चल रहा था। मेरे खिलाफ सुरु से मेरे पिता ही रहे क्योंकि वह किसी भी सर्त पर नहीं चाहते थे। कि मैं उनकी इच्छा के विपरीत कोई कार्य करु। जबकि मैं सारे कार्य उनके विपरीत ही करता था। वह हमें देखना नहीं चाहते थे। जबकि मैं वही पर रह कर बहुत बड़े कार्य को सिद्ध करने का प्रयाश कर रहा था। इस तरह से सबसे बड़ा शत्रु मेरा पिता ही मेरे खिलाफ खड़ा हो चुका था। वह एक भी रुपया देने के पक्ष में नहीं था। उसने सारी पुस्तैनि सम्पत्ती पर एक तरफा अधिकार कर लिया है। यहां तक मुझे घर में भी रहने नहीं दिया। गांव वाले कुछ पड़ोसियों के साथ मिल कर मुझ पर जान लेवा हमला भी कर चुका है। उसने मुझे समाज मे पागल सिद्ध कर दिया और सब उसकी बाते मानने लगे। मेरे हाथ और पैर में बेड़िया डालने कि तैयारी चलने लगी। इस बात से सारा समाज परिचित है कोई भी मेरा एक रुपये से भी सहायता नहीं करना चाहता है। मेरे पास खाने पिने रहने कि बहुत भयानक दिक्कत आ चुकी थी। किसी प्रकार से मेरी मां मेरे पिता के चोरी से मुझे खाने पिने के कुछ दे देती थी। जिसके लिये उसे अक्सर प्रताड़ित होना पड़ता था। हर तरफ से केवल मेरे शत्रु ही निकल रहे थे। उसी बिच मुझे एक खतरनाक विमारी ने पकड़ लिया जिसने मुझे अघमरा बनाकर रख दिया।

थोड़ा इससे पहले जैसा कि मैंने अनुभव किया है। कि मेरा पिता बचपन से ही मुझसे शत्रुता करता था। उसकी ऐसी समझ है, कि मैं उसका पुत्र नहीं किसी और का पुत्र हूं जिसके मेरी मां अपने साथ ले कर आई थी। जिस कारण से वह मुझे और मेरी मां को जान से मारने चाहता था। जब से मैं जानने लायक हुआ मैं अपनी जान उससे बड़ी मुस्किल से बचा पाया हूं। मैं हमेशा से बहुत अधिक परेसान रहा, सबसे अधिक अपने पिता से ही। यहां तक मैं अपने स्वप्नों में भी अपने पिता कि यातना का बहुत अधिक शिकार रहा। जिससे बचने

के लिये मैं घर को छोड़ कर भागने लगा था। जब भी वह हमारे साथ मार पिट करता मैं घर छोड़ कर भाग जाता था। कुछ समय बाहर में दुःखों और कष्टों को सहता बड़े छोटे महानगरों में रहा। और हजारों प्रकार कि छोटी छोटी नौकरियां भी कि इस तरह से मैं लगभग सम्पूर्ण भारत का बहुत दर्दनाक भ्रमण किया। जिसमें मेरे जीवन का बहुत बड़ा हिस्सा युं ही दुनिया के अनछुये सत्य का साक्षात्कार करने में भी व्यतित हो गया। जिसका आभाष शायद ही कभी किसी को हुआ। इसी बिच हमारा निर्वाण भि हुआ। इस तरह से मैं केवल ना एक परिवार एक समाज का ना एक सहर का ना ही एक राज्य का यद्यपी मैं सम्पूर्ण रूप से भारतिय बन गया। जिसमें बहुत ही असहनिय और दुखान्त अनुभव भी जुणें है। क्योंकि मेरी यह भारत भ्रमण कि यात्रा सुख सुविधाओं के बिच में नहीं कि गयी यद्यपि बहुत भयानक तंगी और असुविधा में कि गई अक्सर मेरे लिये खाने पिने के लिये बोजन भी उपलब्द होता था। जिससे मैं लम्बे समय तक भुखा ही रहता था। शिवाय पानी पि कर कभी कभी तो मुझे पानी भी नही मिलता था। यूं ही कहीं किसी कोने में मुर्क्षा अवस्था में कई दिनों तक इस हालत में कहीं भी पड़ा रहता था।, और अंत में मजबुर हो कर घर को वापस आ जाता था। क्योंकि बिना धन के कही पर रहना बहुत कठीन कार्य है। यहां तक बहुत मुस्किल या असंभव कार्य है। इसी तरह से चलता रहा बहुत समय के बाद मेरी शादी भी हो गई पत्नी आगई, और उसको एक पुत्र भी हो गया। लेकिन यह सब मेरे रास नहीं आया। मेरी पत्नी मेरे पुत्र कि मृत्यु के बाद मुझे छोड़ कर चली गई। इसके पिछे सबसे बड़ा कारण मेरा पिता ही था। वह मुझे हर तरह से मिटाना चाहता था। और उसके लिए उसने भरपुर प्रयास किया और काफी हद तक सफल भी हुआ।

एक दिन रात्री के करीब नौ बज रहे थे सर्दि का समय था और मुझे मारने के लिये मेरे पिताने बाहरी हत्यारों को बुला लिया था। जैसे ही मैं बाहर खाने के लिये बैठा हुआ था। अचानक मेरे अंदर से बहुत भयानक भय कि लहर उठने लगी। जैसा कि पहले एक बार मेरे साथ पहले भी हो चुका था। जब मैं दिल्ली मैं रहता था। उस समय दिल्ली में मैं एक बहुत बड़े व्यापारी परिवार से मेरी कुछ समय के लिये मित्रता थी। बाद में वह हमारे विचार क्रान्तिकारी होने के कारण वह सब मेरे साथ शत्रुता का व्यवहार करने लगे। यहां तक बात पहुच गई कि उन्होने मुझे जान से मारने का भी योजना बना लिया। मेरा जिना मुस्किल कर दिया दिल्ली में, उनकी पहुंच काफी उपर तक थी। एक बार धोखे से बुला कर मुझे वह लोग अपने घर में मुझे पुलिस के हवाले मरा पिट कर कर दिया। और यह इल्जाम लगाया कि मैं उनके घर में चोरी के लिये आया था। मेरे साथ बहुत बड़ा अन्याय हो रहा था। उस समय जेल से छुड़ाने में मेरे वह मालिक काम आये जिनके यहां पर मै कार्य करता था।

इसके बाद मेरा रहना दिल्ली में बहुत मुस्किल होगया और मैं बहुत परेशान रहने लगा था। मैं भी बदला लेना चाहता था। एक बार फिर उनके यहा पर मैं चला गया पिछला सब कुछ भुल कर कि सायद यह हमारी मददत करना चाहते है। लेकिन मैं गलत था। वह सब हमारी हत्या कि योजना पुरी तरह से बना चचुके थे। मेरे पहुंचते ही वहां पर मेरे उपर चार पांच आदमियों ने जानलेवा हमला कर दिया। और मुझे तब तक मारते रहे जब तक मैं पुरी तरह से मरातुल्य नहीं हो गया। जब उनको विश्वास होगया कि मैं अब मर जाउंगा तो मुझे उन्होंने मेरे बहुत याचना करने पर छोड़ दिया। इस सर्त पर कि मैं पुलिस से संम्पर्क नहीं करुगां। वह 25 नवमंबर 2002 की बहुत भयानक रात थी। जब मैं जीवन और मृत्य से लड़ रहा था। उस समय मुझसे एक कदम भि नहीं चला जा रहा था। बड़ी मुस्किल से मैं कनाट प्लेस के भिड़ भाड़ वाले सर्कल से गाड़ियों कि रौसनी के बिच में गिरते लड़खाते बाहर निकल पाया नई दिल्ली रेल्वे स्टेशन के लिये। मैं रेल्वे स्टेशन के अन्दर ना जा कर सिधा पहाड़ गंज कि तरफ से उस पुल पर चढ़ गया जो रेल्वेलाईनो को पार कर के अजमेरी गेट और पहाड़ गंज को जोड़ने वाले उस पुल पर पहुंच गया। उपर पुल पर पहुचंने पर मैं भयंकर दर्द से कराह रहा था। मेरे हाथ पैर के जोड़ खुल गये ते। दायां पैर और बायां हाथ बिल्कुल ढिला पड़ चुके थे। मैंने वहां पुल के उपर साईडर पर कुछ समय रुक कर आराम करना चाहा। जिस कारण से मैं वहीं पर निचे ही लेट गया। कुछ ही पल वहां लेटा हुआ था। कि मुझको बहुत अधिक ठंडी लगने लगी, जिसके कारण मैं वहां से एक बार फिर खड़ा हुआ। और पैदल चलते हुए किसी तरह से बड़ी मुस्किल से चलते हुए। अजमेरी गेट कि तरफ नई दिल्ली रेल्वे स्टेसन के सामने, जहां पर एक साधु अखाड़ा है। उसके पास से होते हुए, आगे एक मोड़ था वहां

पहुंचा, जहां एक रिक्से वाला एक कागज जला कर आग ताप रहा था। जहां पर जा कर आग के पास अपनी सर्दी को दूर करने के लिये मैं बैठ गया। रिक्से वाला जो आग जला रहा था उसके पास लकड़ी भी नहीं थी कुछ कागज था। जो थोड़ी समय में जल कर राख हो गयी। वह रिक्सा वाला मेरी शक्ल देखर बुरी तरह से भयभित हो गया। और बोला यहां से चले जाओं नहीं तो पुलिस आ जायेगी और मुझे परेशान करेगी। मैंने कहा डरो मत मेरे पास बैग में कपड़े भरे है। मेरे है इसमें से एकाक ले लो और मुझे थोड़ी देर आग के बैठ कर आराम करने दो। और मैंने अपना एक जिन्स का पैन्ट वैग से निकाल कर उस रीक्सेवाले को दे दिया। और कुछ कापी किताब जो मेंरे बैग में थे। उनको निकाला और आग में जलाने के लिये डाल दिया। जिससे आग फिर से धधकने लगी जिससे मुझे थोड़ा सकुन मिला, लेकिन उस समय मुझे भयानक दर्द और मुर्छा आ रही थी। क्योंकि मैने कई दिन से खाना भी नहीं खाया था। और मुझे भी अन्दर से भय लग रहा था कि कहीं पुलिस ना आ जायें। और वह भी मुझे मारने पिटने लगे। उस रिक्से वाले ने कहा कि थोड़ा पिछे साधु आश्रम के बगल में मड़ी और ट्रान्सपोर्ट है। वहां जा कर बैठ जा, वहां रात भर काम चलता है। कोई पुलिस वाला परेशान भी नहीं करेगा। मैंने वैसा ही किया और वहां से अर्धमुर्छा अवस्था में उस ट्रान्सपोर्ट नगर में पहुंच गया। जहां पर एक किनारा देख कर बैठ गया। और लग भग मै मुर्छित हो चुका था। मुझे कुछ भि ज्ञान नहीं था कि मैं कहां हु, और कैसी हालत में हू? लेकिन वह रिक्सा वाला बरा-बर मुझ पर नजर रख रहा था। जिसने मुझे मेरी अर्ध मुर्छा कि हालत में ही उठाया और एक दो बार चाय भी पिलाया। उसके बाद रात्री के समय वहां के दुकान मालिको से मेरे बारे में कह कर, मुझ पर तरस खा मुझे खाना भी खिलाया। खाने के बाद मेरे शरीर में कुछ जान आई। और तब उन लोगों ने मुझसे कहा अब तुम यहां से जाओ इस समय रात्री के एक बज रहे है। अभी यहां पुलिस आ सकती है। जो तुम्हे परेशान कर सकती है। फिर मैं वहां से धिरे - धिरे खड़ा हुआ, और नई दिल्ली रेल्वे स्टेसन के अन्दर पहुंच गया। जहां एक तरफ किनारे में दाहिने हाथ पुल के निचे कुछ हाथ ठेला पड़े थे। जिन पर मैं पहुंच कर सोने का प्रयास करने लगा। लेकिन मुझे नीद नहीं आ रही थी । क्योंकि उस समय मुझे सर्दि बहुत अधिक लग रही थी। फिर मैंने अपने बैग को एक बैग खोला और उसमें से कई सारे सर्ट और पैंट निकाल कर, कठिनाई से किसी तरह सबके एक उपर एक पहन लिया। जिससे मेरे उपर सर्दि का प्रभाव काफि कम हो गया। और मैं वहां पर कुछ समय के लिये सो गया। रात के चार बजे ही मेरी निद खुल गई मुझे यहा भी पुलिस का डर सता रहा था कि कभी भी पुलिस यहां आ सकती है। जो मेरे लिये समस्या खड़ी कर सकती है। क्योकि इसके पहले मैं एक बार बहुत पहले इसी रेल्वे स्टेसन के प्लेटफार्म पर बिना टिकट का पकड़ा गया था। कई एक साल पहले जब मुझको पुलिस ने पकड़ लिया था। और मुझे और सैकड़ों कैदियों के साथ लाकप में बन्द कर दिया था। जहां पेसाब करने और निपटने का स्थान भी नहीं था। और बहुत मारा था उस समय मेरी उम्र कम थी इस लिये स्टेशन से चलान नहीं किया था। मार पिट कर ही छोड़ दिया था। लेकिन अब समय काफि बदल चुका था।

रात के करिब चार बजे मै निकला नई दिल्ली रेल्वे स्टेसन से और आगे दिल्ली गेट की तरफ चले लगा कुछ दूर जाने के बाद जहां पर दिल्ली स्टाक एक्सचेन्ज है। उस के सामन पहुच ही मै थक गया। क्योंकि शरीर में भयानक दर्द और पिड़ा हो रही थी। इसलिये ठंड में वही पर बैठ गया और एकाक घंटे तक आराम किया। उसके बाद वहां से निकला और दिल्ली गेट को पार कर के सड़क के दूसरे तरफ सिधा बाहरी रिंग रोड के लिये आगे चल पड़ा तभी मेरी निगाप बाई तरफ पार्क के खुले दरवाजे पर पड़ी जो उस समय खाली था चारों तरफ बड़ी बड़ू घास थी। मैं उस पार्क में घुस गया और वहीं गिर पड़ा और मुझे निद आगई। मेरी निद से शाम को करिब 5 बज कर 30 पर उठा और सिधा रिंग रोड को पकड़ कर पैदल ही चल पड़ा। क्योकि मेरे पास जो पैसे वगैरह थे। सब निकाल लिया था हमारे शत्रुओं ने, मैं आगें बढ़ता रहा मुझे रात विताने के लिये एक ऐसी जगह की तलाश थी जहां पर मैं अपनी रात्री को बिना किसी विघ्न के बिता सकु। मैं रास्ते मे कई जगह प्रयास किया लेकिन सफलता नहीं हर जगह से मुझे आगे बढ़ जाने का ही संक्त मिला। मैं निरंतर आगें ही बढ़ता रहा पुरी तरह से मैं थक के चुर हो रहा था। मेरे कदम जबाब दे रहे थे। फिर भी मैं जबरजस्ती आगे ही आगे बढ़ रहा था। इस तरह से मै वजिरा बाद पुल के पास पहुंच गया रात के उस करिब बारह बज चुके

थे। वजिरा बाद पुल को रात में ना जा कर मैं उससे थोड़ा पहले ही एक रास्ता जो दिल्ली शहर में जाता था मोती बाग का उस रास्ते से आगें निकल पड़ा। कुछ दूर मेरे चलने पर मुझे एक कुत्तों को रहने का एक झोपड़ा पार्क में बना दिखाई दिया। जिसमें मैं चुपके से धुस गया। जिसमें बहुत गंदगी थी। और मुझे बहुत भय भी लग रहा था कहीं किसी की निगाह मुझ पर ना पड़ जाये। जिससे लोग मुझको चोर समझ कर मेरी पिटाई ना करने लगे। क्योंकि लोग उस पार्क रास्ते से उस समय गुजर रहें थे। कभी किसी के बोलने कि आवाज आति तो कभी गाड़यों और मोटर सायकिल कि आवाज भी आती थी रुक रुक कर, जिससे मैं अन्दर से पुरी तरह से टुट चुका था मेरी बहुत मजबुरी थी। वहां रात्री बिताना बहुत कठिन था, किसी तरह से मैंने वहा पर एक या दो घंटे बिताया। फिर वहां से भी रात्री के करिब दो तीन बजे निकल पड़ा, और वजिरा बाद पुल पर चल पड़ा चलते चलते थक चुका था। फिर वही एक बस स्टाप पर बैठ गया। और सुबह होने का इन्तजार करने लगा। रात जो बितने का नाम नहीं ले रही थी। फिर मुझे रात्री की अजान सुनाई दि जो सुबह भोर में बोलते है। जिससे मैं समझ गया कि सुबह होने वाली है। और फिर मैं वहां बस स्टाप से आगे कि तरफ चल पड़ा रास्ते में मैंने एक दो जगह आराम किया। सूर्य का प्रकाश हुआ तब तक मैं लोनी बार्डर पर पहुंच गया था। जहां पर मुझे बहुत थकान और दर्द के साथ भुख भी लग रही थी। जिसके लियें मैने एक सड़क किनारे होटल में गया और अपनी मजबुरी को बताया और कहा कि मैं कई दिन से भुखा हूं। मुझे खाना दे दो मैं आप के यहां काम कर लुगा। इस तरह से उस होटल के मालिक ने मुझे अपने होटल में बर्तन धोने के लिये रख लिया और बदले में भोजन देने लगा। जहां पर केवल सराब पिने के लिये ही अधिक लोग आते थे। इस तरह से मैं वहां पर करिब चालिस दिन रहा। और एक दिन वहां से मैं फिर पैदल ही पुरानी दिल्ली रेल्वे स्टेशन आया और विना टिकट के ही ट्रेन में सवार हो कर मिर्जापुर के लिये चल पड़ा।

ठीक इसी प्रकार कि घटना दूबारा मेरे साथ मेरे पिता के द्वारा घटनें वाली थी। इन दिल्ली वाले लोगों के साथ मिल कर दोहाराने का प्रयाश किया गया। जिसका आभास मुझे पहले ही होगया जैसै हवां में वह दूबारा दर्द मेरी मेरे मरने का मातम भर गया है। चारों तरफ बहुत बुरी तरह से कुत्ते रोने लगे, जैसे पुरी की प्रकृती ही मुझे मारने के लिये उवली हो गयी हो। मेरे हाथ पैर काम करना बंद करने लगे। जब अपने गांव के घर के बाहर बैठ कर खाना खा रहा था। क्योंकि यह दिल्लि वाले मेरे घर पर पहुंच कर मेरे पिता को अपने साथ मिला लिया था। और आपस में सौदा किया मेरी हत्या करने का, जिसके साथ रामदेव का भी साथ था। जिसने हमें पुरी तरह से पागल सिद्ध करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। लेकिन मुझ पर आने वाले भयंकर संकट का आभाष मुझे पहले ही हो गया। जिसके कारण मैं वहां से सिधा नदी किनारे भागा अपनी जान बचाने के लिये यह सब लोगो मेरा पिछा किया। जब मुझे लगा कि यह लोग मुझे मार ही देगे। और समय रात्री के समय ही सर्दी में मैं गंगा नदी में कुद पड़ा और अंधेरे में खो गया। जिससे सारे मेरे हत्यारे पिछे लौट गये।

यह तो मेरे बारे में कुछ संक्षिप्त जानकारी हुई मैं चाहता हूं कि आप सब यह जाने कि मैं दिल्ली कैसे पहूंचा? जहां पर मुझे मारने का प्रयाश किया गया। यह तो एक प्रस्न हुआ दूसार प्रस्न कि मै स्वामी राम देव से कैसे मिला। इन दोनो प्रस्नो का उत्तर देने के बाद हम अपनी कहाना को और आगे बढ़ायेगे। जिससे आप सब को और कुछ विस्तृत तरह से समझ पायेंगे। जैसा कि मैने आप सब को बताया कि मै युं ही घर से बाहर निकल जाता था। ऐसे हा एक बार मै अपने घर से बाहर मुम्बई जो कभी बाम्बे के नाम से जानी जाती थी। वहां पर रहता था। जहां पर मेरी मुलाकात एक ऐसे लड़के से हुई जो दिल्ली अपने घर से भाग कर गया मुम्बई गया था। जैसा कि अक्सर लड़के अपने परिवार वालों से परेसान हो कर घर छोड़ कर भाग जाते और उसके बाद उनके साथ क्या होता है। उसका मुजे बहुत अच्छी तरह से अनुभव कर चुका हूं इस क्षेत्र का मै स्वयं को विशेषज्ञ कहु तो भी गलत नहीं होगा। जिस लिये मै नहीं चाहता था। यह लड़का भी यहां मुम्बई में मेरी तरह से भयंकर परेशान हो और इसके जान के लाले पड़ जाये। मैं उसे बचाना चाहता था। व्यर्थ कि उलझनो से क्योंकि यह सब मेरे लिये कोई नया कार्य नहीं था। यह मेरे जीवन कि हिस्सा बन चुका था और मैंने इसको स्विकार भी लिया था। कि मैं यहीं हूं, यद्यपि मैं किसी दूसररे को नहीं चाहता था कि कोई दूसरा भी इस खतरनाक रास्ते पर निकले जिसकी कोई मंजील नहीं है शिवाय खतरें ही खतरें जीसमें किस पल जीवन में

कौन सि चुनौति खड़ी हो जाये इसका कोई हमें पहलें से जानकारी नहीं होती है। यह सब अनजाना और दुःख पूर्ण अव्यवस्थित मार्ग है। जैसा कि आज भी मैं व्यवस्थित नहीं हो पाया हू आज भी मै स्वयं को व्यवस्थित इस संसार में करना चाहता हू, क्योकि मैने जान लिया है कि इस संसार में जो व्यवस्थित है वहीं सुन्दर है और वहीं सुखी है। अन्यथा अव्यवस्था ही दुःख का मुख्य कारण है। कभी कभि हमारा ज्ञान भी हमारे लिये दुःख का कारण बन जाता है क्योंकि वह नया और क्रान्तिकरी मार्ग होता है जिस प्रकार से किसी एक व्यक्ती को नये मार्ग जंगल से बनाने में बहुत कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है जिसने भी नया मार्ग बनाने का प्रयास किया है और लिक से हट कर चलने का प्रयाश किया है उसका जीवन प्रायः नई नई चुनौतियों से हमेशा भरा होता है। और जहां तक मै समझा हूं कि यह सभी के लिये संभव नहीं है, हर आदमी अपने लिये एक नया मार्ग बनाना चाहता है और नये कार्य को करना शुरु कर देता है लेकिन जब रास्ते में विध्न आते है तो वह उनको देख कर घबड़ा जाता है उसकी वुद्धि और दिल दिमाग कार्य करना बन्द कर देता है वह समझ नहीं पाता है कि उसे क्या कार्य करना चाहिये। अक्सर तो ऐसा देखने में आया है कि ज्यादातर लोग कठिनाईयों के भय से किसी नये कार्य को शुरु हीम नहीं करते है, दूसरे शुरु तो कर देते है लेकिन उस कार्य को पुरा नहीं कर पाते है बिच में ही छोड़ कर भाग जाते है विध्नो के आगे अपने घुटने टेक देते है। बहुत दुर्लभ लोग ऐसे होते है जो सभी विध्नो को सहते हुए अपने लिये एक एक कदम दुर्गम और दुसाध्य कठिन से कठिन कार्य को जब तक पूर्ण नहीं कर लेते है तब तक चैन से नही बैठते है। ऐसे बहुत से लोग हमें इस दुनिया में हमको मिल जायेगे जिन्होने अपने हौशले और साहस के पराक्रम के दम पर बड़े से बड़े लक्ष्य को उपलब्ध कर लिया है। जैसे राजा हरिश्चन्द्र जिन्हेने क्या क्या दुःख और कष्ट को नहीं सहा अपने सत्य कि रक्षा के लिये। राजा नल और दमयंती जिन्होंने भयंकरतम कठिनाईयों को सह कर भी अपने सत्य के मार्ग से विचलित नहीं हुए।

5- वैदिक महापुरुष सत्यवादि राजा हरिश्चन्द

राजा हरिश्चंद्र धार्मिक, सत्यप्रिय तथा न्यायी थे। एक बार उन्होंने स्त्रियों का आर्त्तनाद सुना। वे रक्षा के लिए पुकार रही थीं। हरिश्चंद्र ने उनकी रक्षा के निमित्त पग पढ़ाया तो उसके हृदय में विघ्नराज (संपूर्ण कार्यों में बाधा स्वरूप) ने प्रवेश किया, क्योंकि वह आर्त्तनाद उन विधाओं का ही था, जिनका विश्वामित्र अध्ययन करते थे। मौन और आत्मसंयम से जिन विधाओं को वे पहले सिद्ध नहीं कर पाये थे, वह नारी-रूप में उनके भय से पीड़ित होकर रो रही थीं। रुद्रकुमार विघ्नराज ने उनकी सहायता के निमित्त ही राजा के हृदय में प्रवेश किया था। हरिश्चंद्र ने अभिमान पूर्वक कहा—'वह कौन पापात्मा है जो हमारे राज्य में किसी को सता रहा है?' विश्वामित्र ने उसके अभिमान से रुष्ट होकर उससे पूछा—'दान किसे देना चाहिए? किसकी रक्षा करनी चाहिए और किससे युद्ध करना चाहिए?' राजा ने तीनों प्रश्नों के उत्तर इस प्रकार दिया।

विश्वामित्र ने ब्राह्मण होने के नाते राजा से उसका समस्त दानस्वरूप ले लिया। तदनंतर उसे उस राज्य की सीमाएं छोड़कर चले जाने को कहा और यह भी कहा कि एक माह के उपरांत हरिश्चंद्र उनके राजसूय यज्ञ के लिए दीक्षास्वरूप धन (दक्षिणा) भी प्रदान करे। राजा अपनी पत्नी तारामती (शैव्या) तथा पुत्र रोहिताश्व को साथ ले पैदल ही काशी की ओर चल दिया। तारामती धीरे-धीरे चल रही थी, अतः क्रुद्ध मुनि ने उस पर डंडे से प्रहार किया। कालांतर में वे लोग काशी पहुंचे। वहां विश्वामित्र दक्षिणा लेने के निमित्त पहले से ही विद्यमान थे। कोई और मार्ग न देख राजा ने शैव्या और रोहिताश्व को एक ब्राह्मण के हाथों बेच दिया। दक्षिणा के लिए धन पर्याप्त न होने के कारण स्वयं चांडाल के हाथों बिक गया। वास्तव में धर्म ने ही चांडाल का रूप धारण कर रखा था। हरिश्चंद्र का कार्य शवों के वस्त्र आदि एकत्र करना था। उसे श्मशान भूमि में ही रहना भी पड़ता था। कुछ समय उपरांत किसी सर्प ने रोहिताश्व का दंशन कर लिया। उसका शव लेकर शैव्या श्मशान पहुँची। हरिश्चंद्र और शैव्या ने परस्पर पहचाना तो अपने-अपने कष्ट की गाथा कह सुनायी। तदनंतर चिता तैयार करके बालक

रोहिताश्व के साथ ही हरिश्चंद्र और शैव्या ने आत्मदाह का निश्चय कर किया। धर्म ने प्रकट होकर उन्हें प्राण त्यागने से रोका।

इन्द्र ने प्रकट होकर प्रसन्नतापूर्वक उन्हें स्वर्ग-लोक चलने के लिए कहा किंतु चांडाल की आज्ञा के बिना हरिश्चंद्र कहीं भी जाने के लिए तैयार नहीं था। रोहिताश्व चिता से जीता-जागता उठ खड़ा हुआ। धर्म ने बताया कि उसी ने चांडाल का रूप धारण किया था। तदुपरांत विश्वामित्र ने प्रसन्न होकर रोहिताश्व को अयोध्या का राजा घोषित कर उसका राज्य-तिलक किया। राजा हरिश्चंद्र ने शैव्या तथा अपने राज्य के अन्य अनेक व्यक्तियों सहित स्वर्ग के लिए प्रस्थान किया।

हरिश्चंद्र के पुरोहित वसिष्ठ थे। वे बारह वर्ष तक जल में रहने के बाद बाहर निकले तो हरिश्चंद्र के ऐहिक कष्ट तथा स्वर्ग गमन के विषय में सुनकर बहुत क्रुद्ध हुए। उन्होंने विश्वामित्र को तिर्यक-योनि प्राप्त करने का शाप दिया। विश्वामित्र ने भी वसिष्ठ को वही शाप दिया, दोनो ने क्रमशः चील और बगुले का रूप प्राप्त किया। वे दोनों परस्पर लड़ने लगे, जिससे समस्त पृथ्वी तहस-नहस होने लगी। ब्रह्मा ने दोनों का पक्षी-रूप वापस ले लिया और उन्हें शांत कर फिर से मित्रता के सूत्र से आबद्ध किया।

एक बार इन्द्रलोक में विश्वामित्र वसिष्ठ से मिले। विश्वामित्र ने उनसे पूछा कि उन्हें इन्द्रलोक पहुंचने का पुण्य कैसे प्राप्त हुआ। वसिष्ठ ने कहा—'हरिश्चंद्र अत्यंत सत्यवादी हैं—उन्हीं के पुण्यों से इन्द्रलोक की प्राप्ति हुई है।' विश्वामित्र ने शेष घटना को स्मरण करके हरिश्चंद्र को मिथ्यावादी कहा। घर लौटकर उन्होंने अपना कथन सिद्ध करने का निश्चय किया। एक दिन राजा मृगया के लिए वन गये, वहां एक सुंदरी रो रही थी। उससे ज्ञात हुआ कि वह सिद्धिरुपिणी थी। उसे प्राप्त करने के लिए विश्वामित्र घोर तप कर रहे थे, अतः वह क्लेश पा रही थी। राजा ने उसका दुःख हरने के लिए विश्वामित्र को तपस्या छोड़ने के लिए कहा।

विश्वामित्र तपस्या भंग होने से बहुत क्रुद्ध हो उठे। उन्होंने एक भंयकर दानव को शूकर का रूप देकर राजा के राज्य में भेजा। प्रजा के त्रास की निवृति के लिए राजा धनुष-वाण लेकर उसका पीछा करते हुए जंगल में गंगा तटीय एक तीर्थ स्थान पर पहुंच गये। नगर का मार्ग पूछते हुए राजा को विश्वामित्र ने तीर्थस्थान करने के लिए प्रेरित किया। तदनंतर दक्षिणा स्वरूप अपने मायावी पुत्र के विवाह में राजा ने समस्त राज्य देने को कहा। राजा दान देने के लिए प्रतिज्ञाबद्ध थे। अतः उन्होंने राज्य प्रदान किया। विश्वामित्र ने ब्राह्मण के रूप ही फिर ढाई भार स्वर्ण की दक्षिणा मांगी। राजा ने दक्षिणा देना का वायदा तो कर लिया किंतु अब उसके पास स्वर्ण अथवा मुद्रा नहीं थी। अतः उसने पत्नी के कहने पर उसे बेचने का निश्चय किया।

विश्वामित्र ने एक बूढ़े ब्राह्मण का रूप धरकर उसकी पत्नी तथा बालक रोहिताश्व को ख़रीद लिया तथा एक चांडाल के हाथों राजा को बेचकर पर्याप्त मुद्रा प्राप्त कर ली। चांडाल का नाम वीरबाहु था। उसने राजा को श्मशान में मृत व्यक्तियों के वस्त्र लेने के लिए नियुक्त कर दिया। एक दिन रोहिताश्व बच्चों के साथ खेल रहा था। सांप के डंस लेने से उसका निधन हो गया। माँ अत्यंत दीनहीन स्थिति में विलाप करने लगी। नगर के लोग एकत्र हो गये। उनके परिचय पूछने पर उसने कोई उत्तर नहीं दिया, अतः सबने उसे मायावी राक्षसी जानकर चांडाल से कहा कि उसका वध कर दे। चांडाल ने पाशबद्ध करके हरिश्चंद्र को वध करने के निमित्त बुलाया।

शैव्या ने अपने पुत्र का दाह-संस्कार करने तक उसे रुकने के लिए कहा। रोहिताश्व को देखने किए उपरांत राजा ने रानी को तथा शैव्या ने चांड़ाल वेशी राजा को पहचाना। दोनों ने विलाप करते हुए बालक का शव चिता पर रखा। तभी इन्द्र, विष्णु तथा विश्वामित्र सहित समस्त देवताओं ने वहां प्रकट होकर उन दोनों को सहनशीलता की सराहना की। धर्म ने हरिश्चंद्र को स्वर्ग प्रदान किया। राजा चांडाल से आज्ञा लेना नहीं भूले। धर्म ने कहा—'वास्तव में तुम्हारी परीक्षा लेने के लिए मैंने ही ब्राह्माण, चांडाल तथा सर्प का रूप धारण किया था।' उनके आशीर्वाद से रोहिताश्व भी पुनर्जीवित हो उठा। राजा के कहने से उसकी समस्त प्रजा को भी स्वर्ग की प्राप्ति हुई।

इक्ष्वाकु वंश में त्रिशंकु नामक राजा तथा उनकी पत्नी सत्यवती के पुत्र का नाम हरिश्चंद्र था। हरिश्चंद्र ने समस्त पृथ्वी को जीतकर राजसूय यज्ञ किया।

6 - वैदिक महापुरुष मर्यदा पुरुषत्तम श्री राम

मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्रीराम हिन्दू धर्म में विष्णु के 10 अवतारों में से एक हैं। राम का जीवनकाल एवं पराक्रम, महर्षि वाल्मीकि द्वारा रचित, संस्कृत महाकाव्य रामायण के रूप में लिखा गया है। उनके उपर तुलसीदास ने भक्ति काव्य श्री रामचरितमानस रचा था। ख़ास तौर पर उत्तर भारत में राम बहुत अधिक पूज्यनीय माने जाते हैं। रामचन्द्र हिन्दुत्ववादियों के भी आदर्श पुरुष हैं। राम, अयोध्या के राजा दशरथ और रानी कौशल्या के सबसे बड़े पुत्र थे। राम की पत्नी का नाम सीता था (जो लक्ष्मी का अवतार मानी जाती है) और इनके तीन भाई थे, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न। हनुमान, भगवान राम के, सबसे बड़े भक्त माने जाते हैं। राम ने राक्षस जाति के राजा रावण का वध किया।

अनेक विद्वानों ने उन्हें 'मर्यादापुरुषोत्तम' की संज्ञा दी है। वाल्मीकि रामायण तथा पुराणादि ग्रंथों के अनुसार वे आज से कई लाख वर्ष पहले त्रेता युग में हुए थे। पाश्चात्य विद्वान् उनका समय ईसा से कुछ ही हज़ार वर्ष पूर्व मानते हैं। अपने शील और पराक्रम के कारण भारतीय समाज में उन्हें जैसी लोकपूजा मिली वैसी संसार के अन्य किसी धार्मिक या सामाजिक जननेता को शायद ही मिली हो। भारतीय समाज में उन्होंने जीवन का जो आदर्श रखा, स्नेह और सेवा के जिस पथ का अनुगमन किया, उसका महत्व आज भी समूचे भारत में अक्षुण्ण बना हुआ है। वे भारतीय जीवन दर्शन और भारतीय संस्कृति के सच्चे प्रतीक थे। भारत के कोटि कोटि नर नारी आज भी उनके उच्चादर्शों से अनुप्राणित होकर संकट और असमंजस की स्थितियों में धैर्य एवं विश्वास के साथ आगे बढ़ते हुए कर्त्तव्यपालन का प्रयत्न करते हैं। उनके त्यागमय, सत्यनिष्ठ जीवन से भारत ही नहीं, विदेशों के भी मैक्समूलर, जोन्स, कीथ, ग्रिफिथ, बरान्निकोव आदि विद्वान् आकर्षित हुए हैं। उनके चरित्र से मानवता मात्र गौरवान्वित हुई है।

हिन्दू धर्म के कई त्योहार, जैसे दशहरा और दीपावली, राम की जीवन-कथा से जुडे हुए है। माना जाता है कि राम का जन्म प्राचीन भारत में हुआ था। उनके जन्म के समय का अनुमान सही से नहीं लगाया जा सका है। आज के युग में राम का जन्म, रामनवमी के रूप में मनाया जाता है। राम चार भाईयो में से सबसे बड़े थे, इनके भाइयो के नाम लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न थे। राम बचपन से ही शान्त स्वभाव के वीर पुरुष थे। उन्होने मर्यादाओं को हमेशा सर्वोच्च स्थान दिया था। इसी कारण उन्हें मर्यादा पुरुषोत्तम राम के नाम से जाना जाता है। उनका राज्य न्यायप्रिय और ख़ुशहाल माना जाता था, इसलिए भारत में जब भी सुराज की बात होती है, रामराज या रामराज्य का उद्धरण दिया जाता है। धर्म के मार्ग पर चलने वाले राम ने अपने तीनो भाइयों के साथ गुरु वसिष्ठ से शिक्षा प्राप्त की।

राम के बचपन की विस्तार-पूर्वक विवरण स्वामी तुलसीदास की रामचरितमानस के बालकाण्ड से मिलती है। राजा दशरथ के तीन रानियाँ थीः कौशल्या, सुमित्रा और कैकेयी। राम कौशल्या के पुत्र थे, सुमित्रा के दो पुत्र, लक्ष्मण और शत्रुघ्न थे और कैकेयी के पुत्र भरत थे। कैकेयी चाहती थी उनके पुत्र भरत राजा बनें, इसलिए उन्होंने राम को, दशरथ द्वारा 14 वर्ष का वनवास दिलाया। राम ने अपने पिता की आज्ञा का पालन किया। राम की पत्नी सीता, और उनके भाई लक्ष्मण भी वनवास चलदिये।

अपनी छवि और कांति से अगणित कामदेवों को लज्जित करने वाले राम के सौंदर्य का वर्णन भी रामायणादि ग्रंथों में यथेष्ट मात्रा में पाया जाता है। तुलसी के रामचरितमानस में तो स्थल स्थल पर इस तरह के विवरण भरे पड़े हैं। राजा जनक जब विश्वामित्र मुनि से मिलने गए तो वहाँ राम की सुंदर छवि देखकर वह अपनी सुध वुध ही भूल गए, वे सचमुच ही विदेह हो गए। उके अलौकिक सौंदर्य का यहाँ तक प्रभाव पड़ा कि 'बरबस ब्रह्म सुखहिं मन त्यागा।' जनक की पुष्पवाटिका में सीता की एक सखी ने राम को जब देखा तो वह भौंचक रह गई।

सीता के निकट आकर वह केवल इतना ही कह सकी 'स्याम गौर किमि कहौं वखानी, गिरा अनयन नयन बिनु बानी।' उनके अंग प्रत्यंग का जो वर्णन किया गया है, वह अद्वितीय है। मखभूमि में तथा विवाहमंडप में भी राम के नखशिख का ऐसा ही सुंदर वर्णन मानस में दिया गया है। सामान्य लोगों की तो बात ही क्या, परशुराम जैसे दुर्धर्ष वीर को भी राम के अलौकिक सौंदर्य ने हक्का बक्का बना दिया। वे निर्निमेष नेत्रों से उन्हें देखते रह गए। ऐसा ही एक प्रसंग उस समय आया जब खर दूषण की सेना के वीर राम का रूप देखकर हथियार चलाना ही भूल गए। उनके नेता को स्वीकार करना पड़ा कि अपने जीवन में आज तक हमने ऐसा सौंदर्य कहीं देखा नहीं, इसलिए 'यद्यपि भगिनी कीन्ह कुरूपा, वध लायक़ नहिं पुरुष अनूपा।

राम के चरित्र में भारत की संस्कृति के अनुरूप पारिवारिक और सामाजिक जीवन के उच्चतम आदर्श पाए जाते हैं। उनमें व्यक्तित्वविकास,लोकहित तथा सुव्यवस्थित राज्यसंचालन के सभी गुण विद्यमान थे। उन्होंने दीनों, असहायों, संतों और धर्मशीलों की रक्षा के लिए जो कार्य किए, आचारव्यवहार की जो परंपरा क़ायम की, सेवा और त्याग का जो उदाहरण प्रस्तुत किया तथा न्याय एवं सत्य की प्रतिष्ठा के लिए वे जिस तरह अनवरत प्रयत्नवान् रहे, जिससे उन्हें भारत के जन-जन के मानस मंदिर में अत्यंत पवित्र और उच्च आसन पर आसीन कर दिया है।

राम के पराक्रम सौंदर्य से भी अधिक व्याक प्रभाव उनके शील और आचार व्यवहार का पड़ा जिसके कारण उन्हें अपने जीवनकाल में ही नहीं, वरन् अनुवर्ती युग में भी ऐसी लोकप्रियता प्राप्त हुई जैसी विरले ही किसी व्यक्ति को प्राप्त हुई हो। वे आदर्श पुत्र, आदर्श पति, स्नेहशील भ्राता और लोकसेवानुरक्त, कर्तव्यपरायण राजा थे। माता पिता का वे पूर्ण समादर करते थे।

प्रात: काल उठकर पहले उन्हें प्रणाम करते, फिर नित्यकर्म स्नानादि से निवृत्त होकर उनकी आज्ञा ग्रहण कर अपने काम काज में जुट जाते थे। विवाह हो जाने के बाद राजा ने उन्हें युवराज बनाना चाहा, किंतु मंथरा दासी के बहकाने से विमाता कैकेयी ने जब उन्हें 14 वर्ष का वनवास देने का वर राजा से माँगा तो विरोध में एक शब्द भी न कहकर वे तुरंतवन जाने को तैयार हो गए। उन्होंने कैकेयी से कहा 'सुन जननी सोइ सुत बड़ भागी, जो पितृ मातु वचन अनुरागी।' वाल्मीकि के अनुसार राम ने यहाँ तक कह दिया कि दिया कि 'राजा यदि अग्नि में कूदने को कहें तो कूदूँगा, विष खाने को कहें तो खाऊँगा।' निदान समस्त राजवैभव, उत्तुंग प्रासाद और बहुमूल्य वस्त्राभूषणों का परित्याग कर लक्ष्मण तथा सीता के साथ वे सहर्ष वन के लिए चल पड़े। जाने के पहले उन्होंने गुरु से कहलाकर ब्राह्मणों तथा विद्वानों के वर्षाशन की व्यवस्था करा दी और भरत के लिए संदेश दिया कि 'नीति न तजहिं राजपद पाये'। पिता और माताओं की सुख सुविधा का ध्यान रखने की प्रार्थना पुरजनों हितेच्छुओं से करते हुए उन्होंने कहा

'सोइ सब भाँति मोर हितकारी, जाते रहैं भुआल सुखारी' तथा 'मातु सकल मोरे विरह जेहि न होयँ दुखदीन, सो उपाय तुम करह सब पुरजन प्रजा प्रवीना'

राम जानते थे कि सीता अत्यंत सुकुमार हैं अत: उन्होंने उन्हें अयोध्या में ही रहने को बहुत समझाया पर जब वे नहीं मानीं तब उन्होंने उन्हें अपने साथ ले लिया और गर्मी, वर्षा, थकान आदि का बराबर ध्यान रखते हुए सहृदय, स्नेही पति के रूप में उन्हें भरसक कोई कष्ट नहीं होने दिया।

राम ने अपने छोटे भाई लक्ष्मण को भी पिता, माता ओर बड़े भाई का अनुराग देकर इस तरह आप्यायित करते रहे कि उन्हें अयोध्या तथा परिजनों के वियोगका दु:ख तनिक भी खलने नहीं पाया। मेघनाद के शक्तिबाण से लक्ष्मण के आहत होने पर राम को मर्मांताक पीड़ा हुई और वे फूट फूटकर रो पड़े। नारी के पीछे भाई का प्राण जाने की आशंका से उन्हें बड़ी ग्लानि हुई। धैर्यवान् होते हुए भी वे इस समय परम व्याकुल हो उठे। किंतु तभी संजीवनी बूटी लेकर हनुमान के लौट आने से किसी तरह लक्ष्मण की प्राणरक्षा हो सकी। भरत पर भी राम का ऐसा ही स्नेह उनकी साधुता एवं निश्छलता पर राम का पूरा विश्वास था। इसी से भरत भी

उनका पूर्ण समादर करते थे और सर्वदा उनकी आज्ञा का पालन करते थे। भरत जब इन्हें लौट लाने के लिए चित्रकूट पहुँचे तब राम ने उन्हें सत्य और कर्तव्यनिष्ठा का उपदेश देते हुए बड़े प्रेम से समझाया और सहारे के लिए अपनी खड़ाउँ देकर सहृदयतापूर्वक विदा किया। वनवास की अवधि बीतने में केवल एक दिन शेष रहने पर भरत की दशा का स्मरण कर राम अत्यंत व्याकुल हो उठे और उन्होंने विभीषण से पुष्प विमान की याचना की, जिससे वे यथा समय अयोध्या पहुँच सकें।

राम के इन्हीं गुणों के कारण समस्त अयोध्यावासी और पशुपक्षी तक उनमें अनुरक्त थे। वनवास के लिए प्रस्थान करने पर भारी संख्या में लोग तमसा नदी तक उनके साथ साथ दौड़ गए। राम को आधी रात के समय उन्हें सोते छोड़कर लुक छिपकर वहाँ से कूच कर देना पड़ा। जागने पर लोगों को बड़ा पछतावा हुआ। अत्यंत दु:खित होकर वे अयोध्या लौट आए वनवास की अवधि भर राम की मंगलकामना के उद्देश्य से नेमव्रत, देवोपासना आदि करते रहे। उधर नाव में बैठकर राम के गंगा पार चले जाने पर सुमंत्र मूर्छित हो गया और उसके रथ के घोड़े भी रामवियोग में व्याकुल हो उठे। उस समय यदि कोई व्यक्ति राम लक्ष्मण का नामोल्लेख कर देता था तो वे पशु विस्फारित नेत्रों से उसकी ओर देखने लगते थे–'जे कहि रामलखन वैदेही, हिकरि हिकरि पशु चितवहिं तेही।' पिता दशरथ ने तो पहले ही कह दिया था कि राम के बिना मेरा जीना संभव नहीं, और यही हुआ भी। माता कौशल्या को इस बात का उतना दु:ख न था कि राम वन गमन की बात सुनकर भी मेरी वज्र की छाती विदीर्ण नहीं हुई, जितनी उन्हें इस बात की ग्लानि थी कि राम जैसे आज्ञाकारी, सुशील पुत्र की मुझ जैसी माता हुई। मतिभ्रम से पूर्व कैकेयी का भी राम से पूर्ण विश्वास था। इसी से उनके राज्याभिषेक की बात सुनकर उसने प्रसन्नता करते हुए कहा था।

रामे वा भरते वाहं विशेषं नोपलक्षये।

तस्मात्तृष्टास्मि यद्राजा रामं राज्येऽभिषेक्ष्यति।[1]

राम प्रजा को हर तरह से सुखी रखना राजा का परम कर्तव्य मानते थे। उनकी धारणा थी कि जिस राजा के शासन में प्रजा दु:खी रहती है, वह नृप अवश्य ही नरक का अधिकारी होता है। जनकल्याण की भावना से ही उन्होंने राज्य का संचालन किया, जिससे प्रजा धनधान्य से पूर्ण, सुखी, धर्मशील एवं निरामय हो गई–'प्रहृष्ट मुदितो लोकस्तुष्ट: पुष्ट: सुधार्मिक:। निरामयो ह्यरोगश्च दुर्भिक्षभयवर्जित:।'

तुलसीदास ने भी रामचरितमानस में रामराज्य की विशद चर्चा की है। लोकानुरंजन के लिए वे अपने सर्वस्व का त्याग करने को तत्पर रहते थे। इसी से भवभूति ने उनके के मुँह से कहलाया है

'स्नेहं दयां च सौख्यं च, यदि वा जानकीमपि।

आराधनाय लोकस्य मुंचतोनास्ति मे व्यथा'।

अर्थात् 'यदि आवश्यकता हुई तो जानकी तक का परित्याग मैं कर सकता हूँ।' प्रजानुरंजन के लिए इतना बड़ा त्याग करने पर उन्हें कितनी मर्मांतक व्यथा हुई, सीता–विरह–कातर होकर किस तरह वे मुमूर्षुवत् हो गए, इसका अत्यंत करुणोत्पादक चित्रण महाकवि भवभूति की कुशल लेखनी ने 'उत्तररामचरित' में किया है

महापराक्रमी योद्धा

राम अद्वितीय महापुरुष थे। वे अतुल्य बलशाली, सौंदर्यनिधान तथा उच्च शील के व्यक्ति थे। किशोरावस्था में ही उन्होंने धार्मिक अनुष्ठानों में रत विश्वामित्र मुनि के परित्राणार्थ ताड़का और सुबाहु राक्षस का वध किया। राजा जनक की स्वयंवर सभा में उन्होंने शिव का वह विशाल धनुष अनायास ही तोड़ डाला जिसके सामने बड़े बड़े वीरपुंगवों को भी नतमस्तक होना पड़ा था। दंडक वन में शूर्पणखा के भड़काने से जब खर, दूषण, त्रिशिरादि ने

उन्हें चारों ओर से घेर लिया तो अकेले ही युद्ध करते हुए उन्होंने थोड़े समय में ही उनका विनाश कर डाला। किष्किंधा में एक ही बाण से राम ने सात तालवृक्षों का छेदन कर दिया और बाद में बड़े भाई के त्रास से उत्पीड़ित सुग्रीव की रक्षा के लिए बालि जैसे महापराक्रमी योद्धा को भी धराशायी कर दिया। लंका में रावण, कुंभकर्ण आदि से हुआ उनका युद्ध तो पराक्रम की पराकाष्ठा का ऐसा उदाहरण है जिसकी मिसाल अन्यत्र कठिनाई से ही मिलेगी।

जब प्रभु श्रीराम, भरत और शत्रुघ्न ने सरयू नदी के 'गोप्रतार घाट' पर विष्णु स्वरूप में प्रवेश किया तो उनके साथ गया समस्त समूह, अर्थात राक्षस, मनुज, रीछ, पक्षी, वानर और ब्रह्माजी ये सब देखकर बहुत आह्लादित हुए और अपने धाम को चले गए। ऐसा मना जाता है कि राम 1100 सौ सालों तक जीवित थे क्योकि वैदिक ऐसी मान्यता है कि कोई भी चक्रवती राजा सौ सालों मे केवल एक बार अश्वमेध यज्ञ कर सकता है राम ने अपने जीवन में कुल 11 बार अश्वमेंध यज्ञ किया था।

7 - वैदिक महापुरुष योगेश्वर कृष्ण

ब्रज या शूरसेन जनपद के इतिहास में श्रीकृष्ण का समय बड़े महत्त्व का है। इसी समय में प्रजातंत्र और नृपतंत्र के बीच कठोर संघर्ष हुए। मगध राज्य की शक्ति का विस्तार हुआ और भारत का वह महान् भीषण संग्राम हुआ, जिसे महाभारत युद्ध कहते हैं। इन राजनीतिक हलचलों के अतिरिक्त इस काल का सांस्कृतिक महत्त्व भी है। मथुरा नगरी इस महान् विभूति का जन्मस्थान होने के कारण धन्य हो गई। मथुरा ही नहीं, सारा शूरसेन या ब्रज जनपद आनंदकंद कृष्ण की मनोहर लीलाओं की क्रीड़ाभूमि होने के कारण गौरवान्वित हो गया। मथुरा और ब्रज को कालांतर में जो असाधारण महत्त्व प्राप्त हुआ, वह इस महापुरुष की जन्मभूमि और क्रीड़ाभूमि होने के कारण ही प्राप्त हुआ। श्रीकृष्ण भागवत धर्म के महान् स्रोत हुए। इस धर्म ने कोटि-कोटि भारतीय जन का अनुरंजन तो किया ही, साथ ही कितने है विदेशी इसके द्वारा प्रभावित हुए। प्राचीन और अर्वाचीन साहित्य का एक बड़ा भाग कृष्ण की मनोहर लीलाओं से ओत-प्रोत है। उनके लोकरंजक रूप ने भारतीय जनता के मानस-पटल पर जो छाप लगा दी है, वह अमिट है। ब्रज में भगवान श्रीकृष्ण को लोग कई नामों से पुकारते है- कान्हा, गोपाल, गिरधर, माधव, केशव, मधुसूदन, गिरधारी, रणछोड़, बंशीधर, नंदलाल, मुरलीधर आदि नामों से जाने जाते हैं।

कृष्ण जन्म का समय -वर्तमान ऐतिहासिक अनुसंधानों के आधार पर श्रीकृष्ण का जन्म लगभग ई. पू. 3000 माना जाता है। ये सम्भवत: 175 वर्ष से कुछ ऊपर की आयु तक जीवित रहे। अपने इस दीर्घ जीवन में उन्हें विविध प्रकार के कार्यों में व्यस्त रहना पड़ा। उनका प्रारंभिक जीवन तो ब्रज में कटा और शेष द्वारका में व्यतीत हुआ। बीच-बीच में उन्हें अन्य अनेक जनपदों में भी जाना पड़ा। जो अनेक घटनाएं उनके समय में घटीं, उनकी विस्तृत चर्चा पुराणों तथा महाभारत में मिलती है। वैदिक साहित्य में तो कृष्ण का उल्लेख बहुत कम मिलता है और उसमें उन्हें मानव-रूप में ही दिखाया गया है, न कि नारायण या विष्णु के अवतार रूप में।

सनातन धर्म के अनुसार भगवान विष्णु सर्वपापहारी पवित्र और समस्त मनुष्यों को भोग तथा मोक्ष प्रदान करने वाले प्रमुख देवता हैं। जब-जब इस पृथ्वी पर असुर एवं राक्षसों के पापों का आतंक व्याप्त होता है, तब-तब भगवान विष्णु किसी न किसी रूप में अवतरित होकर पृथ्वी के भार को कम करते हैं। वैसे तो भगवान विष्णु ने अभी तक तेईस अवतारों को धारण किया। इन अवतारों में उनके सबसे महत्वपूर्ण अवतार 'श्रीराम' और 'श्रीकृष्ण' के ही माने जाते हैं। श्रीकृष्ण ऐतिहासिक पुरुष थे, इसका स्पष्ट प्रमाण 'छान्दोग्य उपनिषद' के एक उल्लेख में मिलता है। वहाँ कहा गया है कि "देवकी पुत्र श्रीकृष्ण को महर्षिदेव:कोटी आंगिरस ने निष्काम कर्म रूप यज्ञ उपासना की शिक्षा दी थी, जिसे ग्रहण कर श्रीकृष्ण 'तृप्त' अर्थात् पूर्ण पुरुष हो गए थे।" श्रीकृष्ण का जीवन, जैसा

कि महाभारत में वर्णित है, इसी शिक्षा से अनुप्राणित था और 'गीता' में उसी शिक्षा का प्रतिपादन उनके ही माध्यम से किया गया है।

कृष्ण लीलाओं का जो विस्तृत वर्णन भागवत ग्रंथ में किया गया है, उसका उद्देश्य क्या केवल कृष्ण भक्तों की श्रद्धा बढ़ाना है या मनुष्य मात्र के लिए इसका कुछ संदेश है? तार्किक मन को विचित्र-सी लगने वाली इन घटनाओं के वर्णन का उद्देश्य क्या ऐसे मन को अतिमानवीय पराशक्ति की रहस्यमयता से विमूढ़वत बना देना है अथवा उसे उसके तार्किक स्तर पर ही कुछ गहरा संदेश देना है, इस पर विचार करना चाहिए। श्रीकृष्ण एक ऐतिहासिक पुरुष हुए हैं, इसका स्पष्ट प्रमाण 'छान्दोग्य उपनिषद' के एक उल्लेख में मिलता है। वहाँ[कहा गया है कि देवकी पुत्र श्रीकृष्ण को महर्षिदेव:कोटी आंगिरस ने निष्काम कर्म रूप यज्ञ उपासना की शिक्षा दी थी, जिसे ग्रहण कर श्रीकृष्ण 'तृप्त' अर्थात् पूर्ण पुरुष हो गए थे।

श्रीकृष्ण का जीवन, जैसा कि महाभारत में वर्णित है, इसी शिक्षा से अनुप्राणित था और 'गीता' में उसी शिक्षा का प्रतिपादन उनके ही माध्यम से किया गया है। किंतु इनके जन्म और बाल-जीवन का जो वर्णन प्राप्त है, वह मूलतः श्रीमद्भागवत का है और वह ऐतिहासिक कम, आध्यात्मिक अधिक है और यह बात ग्रंथ के आध्यात्मिक स्वरूप के अनुसार ही है। ग्रंथ में चमत्कारी भौतिक वर्णनों के पर्दे के पीछे गहन आध्यात्मिक संकेत संजोए गए हैं। वस्तुतः भागवत में सृष्टि की संपूर्ण विकास प्रक्रिया का और उस प्रक्रिया को गति देने वाली परमात्म शक्ति का दर्शन कराया गया है। ग्रंथ के पूर्वार्ध में सृष्टि के क्रमिक विकास का और उत्तरार्ध (दशम स्कंध) में श्रीकृष्ण की लीलाओं के द्वारा व्यक्ति के आध्यात्मिक विकास का वर्णन प्रतीक शैली में किया गया है।

श्रीकृष्ण को हिन्दू धर्म में भगवान विष्णु का अवतार माना जाता है। सनातन धर्म के अनुसार भगवान विष्णु सर्वपापहारी पवित्र और समस्त मनुष्यों को भोग तथा मोक्ष प्रदान करने वाले प्रमुख देवता हैं। श्रीकृष्ण साधारण व्यक्ति न होकर 'युग पुरुष' थे। उनके व्यक्तित्व में भारत को एक प्रतिभा सम्पन्न 'राजनीतिवेत्ता' ही नही, एक महान् 'कर्मयोगी' और 'दार्शनिक' प्राप्त हुआ, जिसका 'गीता' ज्ञान समस्त मानव-जाति एवं सभी देश-काल के लिए पथ-प्रदर्शक है। कृष्ण की स्तुति लगभग सारे भारत में किसी न किसी रूप में की जाती है। वे लोग जिन्हें हम साधारण रूप में नास्तिक या धर्म निरपेक्ष की श्रेणी में रखते हैं, निश्चित रूप से 'श्रीमद् भगवद्गीता' से प्रभावित हैं। 'गीता' किसने और किस काल में कही या लिखी यह शोध का विषय है, किन्तु 'गीता' को कृष्ण से ही जोड़ा जाता है। यह आस्था का प्रश्न है और यूँ भी आस्था के प्रश्नों के उत्तर इतिहास में नहीं तलाशे जाते।

अठारह दिन चले महाभारत के युद्ध में रक्तपात के सिवाय कुछ हासिल नहीं हुआ। इस युद्ध में कौरवों के समस्त कुल का नाश हुआ, साथ ही पाँचों पांडवों को छोड़कर पांडव कुल के अधिकाँश लोग मारे गए। लेकिन इस युद्ध के कारण, युद्ध के पश्चात एक और वंश का खात्मा हो गया वो था 'श्री कृष्ण जी का यदुवंश'।

गांधारी ने दिया था यदुवंश के नाश का श्राप :

महाभारत युद्ध की समाप्ति के बाद जब युधिष्ठर का राजतिलक हो रहा था तब कौरवों की माता गांधारी ने महाभारत युद्ध के लिए श्रीकृष्ण को दोषी ठहराते हुए श्राप दिया की जिस प्रकार कौरवों के वंश का नाश हुआ है ठीक उसी प्रकार यदुवंश का भी नाश होगा। गांधारी के श्राप से विनाशकाल आने के कारण श्रीकृष्ण द्वारिका लौटकर यदुवंशियों को लेकर प्रयास क्षेत्र में आ गये थे। यदुवंशी अपने साथ अन्न-भंडार भी ले आये थे। कृष्ण ने ब्राह्मणों को अन्नदान देकर यदुवंशियों को मृत्यु का इंतजार करने का आदेश दिया था। कुछ दिनों बाद महाभारत-युद्ध की चर्चा करते हुए सात्यकि और कृतवर्मा में विवाद हो गया। सात्यकि ने गुस्से में आकर कृतवर्मा का सिर काट दिया। इससे उनमें आपसी युद्ध भड़क उठा और वे समूहों में विभाजित होकर एक-दूसरे का संहार करने लगे। इस लड़ाई में श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न और मित्र सात्यकि समेत सभी यदुवंशी मारे गये थे, केवल बब्रु और दारूक ही बचे रह गये थे। यदुवंश के नाश के बाद कृष्ण के ज्येष्ठ भाई बलराम समुद्र तट पर बैठ

गए और एकाग्रचित्त होकर परमात्मा में लीन हो गए। इस प्रकार शेषनाग के अवतार बलरामजी ने देह त्यागी और स्वधाम लौट गए।

बहेलिये का तीर लगने से हुई श्रीकृष्ण की मृत्यु

बलराम जी के देह त्यागने के बाद जब एक दिन श्रीकृष्ण जी पीपल के नीचे ध्यान की मुद्रा में बैठे हुए थे, तब उस क्षेत्र में एक जरा नाम का बहेलिया आया हुआ था। जरा एक शिकारी था और वह हिरण का शिकार करना चाहता था। जरा को दूर से हिरण के मुख के समान श्रीकृष्ण का तलवा दिखाई दिया। बहेलिए ने बिना कोई विचार किए वहीं से एक तीर छोड़ दिया जो कि श्रीकृष्ण के तलवे में जाकर लगा। जब वह पास गया तो उसने देखा कि श्रीकृष्ण के पैरों में उसने तीर मार दिया है। इसके बाद उसे बहुत पश्चाताप हुआ और वह क्षमायाचना करने लगा। तब श्रीकृष्ण ने बहेलिए से कहा कि जरा तू डर मत, तूने मेरे मन का काम किया है। अब तू मेरी आज्ञा से स्वर्गलोक प्राप्त करेगा।

बहेलिए के जाने के बाद वहां श्रीकृष्ण का सारथी दारुक पहुंच गया। दारुक को देखकर श्रीकृष्ण ने कहा कि वह द्वारिका जाकर सभी को यह बताए कि पूरा यदुवंश नष्ट हो चुका है और बलराम के साथ कृष्ण भी स्वधाम लौट चुके हैं। अत: सभी लोग द्वारिका छोड़ दो, क्योंकि यह नगरी अब जल मग्न होने वाली है। मेरी माता, पिता और सभी प्रियजन इंद्रप्रस्थ को चले जाएं। यह संदेश लेकर दारुक वहां से चला गया। इसके बाद उस क्षेत्र में सभी देवता और स्वर्ग की अप्सराएं, यक्ष, किन्नर, गंधर्व आदि आए और उन्होंने श्रीकृष्ण की आराधना की। आराधना के बाद श्रीकृष्ण ने अपने नेत्र बंद कर लिए और वे सशरीर ही अपने धाम को लौट गए।

श्रीमद भागवत के अनुसार जब श्रीकृष्ण और बलराम के स्वधाम गमन की सूचना इनके प्रियजनों तक पहुंची तो उन्होंने भी इस दुख से प्राण त्याग दिए। देवकी, रोहिणी, वसुदेव, बलरामजी की पत्नियां, श्रीकृष्ण की पटरानियां आदि सभी ने शरीर त्याग दिए। इसके बाद अर्जुन ने यदुवंश के निमित्त पिण्डदान और श्राद्ध आदि संस्कार किए।

इन संस्कारों के बाद यदुवंश के बचे हुए लोगों को लेकर अर्जुन इंद्रप्रस्थ लौट आए। इसके बाद श्रीकृष्ण के निवास स्थान को छोड़कर शेष द्वारिका समुद्र में डूब गई। श्रीकृष्ण के स्वधाम लौटने की सूचना पाकर सभी पाण्डवों ने भी हिमालय की ओर यात्रा प्रारंभ कर दी थी। इसी यात्रा में ही एक-एक करके पांडव भी शरीर का त्याग करते गए। अंत में युधिष्ठिर सशरीर स्वर्ग पहुंचे थे।

वानर राज बाली ही था ज़रा बहेलिया

संत लोग यह भी कहते हैं कि प्रभु ने त्रेता में राम के रूप में अवतार लेकर बाली को छुपकर तीर मारा था। कृष्णावतार के समय भगवान ने उसी बाली को जरा नामक बहेलिया बनाया और अपने लिए वैसी ही मृत्यु चुनी, जैसी बाली को दी थी।

8 - नल दमयन्ती की सुक्ष्म कथा

निषध देश में वीरसेन के पुत्र नल नाम के एक राजा थे। बहुत सुन्दर और गुणवान थे। वे सभी तरह की अस्त्र विद्या में भी बहुत निपुण थे। उन्हें जूआ खेलने का भी थोड़ा शौक था। उन्हीं दिनों विदभग् देश में भीमक नाम के एक राजा राज्य करते थे। वे भी नल के समान ही सर्वगुण सम्पन्न थे। उन्होंने दमन ऋषि को प्रसन्न करके उनके वरदान से चार संतान प्राप्त की थी- तीन पुत्र और एक कन्या । पुत्रों के नाम थे दम,दान्त व दमन

पुत्री का नाम था दमयन्ती। दमयन्ती लक्ष्मी के समान रूपवन्ती थी। बड़ी-बड़ी आंखे थी। उस समय देवताओं और यक्षों मे कोई भी कन्या इतनी रूपवती नहीं थी।

उन दिनों कितने ही लोग उस देश में आते और राजा नल से दमयन्ती के गुणों का बखान करते। एक दिन राजा नल ने अपने महल के उद्यान में कुछ हंसों को देखा। उन्होंने एक हंसे को पकड़ लिया। हंस ने कहा आप मुझे छोड़ दीजिए तो हम लोग दमयन्ती के पास जाकर आपके गुणों का ऐसा वर्णन करेंगे कि वह आपको जरूर वर लेगी। वे सब हंस उड़कर राजकुमारी दमयन्ती के पास गए। दमयन्ती उन्हें देखकर बहुत खुश हुई। हंसों को पकडने के लिए दौडने लगी। दमयन्ती जिस हंस को पकड़कर दौड़ती। वही हंस बोल उठता- रानी दमयन्ती निषध देश का एक नल नाम का राजा है। वह राजा बहुत सुन्दर है। मनुष्यों में उसके समान सुंदर और कोई नहीं है। वह मानो साक्षात कामदेव का स्वरूप है। यदि तुम उसकी पत्नी बन जाओ तो तुम्हारा जन्म और रूप दोनों सफल हो जाए। वह अश्विनी कुमार के समान सुन्दर है। मनुष्यों में उसके समान सुंदर और कोई नहीं है। जैसे तुम स्त्रियों में रत्न हो, वैसे ही नल पुरुषों को भूषण है। तुम दोनों की जोड़ी बहुत सुंदर है। दमयन्ती ने कहा- हंस तुम नल से भी ऐसी ही बात कहना। हंस ने लौटकर राजा नल को उनका संदेश दिया। दमयन्ती हंस के मुंह से राजा नल की कीर्ति सुनकर उनसे प्रेम करने लगी। उसकी आसक्ति इतनी बढ़ गई कि वह रात दिन उनका ही ध्यान करती रहती। शरीर धूमिल और दुबला हो गया। वे कमजोर सी दिखने लगी। सहेलियों ने दमयन्ती के मन के भाव जानकर राजा से निवेदन किया कि आपकी पुत्री अस्वस्थ्य हो गई हैं। राजा ने बहुत विचार किया और अंत में इस निर्णय पर पहुंचा कि मेरी पुत्री विवाह योग्य हो गई है। दमयन्ती के पिता ने सभी देशों के राजा को स्वयंवर के लिए निमंत्रण पत्र भेज दिया और सूचित कर दिया। सभी देश के राजा हाथी व घोड़ों के रथों से वहां पहुंचने लगे। नारद और पर्वत से सभी देवताओं को भी दमयन्ती के स्वयंवर का समाचार मिल गया। इन्द्र और सभी लोकपाल भी अपने वाहनों सहित रवाना हुए। राजा नल को भी संदेश मिला तो वे भी दमयन्ती से स्वयंवर के लिए वहां पहुंचे। नल के रूप को देखकर इंद्र ने रास्ते में अपने विमान को खड़ा कर दिया और नीचे उतरकर कहा कि राजा नल आप बहुत सत्यव्रती हैं।

आप हम लोगों के दूत बन जाइए। नल ने प्रतिज्ञा कर ली और कहा कि करूंगा। फिर पूछा कि आप कौन है तो इन्द्र ने कहा हम लोग देवता है। हम लोग दमयन्ती के लिए यहां आएं हैं। आप हमारे दूत बनकर दमयन्ती के पास जाइए और कहिए कि इन्द्र, वरुण, अग्नि और यम देवता तुम्हारे पास आकर तुमसे विवाह करना चाहते हैं। इनमें से तुम चाहो उस देवता को अपना पति स्वीकार कर लो।

नल ने दोनों हाथ जोड़कर कहा कि देवराज वहां आप लोगों का और मेरे जाने का एक ही प्रायोजन है। इसलिए आप मुझे वहां दूत बनाकर भेजे यह उचित नहीं है। जिसकी किसी स्त्री को पत्नी के रूप में पाने की इच्छा हो चुकी हो वह भला उसको कैसे छोड़ सकता है और उसके पास जाकर ऐसी बात कह ही कैसे सकता है? आप लोग कृपया इस विषय में मुझे क्षमा कीजिए। देवताओं ने कहा नल तुम पहले हम लोगों से प्रतिज्ञा कर चुके हो कि मैं तुम्हारा काम करूंगा। अब प्रतिज्ञा मत तोड़ो। अविलम्ब वहां चले जाओ। नल ने कहा- राजमहल में निरंतर कड़ा पहरा रहता है मैं कैसे जा सकुंगा? और राजकुमारी ने कह दी अपने दिल की बात इन्द्र की आज्ञा से नल ने राजमहल में बिना रोक टोक के प्रवेश किया। दमयन्ती और उसकी सहेलियां भी उसे देखकर मुग्ध हो गयी और लज्जित होकर कुछ बोल न सकी। तुम देखने में बड़े सुंदर और निर्दोष जान पड़ते हो। पहले यहां आते समय द्वारपालों ने तुम्हे देखा क्यों नहीं? उनसे तनिक भी चूक हो जाने पर मेरे पिता बहुत कड़ा दण्ड देते हैं। नल ने कहा- मैं नल हूं। लोकपालों का दूत बनकर तुम्हारे पास आया हूं।

सुन्दरी ये देवता तुम्हारे साथ विवाह करना चाहते हैं। तुम इनमें से किसी एक देवता के साथ विवाह कर लो। यही संदेश लेकर मैं तुम्हारे पास आया हूं। उन देवताओं के प्रभाव से जब मैंने तुम्हारे महल में प्रवेश किया तो मुझे कोई देख नहीं पाया। मैंने तुमसे देवताओं का संदेश कह दिया है अब जो कहना है कह दो। अब तुम्हारी जो इच्छा हो करो। दमयन्ती ने बड़ी श्रद्धा के साथ देवताओं को प्रणाम करके मन्द मुस्कान के साथ कहा

स्वामी मैं तो आपको ही अपना सर्वस्व मानकर अपने आप को आपके चरणों में सौंपना चाहती हूं। जिस दिन से मैंने हंसों की बात सुनी तभी से मैं आपके लिए व्याकुल हूं। आपके लिए ही मैंने राजाओं की भीड़ इकट्ठी की है। यदि आप मुझ दासी की प्रार्थना अस्वीकार कर देंगे तो मैं जहर खाकर मर जाऊंगी।

दमयन्ती की खुशी का ठिकाना ना रहा जब राजा नल ने दमयन्ती से कहा- जब बड़े-बड़े लोकपाल तुमसे शादी करना चाहते हैं फिर तुम मुझ मनुष्य से क्यों शादी करना चाहती हो? मैं तो उन देवताओं के चरणों की धूल के बराबर भी नहीं हूं। तुम अपना मन उन्हीं में लगाओ। देवताओं का अप्रिय करने पर इंसान की मृत्यु हो सकती है। तुम मेरी रक्षा करो और उनको वरण कर लो। नल की बात सुनकर दमयन्ती घबरा गई। उसकी आंखों में आंसु छलक आए। उस समय दमयन्ती का शरीर कांप रहा था हाथ जुड़े हुए थे। उसने कहा मैं आपको वचन देती हूं कि मैं आपको ही पति के रूप में वरण करूंगी।

राजा नल ने कहा-अच्छा तब तो तुम ऐसा ही करो परंतु यह बतलाओ कि मैं यहां उनका दूत बनकर आया हूं। अगर इस समय मैं अपने स्वार्थ की बात करने लगूं तो यह कितनी बुरी बात है। मैं तो अपना स्वार्थ तभी बना सकता हूं जब वह धर्म के विरूद्ध ना हो। तब दमयन्ती ने गदगद कण्ठ से कहा राजा इसके लिए एक निर्दोष उपाय है। उसके अनुसार काम करने पर आपको दोष नहीं लगेगा। वह यह उपाय है कि आप सभी लोकपालों के साथ स्वयंवर मंडप में आए। मैं आपको वर लुंगी। तब आपको दोष भी नहीं लगेगा। देवताओं के पूछने पर उन्होंने कहा मैं दमयन्ती के पास गया तो मुझे देखकर वे और उनकी सखियां सभी मुझ पर मोहित हो गई और आप लोगों के प्रस्ताव को उनके सामने रखने के बाद भी वे मुझे ही वरण करने पर तुली हैं।

दमयन्ती ने कैसे पहचाना असली राजा नल को? स्वयंवर की घड़ी आई। राजा भीमक ने सभी को बुलवाया। शुभ मुहूर्त में स्वयंवर रखा। सब राजा अपने-अपने निवास स्थान से आकर स्वयंवर में यथास्थान बैठ गए। तभी दमयन्ती वहां आई। सभी राजाओं का परिचय दिया जाने लगा। दमयन्ती एक-एक को देखकर आगे बढने दिया जाने लगा। आगे एक ही स्थान पर नल के समान ही वेषभुषा वाले पांच राजकुमार खड़े दिखाई दिए। यह देखकर दमयन्ती को संदेह हो गया, वह जिसकी और देखती उन्हें सिर्फ राजा नल ही दिखाई देते। इसलिए विचार करने लगी कि मैं देवताओं को कैसे पहचानूं और ये राजा है यह कैसे जानूं? उसे बड़ा दुख हुआ। अन्त में दमयन्ती ने यही निश्चय किया कि देवताओं की शरण में जाना ही उचित है। हाथ जोड़कर प्रणामपूर्वक स्तुति करने लगी। देवताओं हंसों के मुंह से नल का वर्णन सुनकर मैंने उन्हें पतिरूपण से वरण कर लिया है।

मैंने नल की आराधना के लिए ही यह व्रत शुरू कर लिया है। आप लोग अपना रूप प्रकट कर दें, जिससे में राजा नल को पहचान लूं। देवताओं ने दमयन्ती की बात सुनकर उसके दृढ़-निश्चय को देखकर उन्होंने उसे ऐसी शक्ति दी जिससे वह देवता और मनुष्य में अंतर कर सके। दमयन्ती ने देखा कि शरीर पर पसीना नहीं है। पलके गिरती नहीं हैं। माला कुम्हलाई नहीं है। शरीर स्थिर है। शरीर पर धूल व पसीना भी नहीं है। दमयन्ती ने इन लक्षणों को देखकर ही दमयन्ती ने राजा नल को पहचान लिया।

और कलयुग नल के शरीर में प्रवेश कर गया

जिस समय दमयंती के स्वयंवर से लौटकर इन्द्र व अन्य लोकपाल अपने-अपने लोकों को जा रहे थे। उस समय उनकी मार्ग में ही कलयुग और द्वापर से भेंट हो गई। इन्द्र ने पूछा कलयुग कहा जा रहे हो? कलियुग ने कहा-मैं दमयन्ती के स्वयंवर में उससे विवाह करने के लिए जा रहा हूं। इन्द्र ने कहा अरे स्वयंवर तो कब का पूरा हो गया। दमयन्ती ने राजा नल का वरण कर लिया है।

हम लोग देखते ही रह गए। कलयुग ने क्रोध में भरकर कहा -तब तो यह अनर्थ हो गया। उसने देवताओं की उपेक्षा करके मनुष्य को अपनाया, इसलिए उसको दण्ड देना चाहिए। देवताओं ने कहा- दमयन्ती ने हमारी

आज्ञा प्राप्त करके ही नल को वरण किया है। वास्तव में नल सर्वगुण सम्पन्न और उसके योग्य है। वे समस्त धर्मों के जानकार हैं।

उन्होंने इतिहास पुराणों सहित वेदों का भी अध्ययन किया है। उनको शाप देना तो नरक में धधकती आग में गिरने के समान है। अब कलयुग ने द्वापर से कहा मैं अपने क्रोध को शान्त नहीं कर सकता। इसलिए मैं नल के शरीर में निवास करूंगा। मैं उसे राज्यच्युत कर दूंगा। तब वह दमयन्ती के साथ नहीं रह सकेगा। इसलिए तुम भी जूए के पासों में प्रवेश करके मेरी सहायता करना।

द्वापर ने उसकी बात स्वीकार ली। द्वापर और कलयुग दोनों ही नल की राजधानी में आ बसे। बारह वर्ष तक वे इस बात की प्रतीक्षा में रहे कि नल में कोई दोष दिख जाए। एक दिन राजा नल संध्या के समय लघुशंका से निवृत होकर पैर धोए बिना ही आचमन करके संध्यावंदन करने बैठ गए। यह अपवित्र अवस्था देखकर कलियुग उनके शरीर में प्रवेश कर गया।

जूए में राजा नल सबकुछ हार गए तब

कलयुग दूसरा रूप धारण करके वह पुष्कर बनकर उसकी बात स्वीकार करके वह पुष्कर के पास गया और बोला तुम नल के साथ जुआं खेलो मेरी सहायता करो। जूए में जीतकर निषध राज का राज्य प्राप्त कर लो। पुष्कर उसकी बात स्वीकार करके नल के के पास गया। द्वापर भी पासे का रूप धारण करके उसके साथ चला। जब पुष्कर ने राजा नल को जूआ खेलने का आग्रह किया। तब राजा नल दमयन्ती के सामने अपने भाई की बार – बार की ललकार सह ना सके। उन्होंने पासे खेलने का निश्चय किया। उस समय नल के शरीर में कलयुग घुसा हुआ था, इसीलिए नल जो कुछ भी जूए में लगाते हार जाते। प्रजा और मंत्रियों ने राजा को रोकना चाहा लेकिन जब वे नहीं माने तो मंत्रियों ने द्वारपाल को रानी दमयंती तक राजा को रोकने का संदेश पहुंचवाया। तब रानी नल दमयन्ती को बोली आपकी पूरी प्रजा आपके दुख के कारण अचेत हुई जा रही है। इतना कहकर दमयंती भी रोने लगी। लेकिन राजा नल कलयुग के प्रभाव में थे।

इसीलिए जो पासे फेंकते वही उनके प्रतिकुल पड़ते। जब दमयंती ने यह सब देखा तो उसने धाय को बुलवाया और उसके द्वारा राजा नल के सारथि वाष्र्णेय को बुलवाया। उन्होंने ने उससे कहा सारथि तुम जानते हो कि महाराज बहुत संकट में है। अब यह बात तुम से छिपी नहीं है। तुम रथ जोड़ लो और मेरे बच्चों को रथ में बैठाकर कुंडिनगर ले जाओ। उसके बाद पुष्कर ने राजा नल का सारा धन ले लिया और बोला तुम्हारे पास दावं पर लगाने के लिए और कुछ है या नहीं। यदि तुम दमयंती को दावं पर लगाने के लायक समझो तो उसे लगा दो।

क्योंकि पत्नी का यही धर्म है

एक दिन राजा नल ने देखा कि बहुत से पक्षी उनके पास ही बैठे है। उनके पंख सोने के समान दमक रहे हैं। नल ने सोचा कि इनकी पांख से कुछ धन मिलेगा। ऐसा सोचकर उन्हें पकडने के लिए नल ने उन पर अपना पहनने का वस्त्र डाल दिया। पक्षी उनका वस्त्र लेकर उड़ गए। अब नल नंगे होकर बड़ी दीनता के साथ मुंह नीचे करके खड़ा हो गए।

पक्षियों ने कहा तु नगर से एक वस्त्र पहनकर निकला था। उसे देखकर हमें बड़ा दुख हुआ था ले अब हम तेरे शरीर का वस्त्र लिए जा रहे है। हम पक्षी नहीं जूए के पासे हैं। नल ने दमयन्ती से पासे की बात कह दी। तुम देख रही हो, यहां बहुत से रास्ते है। एक अवन्ती की ओर जाता है। दूसरा पर्वत होकर दक्षिण देश को। सामने विन्ध्याचल पर्वत है। यह पयोष्णी नदी समुद्र में मिलती है। सामने का रास्ता विदर्भ देश को जाता है। यह कौसल देश का मार्ग है।

इस प्रकार राजा नल दुख और शोक से भरकर बड़ी ही सावधानी के साथ दमयन्ती को भिन्न-भिन्न आश्रम मार्ग बताने लगे। दमयन्ती की आंखें आंसु से भर गई। दमयन्ती ने राजा नल से कहा क्या आपको लगता है कि मैं आपको छोड़कर अकेली कहीं जा सकती हूं। मैं आपके साथ रहकर आप के दुःख को दूर करूंगी। दुःख के अवसरो पर पत्नी पुरुष के लिए औषधी के समान है। वह धैर्य देकर पति के दुःख को कम करती है।

राजा नल ने क्यों किया दमयंती को छोडने का फैसला?

उस समय नल के शरीर पर वस्त्र नहीं था। धरती पर बिछाने के लिए एक चटाई भी नहीं थी। शरीर पर धूल से लथपथ हो रहा था। भूख-प्यास से परेशान राजा नल जमीन पर ही सो गए। दमयन्ती भी उनके साथ ये सारे दुख झेल रही थी। राजा नल भी जमीन पर ही सो गए। दमयन्ती के सो जाने पर राजा नल की नींद टूटी। सच्ची बात तो यह थी कि वे दुख और शोक की के कारण सुख की नींद सो भी नहीं सकते थे। वे सोचने लगे कि दमयंती मुझ से बड़ा प्रेम करती है। प्रेम के कारण ही उसे इतना दुख झेलना पड़ेगा। यदि मैं इसे छोड़कर चला जाऊं तो संभव है कि इसे सुख भी मिल जाए। अन्त में राजा नल ने यही निश्चय कि इसे सुख भी मिल जाए।

दमयन्ती सच्ची पतिव्रता है। इसके सतीत्व को कोई भंग नहीं कर सकता। इस प्रकार त्यागने का निश्चय करके और सतीत्व की ओर से निश्चिन्त होकर राजा नल ने यह विचार किया कि मैं नंगा हूं और दमयन्ती के शरीर पर भी केवल एक वस्त्र है। फिर भी इसके वस्त्रों में से आधा फाड़ लेना ही श्रेयस्कर है लेकिन फांडू कैसे? शायद यह जाग जाए? राजा नल ने यह सोचकर दमयंती को धीरे से उठाकर उसके शरीर का आधा वस्त्र फाड़कर शरीर ढक लिया। दमयंती नींद में थी। राजा नल उसे छोड़कर निकल पड़े। थोड़ी देर बाद वे शांत हुए और वे फिर धर्मशाला लौट आए।

और मगर ने रानी को निगलने के लिए जकड़ लिया

थोड़ी देर बाद जब राजा नल का हृदय शांत हुआ ,तब वे फिर धर्मशाला में इधर-उधर घूमने लगे और सोचने लगे कि अब तक दमयन्ती परदे में रहती थी, इसे कोई छू भी नहीं सकता था। आज यह अनाथ के समान आधा वस्त्र पहने धूल में सो रही है। यह मेरे बिना दुखी होकर वन में कैसे रहेगी? मैं तुम्हे छोड़कर जा रहा हूं सभी देवता तुम्हारी रक्षा करें। उस समय राजा नल का दिल दुख के मारे टुकड़े- टुकड़े हुआ जा रहा था।

शरीर में कलियुग का प्रवेश होने के कारण उनकी बुद्धि नष्ट हो गई थी। इसीलिए वे अपनी पत्नी को वन में अकेली छोड़कर वहां से चले गए। जब दमयंती की नींद टूटी, तब उसने देखा कि राजा नल वहां नहीं है। यह देखकर वे चौंक गई और राजा नल को पुकारने लगी। जब दमयंती को राजा नल बहुत देर तक नहीं दिखाई पड़ें तो वे विलाप करने लगी। वे भटकती हुई जंगल के बीच जा पहुंची। वहां अजगर दमयंती को निगलने लगा। दमयंती मदद के लिए चिल्लाने लगी तो एक व्याध के कान में पड़ी। वह उधर ही घूम रहा था। वह वहां दौड़कर आया और यह देखकर दमयंती को अजगर निगल रहा है। अपने तेज शस्त्र से उसने अजगर का मुंह चीर डाला। उसने दमयन्ती को छुड़ाकर नहलाया, आश्वासन देकर भोजन करवाया।

रानी ने क्यों दिया मुसीबत से बचाने वाले को ही शाप?

दमयन्ती जब कुछ शांत हुई। व्याध ने पूछा सुन्दरी तुम कौन हो? किस कष्ट में पड़कर किस उद्देश्य से तुम यहां आई हो? दमयन्ती की सुन्दरता, बोल-चाल और मनोहरता देखकर व्याध मोहित हो गया। वह दमयंती से मीठी-मीठी बातें करके उसे अपने बस में करने की कोशिश करने लगा। दमयन्ती उसके मन के भाव समझ गई। दमयंती ने उसके बलात्कार करने की चेष्टा को बहुत रोकना चाहा लेकिन जब वह किसी प्रकार नहीं माना

तो उसने शाप दे दिया कि मैंने राजा नल के अलावा किसी और का चिंतन कभी नहीं किया हो तो यह व्याध मरकर गिर पड़े। दमयंती के इतना कहते ही व्याध के प्राण पखेरू उड़ गए। व्याध के मर जाने के बाद दमयंती एक निर्जन और भयंकर वन में जा पहुंची।

राजा नल का पता पूछती हुई वह उत्तर की ओर बढने लगी। तीन दिन रात दिन रात बीत जाने के बाद दमयंती ने देखा कि सामने ही एक बहुत सुन्दर तपोवन है। जहां बहुत से ऋषि निवास करते हैं। उसने आश्रम में जाकर बड़ी नम्रता के साथ प्रणाम किया और हाथ जोड़कर खड़ी हो गई। ऋषियों को प्रणाम किया। ऋषियों ने दमयन्ती का सत्कार किया और उसे बैठने को कहा- दमयन्ती ने एक भद्र स्त्री के समान सभी के हालचाल पूछे। फिर ऋषियों ने पूछा आप कौन है? तब दमयंती ने अपना पूरा परिचय दिया और अपनी सारी कहानी ऋषियों को सुनाई। तब सारे तपस्वी उसे आर्शीवाद देते हैं कि थोड़े ही समय में निषध के राजा को उनका राज्य वापस मिल जाएगा। उसके शत्रु भयभीत होंगे व मित्र प्रसन्न होंगे और कुटुंबी आनंदित होंगे। इतना कहकर सभी ऋषि अंर्तध्यान हो गए।

रानी ने मुश्किल समय में भी रख दी शर्त क्योंकि....

दमयंती रोती हुई एक अशोक के वृक्ष के पास पहुंचकर बोली तू मेरा शोक मिटा दे। शोक रहित अशोक तू मेरा शोक मिटा दे। क्या कहीं तूने राजा नल को शोक रहित देखा है। तू अपने शोकनाशक नाम को सार्थक कर।दमयन्ती ने अशोक की परिक्रमा की और वह आगे बढ़ी। उसके बाद आगे बड़ी तो बहुत दूर निकल गई। वहां उसने देखा कि हाथी घोड़ों और रथों के साथ व्यापारियों का एक झुंड आगे बढ़ रहा है। व्यापारियों के प्रधान से बातचीत करके दमयंती को जब यह पता चला कि वे सभी चेदीदेश जा रहे हैं तो वह भी उनके साथ हो गई। कई दिनों तक चलने के बाद वे व्यापारी एक भयंकर वन में पहुंचे। वहा एक बहुत सुंदर सरोवर था। लंबी यात्रा के कारण वे लोग थक चुके थे। इसलिए उन लोगों ने वहीं पड़ाव डाल दिया। रात के समय जंगली हाथियों का झुंड आया। आवाज सुनकर दमयंती की नींद टूट गई। वह इस मांसाहार के दृश्य को देखकर समझ नहीं पा रही थी कि वह क्या करे? वे सभी व्यापारी मर गए वो वहां से भाग निकली और दमयंती भागकर उन ब्राह्मणों के पास पहुंची और उनके साथ चलने लगी शाम के समय वह राजा सुबाहु के यहां जा पहुंची। वहां उसे सब बावली समझ रहे थे। उसे बच्चे परेशान कर रहे थे।

उस समय राज माता महल के बाहर खिड़की से देख रही थी उन्होंने अपनी दासी से कहा देखो तो वह स्त्री बहुत दुखी मालुम होती है। तुम जाओ और मेरे पास ले आओ। दासी दमयंती को रानी के पास ले गई। रानी ने दमयंती स पूछा तुम्हे डर नहीं लगता ऐसे घुमते हुए। तब दमयंती ने बोला में एक पतिव्रता स्त्री हूं। मैं हूं तो कुलीन पर दासी का काम करती हूं। तब रानी ने बोला ठीक है तुम महल में ही रह जाओ। तब दमयंती कहती है कि मैं यहां रह तो जाऊंगी पर मेरी तीन शर्त है मैं झूठा नहीं खाऊंगी, पैर नहीं धोऊंगी और परपुरुष से बात नहीं करुंगी। रानी ने कहा ठीक है हमें आपकी शर्ते मंजुर है।

जैसे ही राजा ने कहा दश सांप ने डंस दिया...

जिस समय राजा नल दमयन्ती को सोती छोड़कर आगे बढ़े, उस समय वन में आग लग रही थी। तभी नल को आवाज आई। राजा नल शीघ्र दौड़ो। मुझे बचाओ। नागराज कुंडली बांधकर पड़ा हुआ था। उसने नल से कहा- राजन मैं कर्कोटक नाम का सर्प हूं। मैंने नारद मुनि को धोखा दिया था। उन्होंने शाप दिया कि जब तक राजा नल तुम्हे न उठावे, तब तक यहीं पड़े रहना। उनके उठाने पर तू शाप से छूट जाएगा। उनके शाप के कारण मैं यहां से एक भी कदम आगे नहीं बढ़ सकता। तुम इस शाप से मेरी रक्षा करो। मैं तुम्हे हित की बात बताऊंगा और तुम्हारा मित्र बन जाऊंगा। मेरे भार से डरो मत मैं अभी हल्का हो जाता हूं वह अंगूठे के बराबर हो गया। नल उसे उठाकर दावानल से बाहर ले आए। कार्कोटक ने कहा तुम अभी मुझे जमीन पर मत डालो।

कुछ कदम गिनकर चलो। राजा नल ने ज्यो ही पृथ्वी पर दसवां कदम चला और उन्होंने कहा दश तो ही कर्कोटक ने उन्हें डस लिया। उसका नियम था कि जब कोई बोले दश तभी वह डंसता था।

आश्चर्य चकित नल से उसने कहा महाराज तुम्हे कोई पहचान ना सके इसलिए मैंने डस के तुम्हारा रूप बदल दिया है। कलियुग ने तुम्हे बहुत दुःख दिया है। अब मेरे विष से वह तुम्हारे शरीर में बहुत दुःखी रहेगा। तुमने मेरी रक्षा की है। अब तुम्हे हिंसक पशु-पक्षी शत्रु का कोई भय नहीं रहेगा। अब तुम पर किसी भी विष का प्रभाव नहीं होगा और युद्ध में हमेशा तुम्हारी जीत होगी।

और राजा बन गया सारथी

यह कहकर कर्कोटक ने दो दिव्य वस्त्र दिए और वह अंर्तध्यान हो गया। राजा नल वहां से चलकर दसवें दिन राजा ऋतुपर्ण की राजधानी अयोध्या में पहुंच गया। उन्होंने वहां राजदरबार में निवेदन किया कि मेरा नाम बाहुक है। मैं घोड़ों को हांकने और उन्हें तरह-तरह की चालें सिखाने का काम करता हूं। घोड़ो की विद्या मेरे जैसा निपुण इस समय पृथ्वी पर कोई नहीं है। रसोई बनाने में भी में बहुत चतुर हूं, हस्तकौशल के सभी काम और दूसरे कठिन काम करने की चेष्ठा करूंगा। आप मेरी आजीविका निश्चित करके मुझे रख लीजिए। उसकी सारी बात सुनकर राजा ऋतुपर्ण ने कहा बाहुक मैं सारा काम तुम्हें सौंपता हूं। लेकिन मैं शीघ्रगामी सवारी को विशेष पसंद करता हूं। तुम्हे हर महीने सोने की दस हजार मुहरें मिला करेंगी। लेकिन तुम कुछ ऐसा करो कि मेरे घोड़ों कि चाल तेज हो जाए। इसके अलावा तुम्हारे साथ वाष्र्णेय और जीवल हमेशा उपस्थित रहेंगें। राजा नल रोज दमयन्ती को याद करते और दुःखी होते कि दमयन्ती भूख-प्यास से परेशान ना जाने किस स्थिति में होगी। इसी तरह राजा नल ने दमयंती के बारे में सोचते हुए कई दिन बिता दिए। ऋतुपर्ण के पास रहते हुए उन्हें कोई ना पहचान सका। जब राजा विदर्भ को यह समाचार मिला कि मेरे दामाद नल और पुत्री राज पाठ विहिन होकर वन में चले गए हैं।

राजमाता ने कैसे पहचाना रानी को?

तब उन्होंने सुदेव नाम के एक ब्राह्मण को नल-दमयंती का पता लगाने के लिए चेदिनरेश के राज्य में भेजा। उसने एक दिन राज महल में दमयंती को देख लिया। उस समय राजा के महल में पुण्याहवाचन हो रहा था। दमयंती- सुनन्दा एक साथ बैठकर ही वह कार्यक्रम देख रही थी। सुदेव ब्राह्मण ने दमयंती को देखकर सोचा कि वास्तव में यही भीमक नन्दिनी है। मैंने इसका जैसा रूप पहले देखा था। वैसा अब भी देख रहा हूं। बड़ा अच्छा हुआ, इसे देख लेने से मेरी पुरी यात्रा सफल हो गई। सुदेव दमयंती के पास गया और उससे बोला दमयंती मैं तुम्हारे भाई का मित्र सुदेव हूं। मैं तुम्हारें भाई की आज्ञा से तुम्हे ढूढने यहां आया हूं। दमयंती ने ब्राह्मण को पहचान लिया। वह सबका कुशल-मंगल पूछने लगी और पूछते ही पूछते रो पड़ी।

सुनन्दा दमयंती को रोता देख घबरा गई। उसने अपनी माता के पास जाकर उन्हें सारी बात बताई। राज माता तुरंत अपने महल से बाहर निकल कर आयी। ब्राह्मण के पास जाकर पूछने लगी महाराज ये किसकी पत्नी है? किसकी पुत्री है? अपने घर वालों से कैसे बिछुड़ गए? तब सुदेव ने उनका पूरा परिचय उसे दिया। सुनन्दा ने अपने हाथों से दमयंती का ललाट धो दिया। जिससे उसकी भौहों के बीच का लाल चिन्ह चन्द्रमा के समान प्रकट हो गया। उसके ललाट का वह तिल देखकर सुनन्दा व राजमाता दोनों ही रो पड़े। राजमाता ने कहा मैंने इस तिल को देखकर पहचान लिया कि तुम मेरी बहन की पुत्री हो। उसके बाद दमयंती अपने पिता के घर चली गई।

तब खत्म हुई रानी की खोज

अपने पिता के घर एक दिन विश्राम करके दमयंती अपनी माता से कहा कि मां मैं आपसे सच कहती हूं। यदि आप मुझे जीवित रखना चाहती हैं तो आप मेरे पतिदेव को ढूंढवा दीजिए। रानी ने उनकी बात सुनकर नल

को ढूंढवाने के लिए ब्राह्मणों को नियुक्त किया। ब्राह्मणों से दमयंती ने कहा आप लोग जहां भी जाए वहां भीड़ में जाकर यह कहे कि मेरे प्यारे छलिया, तुम मेरी साड़ी में से आधी फाड़कर अपनी दासी को उसी अवस्था में आधी साड़ी में आपका इंतजार कर रही है। मेरी दशा का वर्णन कर दीजिएगा और ऐसी बात कहिएगा।

जिससे वे प्रसन्न हो और मुझ पर कृपा करे। बहुत दिनों के बाद एक ब्राह्मण वापस आया। उसने दमयंती से कहा मैंने राजा ऋतुपर्ण के पास जाकर भरी सभा में आपकी बात दोहराई तो किसी ने कुछ जवाब नहीं दिया। जब मैं चलने लगा तब बाहुक नाम के सारथि ने मुझे एकान्त में बुलाया उसके हाथ छोटे व शरीर कुरूप है। वह लम्बी सांस लेकर रोता हुआ मुझसे कहने लगा।

उच्च कुल की स्त्रियों के पति उन्हें छोड़ भी देते हैं तो भी वे अपने शील की रक्षा करती हैं। त्याग करने वाला पुरुष विपत्ति के कारण दुःखी और अचेत हो रहा था। इसीलिए उस पर क्रोध करना उचित नहीं है। लेकिन वह उस समय बहुत परेशान था।जब वह अपनी प्राणरक्षा के लिए जीविका चाह रहा था। तब पक्षी उसके वस्त्र लेकर उड़ गए। जब ब्राह्मण ने यह बात बताई तो दमयंती समझ गई कि वे राजा नल ही हैं।

इसलिए रानी ने फिर से रचाया स्वयंवर..

ब्राह्मण की बात सुनकर दमयंती की आंखों में आंसु भर आए। उसने अपनी माता को सारी बात बताई। तब उन्होंने कहा आप यह बात अब अपने पिताजी से ना कहे। मैं सुदैव ब्राह्मण को इस काम के लिए नियुक्त करती हूं। तब दमयंती ने सुदेव से कहा- ब्राह्मण देवता आप जल्दी से जल्दी अयोध्या नगरी पहुंचे। राजा ऋतुपर्ण से यह बात कहिए कि दमयंती ने फिर से स्वेच्छानुसार पति का चुनाव करना चाहती है।

बड़े-बड़े राजा और राजकुमार जा रहे हैं। स्वयंवर की तिथि कल ही है। इसलिए यदि आप पहुंच सकें तो वहां जाइए। नल के जीने अथवा मरने का किसी को पता नहीं है, इसलिए वह इसीलिए कल वे सूर्योदय पूर्व ही पति वरण करेंगी। दमयंती की बात सुनकर सुदेव अयोध्या गए और उन्होंने राजा ऋतुपर्ण से सब बातें कह दी। सुदेव की बातें सुनाकर बाहुक को बुलाया और कहा बाहुक कल दमयंती का स्वयंवर है और हमें जल्दी से जल्दी वहां पहुंचना है। यदि तुम मुझे जल्दी वहां पहुंच जाना संभव समझो तभी मैं वहां जाऊंगा।

ऋतुपर्ण की बात सुनकर नल का कलेजा फटने लगा। सोचा कि दमयंती ने दुःखी और अचेत होकर ही ऐसा किया होगा। संभव है वह ऐसा करना चाहती हो। नल ने शीघ्रगामी रथ में चार श्रेष्ठ घोड़े जोत लिए। राजा ऋतुपर्ण रथ पर सवार हो गए। रास्ते में ऋतुपर्ण ने उसे पासें पर वशीकरण की विद्या सिखाई क्योंकि उसे घोड़ों की विद्या सीखने का लालच था। जिस समय राजा नल ने यह विद्या सीखी उसी समय कलियुग राजा नल के शरीर से बाहर आ गया।

रानी ने राजा को पहचानने के लिए क्या किया?

कलियुग ने नल का पीछा छोड़ दिया था। लेकिन अभी उनका रूप नहीं बदला था। उन्होंने अपने रथ को जोर से हांका और शाम होते-होते वे विदर्भ देश में पहुंचे। राजा भीमक के पास समाचार भेजा गया। उन्होंने ऋतुपर्ण को अपने यहां बुला लिया ऋतुपर्ण के रथ की गुंज से दिशाएं गुंज उठी। दमयंती रथ की घरघराहट से समझ गई कि जरूर इसको हांकने वाले मेरे पति देव हैं। यदि आज वे मेरे पास नहीं आएंगे तो मैं आग में कुद जाऊंगी।

उसके बाद अयोध्या नरेश ऋतुपर्ण जब राजा भीमक के दरबार में पहुंचे तो उनका बहुत आदर सत्कार हुआ। भीमक को इस बात का बिल्कुल पता नहीं था कि वे स्वयंवर का निमंत्रण पाकर यहां आए हैं। जब ऋतुपर्ण ने स्वयंवर की कोई तैयारी नहीं देखी तो उन्होंने स्वयंवर की बात दबा दी और कहा मैं तो सिर्फ आपको प्रणाम करने चला आया। भीमक सोचने लगे कि सौ-योजन से अधिक दूर कोई प्रणाम कहने तो नहीं

आ सकता। लेकिन वे यह सोच छोड़कर भीमक के सत्कार में लग गए। बाहुक वाष्र्णेय के साथ अश्वशाला में ठहरकर घोड़ो की सेवा में लग गया। दमयंती आकुल हो गई कि रथ कि ध्वनि तो सुनाई दे रही है पर कहीं भी

मेरे पति के दर्शन नहीं हो रहे। हो ना हो वाष्र्णेय ने उनसे रथ विद्या सीख ली होगी। तब उसने अपनी दासी से कहा हे दासी तु जा और इस बात का पता लगा कि यह कुरूप पुरुष कौन है? संभव है कि यही हमारे पतिदेव हों। मैंने ब्राह्मणों द्वारा जो संदेश भेजा था। वही उसे बतलाना और उसका उत्तर मुझसे कहना। तब दासी ने बाहुक से जाकर पूछा राजा नल कहा है क्या तुम उन्हें जानते हो या तुम्हारा सारथि वाष्र्णेय जानता है? बाहुक ने कहा मुझे उसके संबंध में कुछ भी मालुम नहीं है सिर्फ इतना ही पता है कि इस समय नल का रूप बदल गया है। वे छिपकर रहते हैं। उन्हें या तो दमयंती या स्वयं वे ही पहचान सकते हैं या उनकी पत्नी दमयंती क्योंकि वे अपने गुप्त चिन्हों को दूसरों के सामने प्रकट नहीं करना चाहते हैं।

इस तरह हुआ अमर प्रेम कहानी का सुखद अंत

अब दमयंती की आशंका और बढ़ गई और दृढ़ होने लगी कि यही राजा नल है। उसने दासी से कहा तुम फिर बाहुक के पास जाओ और उसके पास बिना कुछ बोले खड़ी रहो। उसकी चेष्टाओं पर ध्यान दो। अब आग मांगे तो मत देना जल मांगे तो देर कर देना। उसका एक-एक चरित्र मुझे आकर बताओ। फिर वह मनुष्यों और देवताओं से उसमें बहुत से चरित्र देखकर वह दमयंती के पास आई और बोली बाहुक ने हर तरह से अग्नि, जल व थल पर विजय प्राप्त कर ली है। मैंने आज तक ऐसा पुरुष नहीं देखा। तब दमयंती को विश्वास हो जाता है कि वह बाहुक ही राजा नल है। अब दमयंती ने सारी बात अपनी माता को बताकर कहा कि अब मैं स्वयं उस बाहुक की परीक्षा लेना चाहती हूं। इसलिए आप बाहुक को मेरे महल में आने की आज्ञा दीजिए। आपकी इच्छा हो तो पिताजी को बता दीजिए। रानी ने अपने पति भीमक से अनुमति ली और बाहुक को रानीवास बुलवाने की आज्ञा दी। दमयंती ने बाहुक के सामने फिर सारी बात दोहराई। तब दमयंती के आखों से आंसू टपकते देखकर नल से रहा नहीं गया। नल ने कहा मैंने तुम्हे जानबुझकर नहीं छोड़ा। नहीं जूआ खेला यह सब कलियुग की करतूत है। दमयंती ने कहा कि मैं आपके चरणों को स्पर्श करके कहती हूं कि मैंने कभी मन से पर पुरुष का चिंतन नहीं किया हो तो मेरे प्राणों का नाश हो जाए।

ऐसा अद्भुत दृश्य देखकर राजा नल ने अपना संदेह छोड़ दिया और कार्कोटक नाग के दिए वस्त्र को अपने ऊपर ओढ़कर उसका स्मरण करके वे फिर असली रूप में आ गए। दोनों ने सबका आर्शीवाद लिया दमयंती के मायके से उन्हें खुब धन देकर विदा किया गया। उसके बाद नल व दमयंती अपने राज्य में पहुंचे। राजा नल ने पुष्कर से फिर जूआं खेलने को कहा तो वह खुशी-खुशी तैयार हो गया और नल ने जूए की हर बाजी को जीत लिया। इस तरह नल व दमयंती को फिर से अपना राज्य व धन प्राप्त हो गया।

जीवन के दुःख का मुल कारण हमारा स्वयं का ज्ञान ही है। इसको अपने जीवन में मैने अनुभव कर लिया है। क्योंकि यह मेरा अपना स्वयं का अनुभव है। मैने अपने जीवन को जितना अधिक ज्ञान पुर्वक जीया उतना ही अधिक मेरें जीवन में दुःख, समस्या और कष्टों से भर गया। जहां तक मैने जाना है और अनुभव किया यह संसार स्वयं नहीं बना है। इसको बनाने वाला है जिस प्रकार से हम देखते है कि एक कम्प्युटर प्रोग्रामर होता है। वह काल्पनिक दुनिया का निर्माण कर के एक प्रोग्राम बनाता है। जिसमें सब कुछ सच लगता है और वह सब कुछ होता है जैसा कि हमारे दुनिया में होता उस काल्पनिक दुनिया में सारे नियम हमारे दुनिया के नियम ही काम करते है। वह एक प्रकार का गेम होता है। जिसको हम कम्प्युटर पर खेलते है। उस समय हम यह खेल बिल्कुल वास्तविक समझते है। यद्यपि वह सब झुठ और कल्पना के अतिरीक्त कुछ नहीं है। ऐसा ही हमारी दुनिया के साथ है इसका बनाने वाला जिसे हम सब परमेश्वर कहते है। वास्तव में परमेश्वर जैसा कोई नहीं है।

हां यह अवश्य है कि एक प्रोग्रामर है जिसने हमारी दुनिया और हम सब को प्रोग्राम किया है। और अपनी तरह से इस हमारी दुनिया को चला रहा है। जब उसे प्रतित होता है कि कोई ऐसा व्यक्ती है जो इस दुनिया में जन्म ले लिया है जो इस दुनिया के वास्तविक ज्ञान को जान चुका है। या सत्य को जाने के लिये उत्सुक है तो वह प्रोग्रामर जो हर समय हर व्यक्ती से अपने प्रोग्राम और नेटवर्क से जुड़ा रहता है। वह ऐसी ऐसी समस्या और कष्टों को उसके सामने खड़ी करता है। जिससे या तो वह अपने मार्ग को छोड़ दे या वह अपनी मृत्यु को उपलब्ध हो जाये। जिस प्रकार से राजा हरिश्चन्द्र को कितना भयानक कष्टों को सहना पड़ा अपनी सत्याता के कारण जिससे देवताओं के राजा का सिहासन हिलने लाग था। यहां पर हमने जाना कि किस प्रकार से हम सब को बनाने वाला प्रोग्रामर यह किसी किमत पर नहीं चाहता है। कि सत्य का या स्वयं के सत्य का ज्ञान किसी को हो। जो उसकी आज्ञा का उलंघन करता है। उसको वह जल्दी से जल्दी इस दुनिया से उठा लेता है। और हम अक्सर सुनते है की जो इमानदार सत्य वादी ज्ञानी पुरुष होते है उनके हिस्से में ही बहुत अधिक परेशानिया और कष्ट क्यों आते है। जिसका वह सामना नहीं कर सकते है और अंत में वह मृत्यु को उपलब्ध होते है। ऐसे एक व्यक्ती नहीं पूरी दुनिया मे ऐसे बहुत व्यक्ती आज तक हो चुके है। उदाहरण के लिये मर्यादा पुरुषोत्म राम को देख ले, योगेश्वर कृष्ण को देख ले, व्यास ऋषि जिनको हाथियों ने कुचल दिया, पाणिनी को मगरमक्ष ने खा लिया, कड़ाद जो वैशेषिक दर्शनकार हुये। वह एक एक कड़ के लिये आजिवन परेशान हो कर मर गये। जिसको हम पंतजली कहते है वह पत्ता और जल खा कर मर गये। इसामसिह को क्रास पर लटा दिया गया। सुकरात को जहर पिल दिया गया। गैलेलियों को की आंखों को अंधा करके मार डाला गया। सरमद का सर कलम कर दिया गया। मंसुर को एक एक अंग काट कर मार दिया गया। ऐसा क्यों किया गया क्या यह सब एक इत्फाक है। या इसके पिछे एक योजना के तहत कार्य किया जा रहा है। सिखों के दस गुरुओं को कितना भंयकर मृत्यु दिया गया। महात्मा बुद्ध, महाविर इत्यादि कितने हुए जिनको यह दुनिया ने बुरी तरह यातना दे दे कर मार दिया। महर्शि दयानंद, स्वामि विवेका नंद, रामकृष्ण परमहंस, लियो टालस्टाय, गोर्कि,इवान तुर्गनेव, पुरी दुनिया में ऐसे कितने लोग है। जिनको योजना बद्ध तरिके से मारा गया आज के आधुनिक ओशों को कौन नहीं जानता कितना भयंकर कष्ट दे कर मारा गया। उनके शरीर में थेलियम नाम का खतरनाक विश डाल दिया गया जिससे उनकी पुरी शरीर धिरे धिरे गल गई। यह सब क्यों बेमौत मारे गये इनके सात और बी कितने गुमनाम लोग है जो रोज मर रहे है जिनका ज्ञान ही हम सब को नहीं हो पाता है। इन सब का कसुर केवल एक है कि वह सब ज्ञानी थे और ज्ञान कि बाते करते थे। जो इस नस्वर दुनिया के लिये और इसका जो बनाने वाला प्रोग्रामर है उसके लिये ठीक नहीं है। जिसके कारण ही वह ऐसे लोगोंं को चुन चुन कर मारता है क्योंकि वह नहीं चाहता है ना उसकी प्रकृति ही चाहती है कि कोई उसके सत्य का उजागर करें। इसलिये तो उपनिषद कहते है कि सत्य का मार्ग छुरे के धार पर चलने के समान है। जिसके कारण ही लोग सत्य के मार्ग पर नहीं चल पाते है। लेकिन कुच ऐसे लोग होते है जो सत्य के मार्ग के अनुयाई बन जाते है जिनका एक एक कदम सत्य और ज्ञान से भरपुर होता है वह इसी के लिये जिते और मरते है। जिनका स्वभाव ही बन गया है सत्य के मार्ग पर चलना सत्या ही बोलना सत्य ही करना उनका जीवन साक्षात नरक के समान होता है वह आग के मार्ग पर चलते है वह हमेशा अपनी चिता पर ही बैठ कर विणा बजाते है। आचार: प्रथमो धर्म: अित्येतद् विदुषां वच: तस्माद् रक्षेत् सदाचारं प्राणेभ्योऽपि विशेषत:। अच्छा बर्ताव रखना यह सबसे जादा महात्त्वपूर्ण है ऐसा पंडीतोने कहा इसलिए अपने प्राणोका मोल देके भी अच्छा बर्ताव निरंतर निमग्न रहते है। श्रेष्ठ पुरुश होते है। आर्ता देवान् नमस्यन्ति, तप: कुर्वन्ति रोगिण: । निर्धना: दानम् इच्छन्ति, वृद्धा नारी पतिव्रता ॥

संकट में लोग भगवान की प्रार्थना करते है, रोगी व्यक्ति तप करने की चेष्टा करता है। निर्धन को दान करने की इच्छा होती है तथा वृद्ध स्त्री पतिव्रता होती है । लोग केवल परिस्थिती के कारण अच्छे गुण धारण करने का नाटक करते है । अर्थात यह सब झुठे है वास्तव में यह सब सत्य से दूर होते है इसलिये ऐसा दिखावा करने वालो से यह दुनिया भरी पड़ी है और इसी की हर तरफ से शिक्षा दि जा रही है। जिससे झुठे मानव निरंतर जन्म ले रहे है और सच्चे मानव का संहार निरंतर हो रहा है। इस संसार में सुख पुर्वक जो जीना चाहते है तो असत्य आडम्बर झुठ के मार्ग से ही संभव है। सत्य का मार्ग और ज्ञान का मराग तो संसार का संहार करने

वाला है जो इसका बनाने वाला नहीं चाहता है। भविष्य में ऐसा संभव है कि हम अपना स्वयं का ब्रह्माण्ड बना पाये जहां सब कुछ सत्य और ज्ञान पूर्ण हो जहां असत्य और अज्ञान को ठहरने के लिए कोई स्थान ना हो। जिस प्रकार से फिल्मी अभिनेता और अभिनेत्री हमें दूर से देखने से अच्छे लगते है ऐसे ही यह दुनिया जितनी झुठी, अज्ञान और असत्य को धारण करती है उतनी ही आकर्षण लगती है। जिसके कारण ही सरल हृदय मंद बुद्धि पुरुष, बच्चे और औरते इसके संमोहन के शिकार होते है। जैसा कि श्लोक कहता है। दूरस्था: पर्वता: रम्या: वेश्या: च मुखमण्डने । युध्यस्य तु कथा रम्या त्रीणि रम्याणि दूरत: ॥

पहाड़ दूर से बहुत अच्छे दिखते है । मुख विभुषित करने के बाद वैश्या भी अच्छी दिखती है । युद्ध की कहानिया सुनने को बहौत अच्छी लगती है । ये तिनो चिजे पर्याप्त अंतर रखने से ही अच्छी लगती है ।

सत्यं माता पिता ज्ञानं धर्मो भ्राता दया सखा । शान्ति: पत्नी क्षमा पुत्र: षडेते मम बान्धवा: ॥ सत्य मेरी माता, ज्ञान मेरे पिता, धर्म मेरा बन्धु, दया मेरा सखा, शान्ति मेरी पत्नी तथा क्षमा मेरा पुत्र है । यह सब मेरे रिश्तेदार है । जो व्यक्ती इस मार्ग पर चलता है उसका अपने संसार में कोई नहीं रहता है वह अकेला ही रहता है उसके लिये उसका ज्ञान और सत्य ही सब कुछ है भले हि उसके लिये उसको अपनी शरीर रूपी संसार से संधिवीच्छेद करना पड़े वह सहर्ष स्विकार करता है। न मर्षयन्ति चात्मानं संभावयितुमात्मना । अदर्शयित्वा शूरास्तू कर्म कुर्वन्ति दुष्करम् ॥ शूर जनों को अपने मुख से अपनी प्राशंसा करना सहन नहीं होता ।

वे वाणी के द्वारा प्रादर्शन न करके दुष्कर कर्म ही करते है । चलन्तु गिरय: कामं युगान्तपवनाहता: । कृच्छ्रेरपि न चलत्येव धीराणां निश्चलं मन: ॥ युगान्तकालीन वायु के झोंकों से पर्वत भले ही चलने लगें परन्तु धैर्यवान् पुरूषों के निश्चल)दय किसी भी संकट में नहीं डगमगाते ।

9- संघर्ष ही जीवन है-

जापानियों को ताज़ी मछली खाना बहुत पसंद होता है। ताज़ी मछलियाँ पकड़ने और फटाफट बेचने में वहाँ के मछुआरे डटे रहते हैं। लेकिन एक समस्या थी, जापान के समुद्री तटों पर मछलियाँ बहुत कम मिलती थी। ढेर सारी मछलियाँ पकड़ने के लिए दूर समुद्र में जाना पड़ता था। सो मछुआरों ने बड़ी नावें तैयार की और गहरे समुद्र में जाकर मछलियाँ पकड़ कर लाने लगे। मछुआरे जितना अधिक दूर जाते, वापस आने में भी उतना अधिक समय लगता। कभी कभी तो 2-3 दिन बीत जाते। इससे पकड़ी हुई मछलियाँ ताज़ी नहीं रह जाती और खाने वाले स्वाद से समझ जाते कि मछली ताजी नहीं थी। ऐसे मछुआरों की मछलियाँ कम बिकने लगी। इसका समाधान मछुआरों ने अपनी नावों में फ्रीजर लगाकर किया। वो मछलियाँ पकड़ते और फ्रीजर में रख देते। इससे मछलियाँ खराब नहीं होती और वे लम्बी दूरी तक जा भी सकते थे। लेकिन जापानी भी और आगे, वो ताज़ी और जमी हुई मछली के स्वाद का अंतर पकड़ लेते और जमी हुई मछली का स्वाद भी उन्हें नहीं भाता था।

मछुआरों ने फिर यह समाधान निकाला कि नावों में ही छोटे वाटर टैंक बना दिए जाएँ। वे पकड़ी हुई ढेर ही मछलियाँ इस पानी के टैंक में भर देते। मछलियाँ पहले बहुत संघर्ष करती लेकिन बाद में शांत हो जाती।

चूँकि वाटर टैंक में बहुत जगह नहीं होती थी इसलिए मछलियाँ ज्यादा तैर नहीं पाती थी लेकिन वो मछलियाँ मरती भी नहीं थी। दुर्भाग्य से जापानी इन मछलियों को भी नापसंद करने लगे क्योंकि इन सुस्त, थकी, स्थिर मछलियों का स्वाद ताज़ी मछलियों जैसा था ही नहीं। अंत में मछुआरों ने इस समस्या का सही समाधान खोज ही

निकाला। मछुआरों ने उसी वाटर टैंक में एक छोटी शार्क मछली रखना शुरू कर दिया। शार्क कुछ मछलियाँ तो खा जाती थी, लेकिन फिर भी कई मछलियाँ बच जाती थीं। ये बची हुई मछलियाँ जिन्दा और ताज़ी बनी रहती थीं क्योंकि शार्क से बचने के लिए वो निरंतर संघर्ष करती रहती थीं।

जीवन की समस्याएं भी शार्क मछली जैसे हैं जो हमें बेहतर बनाने, मजबूत करने जीवन में आती हैं। संघर्ष करके ही हम आगे बढ़ते जाते हैं। हर काम शुरू में मुश्किल होता है, लगातार प्रयत्न से एक दिन वो हमारे लिए आसान बन जाता है।

कहा जाता है कि अगर इंसान में संघर्ष और कठिन मेहनत करने की क्षमता हो तो दुनिया में ऐसा कोई मुकाम नहीं है जिसे हासिल ना किया जा सके । कवि रामधारी सिंह दिनकर ने सही ही कहा है कि "मानव जब जोर लगाता है, पत्थर पानी बन जाता है"। ये कथन कानपुर के रहने वाले अभिषेक पे बिल्कुल सही बैठता है । सोना तपकर ही कुंदन बनता है और इतिहास गवाह है कि जिन लोगों ने अपना जीवन अभावों में गुजारा है वही लोग आगे चलकर सफलता को हासिल करते हैं । कोई भी माँ बाप कितने भी गरीब हों पर सबका सपना होता है कि उनका बच्चा खूब पढ़ाई करे । ऐसी ही एक बहुत गरीब परिवार की कहानी है जो दिल को छूते हुए गहरे सन्देश छोड़ती है। कानपुर के रहने वाले अभिषेक कुमार भारती ने 2010 में भारत के सबसे कठिन इंजीनियरिंग परीक्षा IIT -JEE को पास किया जो अपने आप में एक अद्भुत उपलब्धि है । अभिषेक के पिता राजेन्द्र प्रसाद एक जूता सिलने वाले मोची हैं ,ये सुनने में जरूर अजीब लगेगा लेकिन सत्य है और माँ घर में लोगों के फटे कपड़े सिलकर कुछ पैसे इकट्ठे करती हैं । परिवार की रोज की दैनिक आमदनी मुश्किल से 150 रुपये है जिसमें परिवार का खर्चा चलना बहुत ही मुश्किल है । और घर के नाम पर एक छोटा सा कमरा है । कई बार अभिषेक खुद पिता की अनुपस्थिति में जूतों की सिलाई करता था । कभी कुछ पैसे कमाने के लिए नगरपालिका के कर्मचारियों के साथ काम भी करता था । लेकिन पढ़ने की चाह अभिषेक में शुरू से ही थी । वो रात भर जागकर पढाई करता । घर में बिजली कनेक्शन नहीं था तो लालटेन जला कर ही रात को पढाई करनी पढ़ती थी । अच्छी पढाई के लिए ना कोचिंग के पैसे थे और ना ही किताबें खरीदने के फिर भी अभिषेक जी जान से लगा रहता था । वो कभी हार ना मानने वाले लोगों में से था, अपने दोस्तों से पुरानी किताबें लेकर पढाई किया करता था । उसकी लगन के आगे आखिर किस्मत को झुकना ही पड़ा और अभिषेक ने वो उपलब्धि हासिल की जिसका लाखों भारतीय छात्र सपना देखते हैं । आज अभिषेक IIT Kanpur में AEROSPACE Engineering की पढाई कर रहे हैं । तो मित्रों , सफलता कोई एक रात का खेल नहीं है जो पलक झपकते किस्मत बदल जाएगी , आपको कठिन मेहनत करनी होगी खुद को संघर्ष रूपी आग में तपाना होगा, फिर देखिये दुनिया आपके कदमों में झुक जाएगी ।

हर व्यक्ति अपने जीवन में प्रत्येक कार्य में सफलता प्राप्त करना चाहता है। सफलता सिर्फ संयोग नहीं बल्कि यह हमारे दृष्टिकोण का परिणाम है। लेकिन हमेशा स्मरण रखना चाहिए कि जिन लोगों ने मुसीबतों को झेला है वे उन लोगों की तुलना में कही अधिक आत्मविश्वास से भरे हैं जिन्होंने कभी मुसीबतों का सामना ही नहीं ।किया। अंग्रेजी में एक कहा है, "एक शांत समुद्र में नाविक कभी कुशल नहीं बन पाता। एकाग्रता से सम्पन्न होने वाले कर्म में कौशल आ जाता है और कुशलता युक्त कर्म योग बनता है।

कर्म की धुन पर आगे बढ़कर ही सफलता प्राप्त की जा सकती है। मुश्किले सबके रास्ते में आती हैं पर ईश्वर ने हमें उनका मुकाबला करने की शक्ति भी दी है।जीवन में अगर सफलता मिलती है तो असफलता भी मिलती है। लेकिन जीवन में मिलने वाली हर असफलता के बाद हम स्वयं से पूछें कि इस घटना से मैंने क्या सीखा? तभी हम अपने रास्ते की रूकावटों को सफलता की सीढ़ियों में बदल पाएँगे। हममें से प्रत्येक के भीतर कई गुण हैं और जो गुण नहीं हैं उनका भी विकास किया जा सकता है। आवश्यकता है केवल अपने गुणों को पहचानने की। जब हमें अपने गुणों का एहसास होता है तो हमारी शक्ति निश्चित रूप से बढ़ जाती है। इसलिए असफलता एक चुनौती है, इसे स्वीकार करो। क्या कमी रह गई, देखों और सुधार करो। क्योंकि लहरों से

डरकर नौका पार नहीं होती और कोशिश करने वालों की कभी हार नहीं होती। आज हम भी चारों ओर से निराशावादी शोर से घिरे हैं। यह कुछ नहीं कर सकता, इसे कुछ नहीं आता, आदि–आदि शब्दों को सुनकर हम निराश हो रहे हैं। जब हम कार्य की विशालता को देखते है, मार्ग की दुरहता को देखते हैं और स्वयं को अकेला पाते हैं तब हमारी हिम्मत टूट जाती है। लेकिन फिर भी कार्य करने का जुनून हमें कार्य करने को बाध्य करता है। युवाओं को समझना होगा कि जिन्दगी, ईश्वर की अनमोल धरोहर स्वरूप है और उसे यूं कायरों की भांति बर्बाद न करें बल्कि जिंदगी की मुश्किलों से डरकर हारने की अपेक्षा मुश्किलों को हराकर अपनी तकदीर खुद लिखें। क्योंकि "तकदीर के खेल से निराश नहीं होते, जिदंगी में कभी उदास नहीं होते। हाथों की लकीरों पर यकीन न कर, तकदीर तो उनकी भी होती है जिनके हाथ नहीं होते।"

काल करे सो आज कर ,आज करे सो अब , पल में प्रलय होयगी , बहुरि करोगे कब

हाथो की लकीरों पर यकीन मत करना ,तकदीर तो उनकी भी होती है जिनके हाथ नहीं होते . सफलता पाने के लिए जूनून का होना जरूरी है कोई भी काम असंभव नहीं है यदि इच्छा शक्ति हो तो मुश्किल से मुश्किल लक्ष्य हासिल किया जा सकता है .

असफलता एक चुनौती है / स्वीकार करो , जो कमी रह गई है उसमे सुधार करो जब तक ना सफल हो ,

नींद चैन की त्यागो तुम,

संघर्ष छोड़ न भागो तुम

कुछ किए बिना ही . .

जय–जय कार नहीं होती,

हिम्मत करने वालों की हार नहीं होती.

अक्सर युवा सोचता है कि बिना कुछ किए ही उसे वह सबकुछ मिल जाए जो वह चाहता है। इस पर लगातार बहस हो रही है कि भाग्य बड़ा है या कर्म। जीवन में अगर आपको कुछ पाना है तो मेहनत तो करनी ही पड़ेगी । मंजिलें उन्हीं को मिलती है जो उसकी ओर कदम बढ़ाते हैं। जब चार लोग दो को ही सफलता मिलती है । दो लोगों के साथ भाग्य साथ नहीं था। अंत में यही कहा जा सकता है कि भाग्य भी उन लोगों का साथ देता है जो कर्म करते हैं। किसी खुरदरे पत्थर को चिकना बनाने के लिए हमें उसे रोज घिसना पड़ेगा। ऐसा ही जिंदगी को भी समझें हम जिस भी क्षेत्र में हों, जिस स्तर पर हों हम हमें अपना कर्म करते रहना है और उसकी चिंता भी नहीं करनी है । जैसे परीक्षा देने वाले विद्यार्थी को परीक्षा देने के बाद उसके परिणाम का इंतजार रहता हैं । हर हाल में हमें सकारात्मक सोच के साथ जीवन में कुछ उल्लेखनीय करने के लिए प्रेरणा लेनी चा हिए । संघर्ष से भागना नहीं स्थिर होकर उसका सामना करना है । जो व्यक्ति स्वयं को नकारते हैं, वे अपनी असफलता को बुलावा देते हैं। जीवन में यदि किसी कारणवश असफलता मिल भी जाए, तो भी उत्साह और लगन से उसका मुकाबला और संघर्षरत् रहकर निदान सोंचना चाहिए । असफलता के वातावरण की कमी को मानवीय विवेक और मनोबल से बदला जा सकता है। जीत उसी की होती है जो कभी हार नहीं मानता। अधिक बुद्धि या बल ही केवल काम नहीं आता बल्कि मुश्किल हालात में अपनी हिम्मत को बढ़ाकर संघर्ष करने वाले जीवन का संग्राम जीता जाता है । जीवन में अगर सफलता मिलती है तो असफलता भी मिलती है । लेकिन जीवन में मिलने वाली हर असफलता के बाद हम स्वयं से पूछें कि इस घटना से मैंने क्या सीखा ? तभी हम अपने रास्ते की रूकावटों को सफलता की सीढ़ियों में बदल पाएँगे । हममें से प्रत्येक के भीतर कई गुण हैं और जो गुण नहीं हैं उनका भी विकास किया जा सकता है।

जिन्दगी एक राजमार्ग है सम्मल कर चलना कब धोखा दे दे पता नहीं। इस जिन्दगी के राजमार्ग में अपने गनतब्य की ओर बढते जाना और मंजिल की प्राप्ति करना ही जीवन का उदेश्य हो तो जिन्दगी का मतलब जाना जा सकता है / मैंने अपने को उसी रूप में ढला जिसको मई मनचाहा प्राप्त कर सकता था और उस प्राप्ति के लिए कितने पापड़ बेलने पड़े उसका अनुभव मुझे है और अपनी निष्ठा के कारण ही उसकी प्राप्ति हुयी ।

मनुष्य अपने अनुभव से सीखता है

बह चली उस काल कुछ ऐसी हवा, वह समुन्दर ओर आयी अनमनी।

एक सुन्दर सीप का मुँह था खुला, वह उसी में जा पडी मोती बनी ।। दिन दुनिया से बेखबर इंसान वही करता है जो केवल उसे है पसंद. है जिसके कारण उसे 'मनमानी' करने वाला भी कहा जाता है जो काम वह कर रहा है किसी दुसरे को नापसंद है लेकिन उसे कोई परवाह कोई परवाह इसीलिए नहीं है क्योंकि वह बेहद सख्त लोगों की नज़र में. सच्चाई को प्रकट करने के लिए अपनी तीक्ष्ण वाणी के प्रहार से छलनी कर देता है किसी का कलेजा वह जला डालता है चाहे वह हो कितना भी घनिष्ठ हो या अपना परिवार ही क्यों न हो / किसी और के सुख-दुःख में शामिल होने का नहीं करता दिखावा जिसके कारण माना जाता है समाज का एक निर्दयी व्यक्ति. अपने जीवन या मरण का कभी नहीं रखता ख्याल और रहता सदैव मस्त अपनी रामधुन में बनाकर चाहर दीवारी के अन्दर अपने आदर्शों और सिद्धांतों को एक कमरे में बसाता है अपनी गृहस्थी और घिरा रहता है उसके पास. नहीं होतीं मीठी बातें रिझाने वाली न ही खर्चने को मोटी रकम.उसके पास होती हैं बातें, बड़े-बड़े आदर्शों, सिद्धांतों की जिसे पचा सकता है विचारों के सागर में गोते लगाने वाला भावनाओं की दरिया में कूदना नहीं चाहता. लेकिन जाने-अनजाने कभी हो जाता है उससे भी यह अपराध क्योंकि वह है प्रक्रति प्रेमी और मनुष्य भी है इसी का एक अंश और कूद पड़ता है दुनियादारी की खाई में। हम अक्सर अपने बड़े बुजुर्गों से ये सुनते आयें है की "जो होता है अच्छे के लिए ही होता है " और हम में से कई लोग इसको मानते भी हैं और कई नहीं भी. मगर जो लोग मानते हैं वो कई मायनों में ना मानने वालों से मानसिक रूप से संतुष्ट और खुश होते हैं. ऐसा नहीं है की परेशानियाँ उन पर नहीं आती हैं या उन्हें तकलीफ नहीं होती है मगर उनका विश्वास इस वाक्य पे होता है और विश्वास बड़ी चीज़ है.

यह भी एक सचाई है।

इस जिंदगी का दूसरा कोई खेप नहीं होता

क्या ले जाओगे कफन में जेब नहीं होता

बडे गुमान किए थे जिन लोंगों ने

सुबह बयां कर गई ऐसा कुछ नहीं होता

सूनी सडकों पर बेखौफ मत चल

ऐसा नहीं कि यहां कोई हादसा नहीं होता

अजीब बेबसी है उस बस्ती की

जहां कोई शख्स जवां नहीं होता

बस आग के बारे में क्या कहिये

सुलगते रहता है पर धुआं नहीं होता

मनुष्य क्या है एक मिट्टि का पुतला

संसार एक अथाह समन्दर दर्द का

प्यास जीने की इच्छा पाने कि तमन्ना और खोने का गम

रोगों का घर निर्धनता और धनता में संधर्ष

विचारों में असमानता नासू और असाध्य विमारी

भुख प्यास गिड़गिड़ाहट और कामुकता
पल पल सड़ती यह शरीर रूपी लाश और जिसमें से
उठती दुर्गन्ध की सुवास वो आवाज
पागल ना समझ दिवाने आवारा।

10 - मेरी दिल्ली यात्रा

इस तरह से मैने उस लड़के को बहुत समझाया और कहा कि मेरे भाई तुम परेशान मत हो जीवन से संघर्ष करों , एक दिन तुम्हे अवश्य सफलता मिलेगी यहां। तुम्हारे लिये शिवाय कष्टों के कुछ नहीं है तुम अपने घर चले जाओ। वह दिल्ली का लड़का मेरे साथ कई दिनो तक रहा हमारी उससे काफी बात चित हुई । और हमने एक साथ कई दिनों तक मुम्बई में गुजारा, और काफी सैर सपाटा किया समन्दर कि सैर कई तस्विरे भी साथ में निकलवाया। और जहां मै रहता था वहीं पर उसको भी अपने साथ रखता था। कुछ ही दिनों में उसको सब ज्ञात हो गया कि उसने घर से भाग कर बहुत बड़ी गलती कि है। और उसने कहा कि वह अपने घर दिल्ली जाना चाहता है। मैने कहा ठिक है उसने कहा कि तुम भी मेरे सात चलो, मै अपने बड़े भाई से कह कर तुम्हारे लिये किसी काम को दिलवा दुंगा । इस तरह से मैं मुम्बई स दिल्ली आगया। और उस लड़के घर पर रहने लगा वह घर तो बहुत छोटा था लेकिन वहां रहने वालों का हृदय बहुत बड़ा था।

उसके भाई ने मुझे दिल्लि में एक नौकरि भी दिला दी जिससे मेरा जीवन कापी अच्छी तरह से चलने लगा। यद्यपी वहां पैसा बहुत कम मिलता था जिसके कारण मै कुछ अपने भविष्य के लिये बचा नहीं सका। वह कार्य ऐसा ही था जैसे रोज कुआ खोदों और रौज पानी पियों। जिस दिन भी कुआं खोदना बन्द उस दिन पानी मिलना भी बन्द अर्थात उसी दिन से मुझे प्यासा ऐसे ही रहना पड़ता था। इसी कार्य को करते हुए मुझे करिब दो साल हो गए किसी कारण बस मुझे यह नौकरी करनी छोड़नी पड़ी। वह कारण था कि मुझे साथ कार्य करने वाली एक लड़की से प्रेम हो गया था। वह प्रेम क्या एक अद्भुत आकर्षण था जिसके कारण मैं किसी भी कार्य को करने समर्थ नहीं हो सका मेरा सारा ध्यान उस लड़की पर ही रहता था। जिसका नाम नेहा था वह लम्बे उचे कद कि एक शानदार लड़की थी। जो काफी समझदार और और पढ़ी लिखी थी। और वह एक अच्छे उचें पद पर कार्य तर थी जबकी मेरा कार्य उसके कार्य के समान नहीं था। मेरा कार्य बाहर का था जब सुबह शाम को वहां आफिस मे जाता तों उसको ही देखता रहता लेकिन कभी मै उससे कह नहीं सका। एक बार जब उससे कहने का प्रयास किया तो मुझे ज्ञात हुआ कि वह किसी और की पत्नि है। फिर भी मैं उसे प्रेम मे अंधा था मै उसका पिछा करने लगा। और मै उसको किसी भी सर्त पर पाना चाहता था। यद्यपी वह हमारी तरह से पागल नहीं थी प्रेम में उसने बुद्धि से काम लिया जबकि मैने हमेंशा दिल से काम लिया जिसके कारण मै हारता रहा और आज भी मैं अपने आपको सबसे बड़ा हारा हुआ खिलाड़ी मानता हू। मेरे साथ ऐसा हमेंशा से होता रहा है कि मै किसी मुसिबत में बहुत जल्दी गिरता जाता हूं। जबकि मुझे मुसिबतों से निकलने में काफी समय लग जाता है। जितने समय में मै दोबारा स्वयं को खड़ा करता हूं अपनी परिस्थितीयों सम्हालने में तब तक बहुत देर हो जाती है। ऐसा ही यहां भी हुआ मैं उससे मिलने में असमर्थ रहा सालों केवल देखने में ही बिता दिया। बाद में मुझे एह शास हुआ कि मै उसके योग्य नहीं हूं। और मैं उससे फिर नहीं मिलना चाहता था। इसलिये उस स्थान को छोड़ने का मतलब था नौकरी से हाथ धोना इस लिये मैने उस नौकरी से हाथ धो लिया। और इसके साथ एक बार मै फिर आवारा बन कर यु ही सड़क पर घुमने लगा। बिना किसी साधन के शिवाय हमारे पास सादन के रूप में मेरी शरीर थी। यद्यपी मै शरीरिक और मानसिक रुप से अस्वस्थ हो चुका था। फिर भी मैने नौकरी का तलाश करना शुरु कर दिया। जिसमें से एक साक्षात्कार के समय मेरी मुलाकात उन लोगों से हुई जिन्होंने बाद में मेरी हत्या करने का प्रयास किया। यहां पर भी मुझे दूसरी एक लड़की से अंधा प्रेम हुआ जो बहुत अमिर थी वह केवल धन कि भाषा हि समझता थी मैने प्रयाश किया अपने बारे में समझाने का और सांसारिक सत्यता को समझाने का तो उसके परिवार वाले मुझसे नाराज हो गये। इस तरह से मैने उन सभी लोगों को अपना शत्रु बना लिया। जिन्होने ही आगे चल कर मेरी दिल्ली में हत्यार करने का प्रयास किया। जैसा कि कहा गया है कि जिसकी आयु होती है वह समुद्र में से भि निकल आता है और पर्वतों पर भी जीन्दा रह लेता है। अर्थात मृत्यु के मुख में भी आदमी बचा रहता है। ऐसा हि मेरे साथ भी हुआ। मै मृत्यु के मुख घुस गया और स्वयं को उससे बचाने का संघर्ष करने लगा। मै जहां भी गया वह मेरे साथ बनी रही। अभी भी मै उस मृत्यु से बचने के लिये संघर्ष कर रहा हूं मेरे लिये यह निश्चित नहीं है कि मै इस मृत्यु को परास्थ

कर पाउंगा। फिर भी मैं अपना धर्म समझता हूं जब तक शांस है तब तक आस है और तभी तक संघर्ष भी होते रहना निश्चित है।

जिनका परिचय मैंने दिल्ली वालें के नाम से किया है वास्तव में यह सब बहुत खतरनाक लोग है इनका संबंध कुछ ऐसे लोगों से है जो दुनिया पर गुप्त रूप से अधिकार करते है। यह सब काले अंग्रेज है और सच्चे भारतियों से बहुत अधिक शत्रुता रखते है। यह सब भारतिय प्राचिन परम्परा और भारितया ज्ञान, संस्कृत, सभ्यता, और परम्परा के सच्चे द्रोही है। यह सब मुझे दंडित करने का केवल एक कारण बताते है कि मै इनकी इच्छा के विपरीत इनसे संबंध बनाना चहता था। जिस लिये मै इनसे बार बार संपर्क करता रहा और हर बार इन सबने हमको ठुकराया और मेरा बहिस्कार किया। कभी भी मुझको स्विकार नहीं किया। मुझे इन सब लोगों ने इतना अधिक डराया धमकाया अपने आतंक से जिससे मेरा अंदर तक सब कुछ हिल गया। जिससे मुझे उभरने में कई साल लग गए। फिर बी मै पूर्ण रूप से उभर नहीं पाया।

जब दिल्ली में मेरे साथ खतरनाक घटना मेरी हत्या की घटी उसके बाद मै कुछ सालों से दिल्ली दिल्ली से दूर हो गया। एक प्रकार से मै मुर्छित अवस्था में था। मेरा मानसिक संतुलन पहले से मेरे पिता ने खराब कर दिया था। और इन दिल्ली वालों नें उसको पुरी तरह से बेकार कर दिया। तब मै यु हीं भटकता रहा कभी इस शहर तो कभी उस शहर जैसे बिना पेदी का लोटा मतलब कही भी स्थिर नहीं हो सका। इस बिच मेरा जाना मध्य प्रदेश के एक आश्रम में हुआ क्योकि मै जीवन से बहुत दुःखी और हारा हुआ था। मै धर्म की सरण में जाना चाहता था। इसले मैने सन्यास लेना चाहा। इस तरह से मै मध्य प्रदेस के होसंगा जिले के उस आश्रम में रहा जहां पर और वच्चे ब्रह्मचारी के रूप में रह कर अध्यन करते थे। मै भी वहा रह कर मुक्त रूप से अध्यन करने लगा। और एकाक साल तक वहां रहा उसके बाद मेरा जाना एक बार फिर हरियाणा के एक उससे बड़े गुरकुलिय महाविद्याल में हुआ। मै बच्चो के साथ यहा परिक्षा के लिये गया था। होसंगाबाद के बच्चे परिक्षा लिये हरियाणा गुरुकुल में जाकर देते थे। जहां पर मै बहुत समय तक अपने मुस्किल के दिनों में रहा। होसंगाबाद से मै रोजड़ गुजरात में गया और वहां पर भी कुछ समय तक रहा। वहां पर भी एक विद्यालय है जहा से मुझे राजस्थान लेजाया गया। वहां पर भी संस्कृत गुरुकुल है जहां पर मैने कुछ समय तक और संस्कृत साहित्य वेद, वेदांग, उपनिषद दर्शन आदि की जानकारी सुक्ष्म रूप ली। वहां पर भी मै ज्यादा समय नहीं रह सका इस तरह से। वहीं राजस्थान के ही एक दुसरे गुरकुल में जो अजमेर में स्थित है वहां पर कुछ समय रहा जहां पर मुझे एक बार बहुत करिब से स्वामी रामदेव जी से मिलने का अवसर मिला, और हमारी पहचान राम देव जी हुई। उसके बाद मै वहां के कुछ लोगो के साथ जिनका अपना एक छोटा गुरुकुल कलकत्ता के अन्दर है वहां पर गया और कुछ समय तक रहा और बहुत लोगों से पहचान हुई। इसके पहले भी मैं कलकत्ता जा चुका था। वहां पर मेरी मुलाकात एक ऐसे लोग से होती है जिनका अपना एक गुरुकुल उत्तर प्रदेश के अलिगढ़ के पास है वहां पर मुझे आचार्य बना कर रखा गया। जिसपर मै कुछ ही समय तक रहा बाद में वहां पर से मुझे आगे बढ़ने के लिये कहा गया।

जहां से मैं निकल कर हिमालय कि यात्रा पर चला गया और चारों धाम कि यात्रा पैदल ही साधु संतों के साथ कि जो सभी मुसिबत के मारे प्रायः सभी नसे के शिकार लोग ही थे। जिनके साथ मैं कुछ समय तक रहा और उनसब के साथ नशा वगैरह करते हुए चारों धाम कि यात्रा कर डाली पर मुझे चैन नहीं मिला। जितना ही मै शान्ति के पिछे पड़ता था मुझे उतना ही अशान्ती का अनुभव होता रहा। मुझे इसकी अनुभव हो गया कि जिसका हम विश्वास करते है उससे हमे बहुत बड़ा दोका मिलता है। जैसा कि महाभार में व्यास कहते है।

न विश्वसेदविश्वस्ते विश्वस्ते नातिविस्वसेत्। विश्वासाद् भयमुत्पन्नमपि मूलानि कृन्तति॥ महाभारत

जो विश्वास्पात्र न हो, उस पर कभी विश्वास न करें और जो विश्वास्पात्र हो उस पर भी अधिक विश्वास न करें क्योंकि विश्वास से उत्पन्न हुआ भय मनुष्य का मूलोच्छेद कर देता है। ज्ञान निर्जीव नहीं है, ज्ञान वह है जो धणकता है जो शांसें लेता है। आज के समय में जिसे हम ज्ञान कहते है वह सब निर्जीव है उसमें जीवन नहीं है वह मुर्दा है और इस प्रकार के ज्ञान से मुर्दा पना का ही विस्तार होर रहा है। हमारे समाज में जिसके कारण जीवन का वास्तिविक स्वरूप ही खत्म हो चुका है, जीवन का संबंध जण वस्तुओं से हो चुका है और जीवन को भी जड़ समझा जारहा है। आज के आधुनिक जीवन में हम सब किसी विषय की जानकारी को ही ज्ञान समझते है। ज्ञान का मतलब पराक्रम, संग्राम, क्रान्ती, आन्दोलन करने वाला मुख्य श्रेष्ठ चेतन तत्व जो इस ब्रह्माण्ड का मुख्य श्रोत है।

जिस प्रकार से सूर्य का मुख्य श्रोत उर्जा है, पृथ्वी का मुख्य श्रोत सूर्य है क्योकि पृथ्वी सूर्य ही निकली है। पृथ्वी से चन्द्रमा निकला है। सूर्य का श्रोत क्या है कहां से यह विशालतं उर्जा निकल रहीं है जिससे यह सब अनन्त सूर्य उत्पन्न हो रहे

है। इसका मुख्य श्रोत ज्ञान है। अर्थात जीवन की मुख्य इकाई है। जीवन स्वयं ज्ञान है, और हमारे जीवन का मुख्य उद्देश्य जो हमारे श्रेष्ठ महा पुरुषों ने हमें बताया है, कि हम इस जीवन का अर्थात स्वयं का साक्षात्कार करें ज्ञान को उपलब्ध करें। जीवन का लक्ष्य कुछ भी नहीं है यह जीवन ही अपने आप में एक बहुत बड़ा लक्ष्य है। इसका लक्ष्य कोई विषय नहीं है। यद्यपी जब हम अपने भारितीय वैदिक दर्शनों का अध्यन करते है तो उसमें हमें यही शिक्षा दी जाती है, जिस वस्तु से मुक्त होना चाहते है तो पहले उस विषय का साक्षात्कार करों जब उस विषय का साक्षात्कार पूर्ण रूप से हो जाता है। तो हम उस विषय से मुक्त हो जाते है। यहां साक्षात्कार विषय का करने का हो रहा है। और विषय एक वस्तु है तो सबसे पहले हमारे दर्शनकार अपनी शरीर को एक विषय की तरह मानते है। और स्वयं को शरीर से अलग मानते है। यह सत्य है की वह इस शरीर में ही रहते है ।लेकिन वह स्वयं को शरीर नहीं समझते है शरीर और स्वयं में भेद है। जैसे विद्युत एक अलग वस्तु है और विद्युत को धारण करने वाला उसका परिपथ उससे अलग है। यहां हमने विद्युत का उदाहरण दिया जो चेतन नहीं है। क्योंकि उसके पास ना ही मन है। और ना ही बुद्धि ही है ना हा चित्त है ना ही अहंकार यह सब एक प्रकार के सुक्ष्म यंत्र है जो साधक के साधन है यह साधक ही यहां पर ज्ञान रूप है। वह साधक स्वयं विद्युत के समान है। वह जब अपने मन से जुणता है। तो मन्त्र विचार कि उत्पत्ती होती है। और यह विचार दो प्रकार के होते है एक श्रेष्ठ और दूसरे निकृष्ट होतो इन विचारों का अनुसरण करने वाला हमारा चित्त जो चिन्तन करता है, और इन विचारों से स्वयं का तदात्म स्थापित करके स्वयं अच्छा और बुरा समझता है। जिससे स्वयं का भान होता है कि मैं सुन्दर हूं या कुरूप हूं, गरिब हूं, अमिर हूं स्त्री हू पुरुष हूं हिन्दु हूं, मुस्लिम हूं सिख हूं या इसाई हूं। यह सब मिल कर ही अंहकार का जन्म देते है। यहं अहंकार, चित्त, या मन ज्ञान नहीं है। यह सुक्ष्म यंत्र रूप से है यह कार्य करते किस प्रकार का कार्य इन्हे इसका कोई अनुभव नहीं होता है। इन सब का अनुभव करने वाला चौथा रूप वुद्धी है। जो इनके द्वारा किये हुये अच्छे बुरे कर्मों के परीणाम जब मिलता है तो उसको अनुभव करती है और कहती की यह कार्य तुमने गलत तरीके से किया जिसका परीणाम ठीक नहीं आया जिसकी तुमने आशा की थी उसके विपरीत परीणाम आया। उदाहरण के लिये एक आदमी ने बहुत सारी किताबी जानकारी प्राप्त की किस प्रकार से समन्दर में तैरते है। उसने बहुत सारे लोगों के अनुभवो का अध्यन किया और उसे अपना बना लिया। जब वह समन्दर में गोते लगा कर उसकी गहराई में उतरता है, तो उसे वास्तविक अनुभव होता है कि कितना जोखिम है उसके जीवन पर खतरा आ जाता है वह मृत्यु को अपने चारों तरफ देखता है उसका सारा अनुभव किताबी जानकारी होती है। जिसे वह भुल से ज्ञान समझ बैठा था। वास्तवीक ज्ञान का उदय तभी होता है जब जीवन पर बहुत खतरनाक संकट के बादल मडराने लगते है। उसी बिच अचानक ऐसा होता है कि हमारे अन्दर से कोई खड़ा हो जाता है। जो अपनी वुद्धी का सही उपयोग करता है मन को आदेश देता है मन इन्द्रियों को आदेश देता है और इन्द्रीयां शरीर को संचालित करती है जो शरीर कभी पैरों पर चलता था वह पानी में मछली की तरह तैरने लगता है। और स्वयं को मृत्यु के खतरे से बाहर निकाल लेता है। किताबों में इस ज्ञान के बारें में कभी नहीं पढ़ा था वुद्धी ने जिसका उसने अभी सागर की गहराई में अनुभव किया। यह वुद्धी मन का ही परिस्कृत रूप है, यह वुद्धी भी तीन प्ररकार की बताई गई प्रथम वह जो साधरण जनों के पास होती है दूसरी वह जो किसी विषय के विशेषज्ञ के पास होती है तीसरी बुद्धी सिर्फ उनके पास होती है जो परम तत्व ज्ञान अर्थात स्वयं को जानते है। स्वयं को जानने के लिये ही वेद, उपनिषद, दर्शन आदी को रचा गया। इसका मतलब यह नहीं है की यही ज्ञान है जैसा की लोग समझते और समझाये जाते है। यह अवश्य है कि यह उस शिखर की बातें करते है जिस प्रकार से कोई लेखक जिसने अपने जीवन में कभी हिमालय के शीखर की यात्रा की है, और उसको उसने अपने स्मरण को बनाये रखने के लिये लेख बद्ध करके किताब रूप दे दिया है। वास्तविक सत्य को जो जानना चाहते है उन्हें तो हिमालय की यात्रा करनी होगी। और उस रास्ते में आने वाले सभी जोखिमों का हौशला और साहस, हिम्मत के साथ सामना करने होगा। यह अवश्य है की वह किताब यह सिद्ध करती है। जिस प्रकार से मिल के पत्थर हमें हमारें मंजील के बारें बता कर हमारें विश्वाश को दृढ़ करते है। कि हमारी मंजील है, जिसकी हमें यात्रा करनी है, जिसके लिये हमें सतत प्रयाश और दुःखों सुखों को जो भी रास्तें में मिले उनको सह कर अपनी सहनशिलता धैर्य का परीचय दे कर मंजील को उपलब्ध करना होगा। यह मात्र एक आमंत्रण है। इसी प्रकार से ज्ञान को उपलब्ध करने के केवल किताबे या हमारे या किसी और के अनुभव को जान लेने से ज्ञान नहीं होता है। यद्यपी इन सब साधनो सें हमारा पूर्णतः सर्वनाश होता है। हमें ज्ञान तभी होता है, जब प्रयोग हम करते है।

सत्रे ह जाताविषिता नमोभिः कुंभे रेतः सिषिचतुः समानम्। ततो ह मान उदियाय मध्यात् ततो ज्ञातमृषिमाहुर्वसिष्ठम्॥"

यंस्माध्वो अपातक्षन यजुर्यस्मादपाक्षन समानि यस्य लोकामान्यथर्वागिसों मुखम। स्कम्भं तं भूहि कतमः स्विदेव सः ॥

अर्थातः- उस स्कम्भ जग,दाधार विराट परमेश्वर की महिमा को कौन जान सकता है। इससे ऋग्वेद का विस्तार हुआ, जिससे यजुर्वेद उत्पन्न हुआ, सामवेद जिसके लोम के समान है। और अथर्ववेद जिसका मुख है यहाँ अथर्ववेद को मुख कह इसकी सर्वोच्चता का प्रतिपादन किया गया है। इसी कारण यज्ञ के चार प्रधान ऋत्वियो के नेता ब्रह्मा के लिये अथर्ववेदित होने की अनिवार्यता रखी गयी है। अथर्ववेद काण्ड १° सूक्त ७ मंत्र १४ स्वतः यह प्रमाणित करता है कि अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा ये चार ऋषि सर्व प्रथम सृष्टि मे उत्पन्न हुये। इन्ही के हृदयो मे क्रमशः ऋग, यजु, साम तथा अथर्ववेद का प्रकाश हुआ।

यह कैसे हुआ इसके लिये एक मंत्र ऋग्वेद का कहता है, कि इन सब की क्लोंनिग हुई अर्थात इनको विशेष रूप से लैब में तैयार किया गया। वह प्रयोगशाला मंगल ग्रह पर बनाई गई। क्योंकि यहां आने से पहले मानव जाती मंगल पर रहती थी। इसके भी प्रमाण वेदों में मिलते है। इन प्रयोगशालाओं में विशेष प्रकार मित्रा और वरुणा नामक दिव्य उर्जावों का उपयोग करके मानव शरीर को युवा उत्पन्न किया गया। यह अमैथुन श्रृष्टी के नाम से जानते है। इनके द्वार ही बाद में मैथुनी श्रृष्टी का आरंभ किया गया। महर्षि दयानन्द ने भी ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका मे वेदोत्पति विषय पर लिखते हुये इसी की पुष्टि की है।

अग्निवायुरव्यंगिरोमनुष्य देहधारि जीवद्वारेण परमेश्वरेण श्रुतिर्वेदः प्रकाशीकृत इति बोध्यम"

यह निश्चय है कि परमेश्वर ने अग्नि वायु आदित्य तथा अंगिरा इन देहधारी जीवो के द्वारा वेद का अर्थ प्रकाश किया। इन चारो ने ही ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि पुरुष को वेद ज्ञान दिया इसी कारण ये ब्रह्मर्षि कहलाये। अंगिरा का अर्थ यही रूढ़ हुआ कि देवां ओर ऋषियो को वेद पढाने वाला आचार्य। ब्रह्मार्षि अंगिरा तथा इनके वंशज अंगिरस (अंगों का रस विर्य है) ऋषियो में सप्तऋषि के नामों से जिनको जानते है। सूर्य की सात किरणों को भी सप्तऋषि कहते है। इसी प्रकार यह आत्मा रूपी सूर्य है जिससे यह सात प्रकार की किरणे निकलती हे। आत्मा को अन्न भी कहते है इस अन्न से से ही पहले रस बनाते है फिर रस से खुन बनता है खुन से मांस बनात है मासं से मेद बनता है मेद से मज्जा बनता है मज्जा से हड्डी बनती है और हड्डी से विर्य बनता है। जिससे मानव शरीर का निर्माण होता है।

11 - मेरा परमेश्वर साक्षात्कार

ऋग्वेद का कथन है कि मित्र तथा वरुण नामक वेदताओं का अमोघ तेज एक दिव्य यज्ञिय कलश में पुंजीभूत हुआ और उसी कलश के मध्य भाग से दिव्य तेज:सम्पन्न महर्षि अग्नी, वायु, अंगिरा, और अदित्य आदि ऋषियों का सर्वप्रथमे उद्भव हुआ। यह सब शरीर विज्ञान है। इसके द्वारा ही शरीर का निर्वाण हुआ, कही पर भी यह नहीं कहा है। कि अत्मा का निर्वाण या परमात्मा का निर्वाण कैसे और कहां हुआ? क्योकि आत्मा और परमात्मा ही निर्वाण करते है इस शरीर का, अब हम शरीर का साक्षात्कार करें, क्योंकि मृत्यु इसके अतिरिक्त कुछ नहीं है यह शरीर ही मृत्यु है। हम सब साक्षात मृत्यु पर सवार है फिर भी हमें आजीवन खयाल नहीं आता है इस मृत्यु का, हर समय हम यही सोचते है की मृत्यु अभी नहीं है जीवन अभी है और इस जीवन का आनन्द ले ले, मृत्यु तो कभी भविष्य में आने वाली एक काल्पनिक घटना है। प्राचिन समय में हमारे पास ऐसा विज्ञान था जिससे हम इस शरीर को मरने से पहले इसको नया कर देते थे, क्योकि यह शरीर अरबो खरबों कोशीकाओं से निर्मित है जो हर समय अपना रूप आकार बदल रही है। कोशीकाओं के परीवर्तन मात्र से शरीर बदलता है। यह जब मां के गर्भ में रहता है तो बहुत सूक्ष्म रहता है। यह दो तत्वों से मिल कर बनता है जिसे हम सब आज के वैज्ञानिक भाषा में अंडाणु और शुक्राणु के नाम से जानते है। इन दोनों का निसेचन मां के गर्भ में होता है।(निसेचन भी दो प्रकार के होते है एक बाहर होता है एक मां के गर्भ में होता है। जिसके लिये किसी मां के गर्भ की आवश्यक्ता नहीं होती है। जैसा कि क्लोनिगं के समय सर्व प्रथम श्रृष्टी के प्रारम्भ में हुआ था।) जिससे युग्मनज कहते है यह दोनों का योग होता है जिससे एक भ्रुड़ का रूप बनता है। जो हमारी शरीर का प्रथम चरण है। यह भ्रुण बनने से पहले जिसे हम सब अंडाणु और शुक्राणु कहते है। यह एक स्त्री और पुरुष शरीर के लिंग से निकलने वाली उनका विर्य या तेज कहते है। इसे हमारे प्राचिन वैदिक भाषा में मित्र और वरुण कहते है। यह दो प्रकार की विद्युत उर्जा है। जो सूर्य की मुख्यतः दो किरणों का नाम है। जिस प्राकर से जो सूर्य से किरण निकलती है वह खतरनाक और ज्वलन शिल होती है। लेकिन यही किरण जब चन्द्रमा पर पड़ती है और वहां से हमारी पृथ्वी पर आती है। वह ठण्डी, शान्त, निर्मल, कोमल और शुष्क होती है। जिसे आधुनिक भाषा में गीली और सुखी विद्युत के रूप में जानते है। अर्थात एसी. और डीसी. है। जिसको दो वंशो के नाम पर भी जानते है। सूर्य और

चन्द्र वंश यह स्त्री और पुरुष शरीर के रूपक है यह दो प्रकार की उर्जाये है जो एक दूसरे के पुरक है। जो एक ही सूर्य रुप आत्मा से निकली है। यह आत्मा इनसे अलग है एक तीसरा अदृश्य तत्व है जो देनों में एक सामन गती करती है। यह दो प्रकार की उर्जा शक्तीयां है जो शरीर निर्माण के लिये परम आवश्यक तत्व मानी जाती है।

हमारे प्राचिन काल के ऋषि आदी जो बहुत श्रेष्ठ वैज्ञानिक थे जिन्होंने शरीर की उन कोशिकाओं का अध्यन करके यह जान लिया था की वह कौन सी कोशिका है जो मानव शरीर में बृद्धावस्था को लाती है। उस कोशिका को निकला कर उनके स्थान पर नई कोशिका को प्रत्यारोपित कर देते थे। जिससे आदमी जल्दी वृद्ध ही नहीं होता था जिसके कारण वह कई सौ सालो तक जिन्दा रहता था। यजुर्वेद में ऐसे कई मंत्र आते है जो यह बताते है की मनुष्य कम से कम चार सौ साल तक तो अवश्य जिन्दा रहे। यह साधरण लोगो की उम्र है जो विशेष लोग है वह तो हजारों और लाखों साल तक जिने में सक्षम थे। जिसमें अधिकतर वैज्ञानिक किस्म के ऋषि महर्षी हुआ करते थे या वह राजा महाराजा जिनके आश्रय में यह संसार और साधरण जन रहते थे। हमारें पुराने साहित्य में यह बात आती है कि किस प्रकार से ऋषि महर्षी अपने योग बल से पर्वतों और दूसरें जण पदार्थों को आज्ञा देते थे और वह जड़ जैसे पर्वत आदि उनकी आज्ञा को सहर्ष स्विकार कर लेते थे। ऐसे ही एक ऋषि थे, पुलस्त्य ऋषि के पुत्र हुए विश्रवा, कालान्तर में जिनके वंश में कुबेर एवं रावण आदि ने जन्म लिया तथा राक्षस जाति को आगे बढ़ाया। पुलस्त्य ऋषि का विवाह कर्दम ऋषि की नौ कन्याओं में से एक से हुआ जिनका नाम हविर्भू था। यह कर्दप ऋषि भारत में नहीं रहते थें यह आज के आधुनिक देश जिसको आस्ट्रेलिया के नाम से जानते है वहां के रहने वाले थे। पुलस्त ऋषि वहां पर धर्म प्रचार करने गये थे जहां पर उनकी मुलाकात कर्दप ऋषि की कन्या हविर्भी से हुआ जिससे उन्होने शादी की जिनसे दो ऋषि पुत्र हुए- महर्षि अगस्त्य एवं विश्रवा। विश्रवा की दो पत्नियाँ थीं - एक थी राक्षस सुमाली एवं राक्षसी ताड़का की पुत्री कैकसी, जिससे रावण, कुम्भकर्ण तथा विभीषण उत्पन्न हुए, तथा दूसरी थी इलाविडा- जिसके कुबेर उत्पन्न हुए। इलाविडा चक्रवर्ती सम्राट तृणबिन्दु की अलामबुशा नामक अप्सरा से उत्पन्न पुत्री थी। ये वैवस्वत मनु श्राद्धदेव के वंशावली की कड़ी थे।

यह मनु ही सर्वप्रथ इस पृथ्वी पर सप्त ऋषयों के साथ अवतरित हुए, अर्थात मंगल ग्रह से अपने स्पैसक्राफ्ट में चल कर यहां पृथ्वी के हिमालय के शिखर पर उतरे। और यहां पर अपनी मनव कलोनीयों को बसाया। जिसमें सबसे पहले उन्होने अपनी प्रयोग शाला बनाई और क्लोन की बिधी से युवा मानव के साथ सभी जीवों को तैयार किया और इसके साथ ही यहा पृथ्वी पर मनुष्य युग का प्रारंभ किया। ईसके पहले यहां पृथ्वी पर डायना सुर आदि विसाल जीव। रहते थे जब मानव ने यहां रहना प्रारंभ किया तो उसने सभी बड़े और खतरनाक जीवों को यहां पृथ्वी पर से समाप्त कर दिया। जैसा कि आज के वैज्ञानिक प्रयाश कर रहें है। मंगल आदि ग्रहों पर जा कर वहां अपनी कालोनि बसाने की योजना पर काम कर रहें है। अगले कुछ एक सालों में मानव मंगल ग्रह पर जा कर रहने लगेगा। क्योंकि यह पृथ्वी ज्यादा समय तक मनव के रहने के योग्य नहीं रहगी इसका अनुमान वैज्ञानिको को हो चुका है। एक प्रस्न और उठता है कि मानव से पहले यहां पृथ्वी पर दूसरे खतरना जीव कहां से आयें। इसका उत्तर यह है कि इन विशाल जीवों को मनव से पहले यहां पर कृतिम रूप से तैयार करके दुसरे ग्र से प्रत्यारोपित किया गया गया था कि वह इस पृथ्वी को मानव के रहने के योग्य बनाये। यहां वायु मंडल को शुद्ध करने के लिये।

जो भी महापुरुष आज तक हमारे इस पृथ्वी पर हुए है, सबसे पहली बात वह स्वयं से बहुत प्रेम करते थे और इस प्रेम को इस जगत में बरकरार रखने के लिये ही, अपने सारे जीवन को प्रेम के विज को बोने के प्रयाश में ही, आजीवन उन्होने यहां जीवन प्रेम को बनाये रखने के लिये वह सब कुछ किया जिससे कि इस पृथ्वी का जीवन में प्रेम निरंतर बना रहे। लेकिन ऐसा नहीं कि उन्हे यह नहीं पता है कि यहा संसार में रहना कितना अधिक जोखिम भरा है। जिससे बचने के लिये वह बहुत अधिक जोर वुद्धि के विकास पर देते है। हमारी बुद्धि के विकास के लिये ही उन्होने सर्व प्रथम वेदों को रचा जिसको वह परमेश्वर कि वाणी मानते है जो स्वयं परमेश्वर द्वारा रचा गया गया है। यह मानव कृत नहीं है क्योकि मनुष्य मस्तिस्क में इतना सामर्त नहीं है कि वह इतने निर्दोष और पवित्र विचार को रच सके, जो हर जीव के कल्याण के उद्देश्य के लिये है। यह एक सनातन विचार जो विश्वास और श्रद्धा पर आश्रित है जबकि मैं ऐसा मे नही मानता। वेदो के बाद उपनिषदों का समय आया। उसके बाद दर्शनो का समय आया, फिर इससे भी मानव को शान्ती नहीं मिली तो रामायण , महाभारत, जैसे इतिहास को रचा गया कि इससे मनुष्य को प्रेरणा मिले और वह साहश श्रद्धा के साथ प्रेम पुर्ण अपने जीवन के संग्राम को लड़े और उस पर विजय पाकर अपने जीवन को शान्ति पुर्ण ढंग से व्यतित करे। इससे भी शान्त मानव का हृदय नहीं हुआ। कितने बड़े बड़े युद्ध के संग्राम हुए। जिनके बारे में विस्तार से पुराणों में अध्यन करने से मिलता है। इसलिये ही पुराणों को रचा गया। फिर भी यह मानव शांत नहीं हुआ। यह और अधिक अशान्त और अतृप्त होता गया। और यह हमेशा यही महशुष करता रहा कि यह बहुत सारी अदृश्य जंजीरों में जकड़ा हुआ है। जिससे यह मुक्त होने का प्रयाश

कर रहा है। इस जीवन संग्राम के लिये क्या जरुरी है? कि वेदों का अध्यन किया जाये या फिर उपनिषद, या दर्शन या पुराणों या फिर रामायण महाभारत का अध्यन किया जाये। मैंने सभी का अध्यन किया जिसमें मैने काफी हद तक सफल भी रहा। इन सब का उद्देश्य परमेश्वर की प्राप्ती है तक हि सिमित है और मैं उस सिमा तक पहुंच गया। और परमेश्वर का साक्षात्कार भी कर लिया वह मेरे हृदय में उतरा और उसने उसी कार्य को आगे बढ़ाया कि जिसको यह नस्वर संसार बढ़ा रहा है। अर्थात वह भी इस नस्वर संसार के ही पक्ष में है। जिससे मुझे शान्ती तो उपलब्ध नहीं हुई यद्यपि एक बहुत भायनक अशान्ती ने मुझमें अपना स्थाई स्थान बना लिया। मुझे यह सब झुठे और विस्वास पर आश्रित लगते है। और जो इनको पालन करने वाले है वह भी अंधविश्वास के शिकार है।

इस तरह से मैं इस परिणाम पर पहूंचा कि यह संसार और यहा आज तक जो भी जाना गया और संजोया गया है। और जिसको सुरक्षित रखा गया जिसके पिछे उसकी रक्षा करने के लिये बहुत बड़ी भिण लगी है। जिसको हम सब धर्म के नाम पर सत्य के नाम पर ज्ञान के नाम पर समप्रदाय के नाम पर जानते आये है। वह सब झुठ के आश्रित है। और सभी झुठे है इनके द्वारा जिस परमेश्वर कि कल्पना कि गई है वह भी झुठा है। हमे अपने सत्य की खोज करनी होगी जिसको प्राप्त करने में सहायता इस संसार की कोई वस्तु नहीं कर सकती है। यहां का सबसे बड़ा सत्य यही है कि जो भी दिखाई दे रहा है वह सब नाश वान है और इसको नाश करने वाला कोई और नहीं है यह मानव ही है। मैंन अनुभव किया कि परमेश्वर कोई और नहीं है मै हि परमेश्वर हूं। और यह दुनिया जीवीत परमेश्वर से सदा से नफरत करती आई है। इसे हमेशा मुर्दा परमेश्वर के साथ रहने में सुकन शान्ती एक प्रकार कि तन्द्रा और मुर्छा कि अनुभूती होती है, और इसको उसके साथ रहने में भी सुविधा महशुष होती है। ऐसा मेरे साथ भी हुआ लेकिन मेरी तंन्द्रा ज्यादा समय तक मुझ पर हाबी नहीं रह सकी, जिसके कारण ही मैंने यह निर्णय किया कि मैं अपना एक अलग संसार बनाउगा,और इसका मालिक मैं स्वय परमात्मा हुंगा। मैं अपना स्वयं का वेद, उपनिषद, दर्शन, रामायण, महाभारत, और पुराण बनाउगा। क्योंकि यही सत्य है इसी का उपदेस किया गया है इन सब शास्त्रों में किया गया। यह कार्य आसान नहीं ही है बहुत कठिन और दुर्गम है फिर भी मै इसी कार्य को करने के लिये प्रयाश रत हूं मै एक प्रेम पुर्ण परिवार समाज और संसार बनाने में श्रद्धा रखता हूं सिकी कमी मुझे इस संसार में सबसे बड़ी खल रही है। जिसके कारण ही मेरे जीवन में सबसे अधिक पिड़ा और संताप के साथ क्लेश भी है। मै स्वयं से अत्यधिक प्रेम करता हूं और इस प्रेम के लिये मैने बहुत सारे समय तक लोगों की खोज कि लेकिन मुझे आज तक कोई नहीं मिला शिवाय मेरे स्वयं के, आज तक दुनिया को केवल वुद्धिमान बनाय गया जिससे यह दुनिया बहुत सातिर किस्म के धुर्तों से भरी पड़ी है। इसमें जीवन का तो बहुत पहले अंत हो चुका है। क्योकि जीवन का संबंध प्रेम से है जिससे हि इस संसार का आभिर्बाव हुआ है। आज हमारी दुनिया में बहुत वुद्धिमान और हर क्षेत्र के विशेषज्ञ मिल जायेगे जो बहुत ही अड़ियल किस्म के धुर्त लोमड़ी कि तरह से है।

मैं जानता हूं कि मेरे शत्रु मुझसे बहुत अधिक ताकतवर और शक्तीशाली है। बाहरी तौर से देखने पर जिस प्रकार से मै अपने आन्तरिक परमेश्वर तक पहुंच चुका हुम उसी प्रकार से हमारे शत्रु भी विज्ञान कि साहयता से बाहरी परमेश्वर तक पहुंच चुके है। जिसे हम सब प्राचिन वैदिक भाष में ब्रह्म कहते है। इसका साक्षात्कार वैज्ञानिक मसिन के सहयाता से प्रकृति को अपने बश में करके सिद्ध कर दिया है। इस परमेश्वर का साक्षात्कार भी करने का दो तरिका है जब हम वुद्धि का उपयोग करते है तो यह विषयों के द्वारा सभी विषयों को पार करने के बाद सभी विषयों पर अपना अधिकार कर लेती है। और यह विषयों से स्वयं को उपर उठा लेती है यह एक प्रकार का सामुहिक ज्ञान है। जिससे मसिनो का निर्वाण होता है जिसका प्रमाण भी हमे दिखाई देता है। जैसा कि आज के वैज्ञानिक हाकिस का मानना है कि परमेश्वर नहीं है शिवाय विज्ञान के कुछ नहीं है यह सब विज्ञान हीं है। तो यह सत्य है क्योकि विज्ञान का मतलब ही वुद्धि से है। बुद्धि के लिये कभी संभव नहीं है कि वह परमेश्वर का साक्षात्कार कर सके वुद्धि सिर्फ विषयों का साक्षात कार कर सकती है। यह हजारों करोणों ब्रह्माण्ड वैज्ञानिक वुद्धि कि सहायता से रचे गये है। और यह सब विषय है। इन सब विषयों का साक्षात्कार करने वाला मै हूं और मै कोई विषय नहीं हूं मै सभी विषयों के पार हूं मैने यह सब देखा सभी विषयों नें मुझके नही देखा।

जैसा कि दुनिया के सबसे बड़े वैज्ञानिकों में गिने जाने वाले स्टीफन हॉकिंग ने कहा है कि इस दुनिया को बनाने वाला कोई भगवान नहीं है। यह दुनिया भौतिकी के नियमों के मुताबिक अस्तित्व में आई। उनके मुताबिक बिंग बैंग गुरुत्वाकर्षण के नियमों का ही नतीजा था। स्टीफन हॉकिंग ने अपनी नई किताब में ये बातें कही हैं। गौरतलब है कि स्टीफन हॉकिंग ने 1988 में छपी अपनी बहुचर्चित किताब 'ए ब्रीफ हिस्ट्री ऑफ टाइम' में कहा था कि ईश्वर का अस्तित्व अनिवार्य तौर पर विज्ञान का विरोधी नहीं है। दुनिया के बनने में ईश्वर की भूमिका को परोक्ष रूप से स्वीकार करते हुए उन्होंने उस पुस्तक में कहा था, 'अगर हम संपूर्ण थियरी खोज सकें तो वह मानवीय तर्क की सबसे बड़ी जीत होगी। तभी हम ईश्वर का दिमाग समझ पाएंगे।' मगर, अपनी नई किताब 'द ग्रैंड डिजाइन' में उन्होंने ईश्वर की किसी भी भूमिका की संभावना खारिज करते हुए

कहा कि ब्रह्मांड का निर्माण शून्य से भी हो सकता है। हॉकिंग की इस नई किताब धारावाहिक रूप में लंदन के 'द टाइम्स' में छप रही है। स्टीफन हॉकिंग मौजूदा दौर के सबसे बड़े वैज्ञानिकों में माने जाते हैं। एक बीमारी से पीड़ित होने की वजह से हॉकिंग खुद चल-फिर या बोल-सुन भी नहीं सकते। फिर भी, अपनी इच्छाशक्ति और संकल्प की बदौलत उन्होंने न केवल अपनी पढ़ाई और रिसर्च जारी रखी बल्कि विज्ञान की सीमाओं को भी विस्तारित किया। इस नई किताब में अपनी पुरानी धारणा से आगे बढ़ते हुए हॉकिंग ने न्यूटन के इस सिद्धांत को गलत बताया है कि बेतरतीब अव्यवस्था से ब्रह्मांड का निर्माण नहीं हो सकता। अपने इस मत की पुष्टि के लिए हॉकिंस ने 1992 में हुई उस खोज का हवाला दिया है, जिसमें हमारे सौरमंडल से बाहर एक तारे के चारों ओर घूमते ग्रह के बारे में पता चला था। हॉकिंग ने इस खोज को ब्रह्मांड की समझ में बदलाव लाने वाला क्रांतिकारी मोड़ बताया है।

12 -वुद्धि से ब्रह्मण्ड का और हृदय से ब्रह्म का साक्षात्कार

जैसा कि हाकिन्स का मानना है कि यह ब्रह्माण्ड ईश्वर ने नहीं बनाया यह बिग बैंग कि घटना का परिणाम है और यह भी मानते है कि इसका जन्म शुन्य से भी हो सकता है। यह सत्य है कि इसका बिस्तार शुन्य से ही हुआ है जिसके लिये ही तो पंतजली कहते है अपने एक सुत्र में तवेवार्थ मात्र निर्भासं स्वरूप शून्यमिव समाधि । अर्थात जब साधक ध्यान करते करते ऐसी स्थिति में पहुँच जाता है जहां उसे खुद का ध्यान ही न रहे मात्र ध्येय ही शेष रह जाये तो ऐसी स्थिति को समाधि कहते हैं । इसमे ज्ञेय, ज्ञान तथा ज्ञाता का अंतर समाप्त हो जाता है । साधक अणु परमाणुओं की संरचना के पार मुक्त साक्षी आत्मा रह जाता है । यहाँ साधक परम स्थिर तथा परम जाग्रत हो जाता है । यह अवस्था परमात्मा की है क्योकि परमेश्वर समाधि अवस्था में ब्रह्म स्वरूप ब्रह्माण्ड में व्याप्त हो रहा है। अर्थात वह परमेश्वर जिसे हम सब ब्रह्म के रुप में जानते है जिससे ही यह ब्रह्माण्ड शब्द बना है। परमेश्वर जो ब्रह्मरूप से ब्रह्मण्ड ही है जिसका निरंतर विस्तार हो रहा है। यह ब्रह्माण्ड रूप ब्रह्म के शरीर के समान है जिसका शरीर निरंतर बढ़ रही है। इस ब्रह्म का साक्षात्कार मसिने कर सकती है जिस प्रकार से किसी भी यंत्र की सहायता से कभी आत्मा को पकड़ा या देखा नहीं गया है लेकिन हम सब है इसका साक्षात्कार हर समय कर रहे है।

देहाभिमाने गलिते विज्ञते परमात्मन । यत्र यत्र मनो याति तत्र तत्र समाधय: ॥

अर्थात जब साधक को शरीर का भी भान न रहे और परमात्मा का ज्ञान हो जाये ऐसी अवस्था में मन जहाँ जहाँ भी जाएगा वहीं वहीं समाधि है । समाधि आपमें कहीं बाहर से नही आएगी, यह आपके अंदर ही घटित होगी । यह समायातीत है जिसे मोक्ष या निर्वाण भी कहा जा सकता है । बोद्ध धर्म में इसे निर्वाण तथा जैन धर्म में इसे कैवल्य कहा जाता है । योग शास्त्रों में इसका नाम समाधि है । मोक्ष की स्थिति में मन निष्क्रिय हो जाता है । समाधि ध्यान की सभी साधनाओं की पराकाष्ठा है, चर्म सीमा है । इसमे ध्यान सदा के लिए अंतर्मुखी हो जाता है । समाधि के लिए एक बौद्धिक और शांत दिमाग, स्पष्ट लक्ष्य, आलस्य विहीनता, सहजता, सरलता तथा सत्यता होनी चाहिए । समाधि तब प्राप्त होती है जब साधक साधनाओं के सभी पड़ाव पार कर जाता है तथा उसका ध्यान एकचित्त अंतर में लगा रहता है । इसको निम्नानुसार भी समझा जा सकता है – तवेवार्थ मात्र निर्भासं स्वरूप शून्यमिव समाधि । न गंध न रसं रुपं न छ स्पर्श न नि:स्वनम । नात्मानं न परस्प छ योगी युक्त: समाधिना ॥ अर्थात जब साधक ध्यान करते करते ऐसी स्थिति में पहुँच जाता है जहां उसे खुद का ध्यान ही न रहे मात्र ध्येय ही शेष रह जाये तो ऐसी स्थिति को समाधि कहते हैं । इसमे ज्ञेय, ज्ञान तथा ज्ञाता का अंतर समाप्त हो जाता है । साधक अणु परमाणुओं की संरचना के पार मुक्त साक्षी आत्मा रह जाता है । यहाँ साधक परम स्थिर तथा परम जाग्रत हो जाता है । एक बात यहा समजना होगा कि ध्यान कोई क्रिया नहीं है ध्यान सारी क्रियायों से मुक्ति का नाम है जब सब कुछ शुन्य हो जाता है जाता है एक प्रकार कि मुर्छा बेहोशी है जैसा कि वैज्ञानिको ने उस मुर्छा और बेहोशी को अपने यन्त्रों कि सहायता से प्राप्त कर लिया है उनके ब्रह्माण्ड के किसी भी कण ब्रह्म का यह परमेश्वर का साक्षात्कार नहीं हो रहा है है इस लिये उन्होने परमेश्वर के अस्तित्व को ही नकार दिया है। जबकि जो मानव परमेंश्वर का साक्षात्कार करता है वह स्वयं कि शरीर के पुर्णतः शुन्य करने के बाद ही करता है। जिसे समाधि कहते है। इसकी सिधा सी मतलब है कि शरीर के किसी भाग से यह सिद्ध नहीं होता है कि परमेश्वर है इसके लिये हमें शरीर कि सिमा का अति क्रमण करना होगा इसके पार जाना होगा। और इसके पार जाने का मतलब है जो सिमायें है उन सिमाओं से आगे बढ़ना होगा। आज वैज्ञानिक सिमाओं का अतिक्रमण कर रहे है जिसके कारण ही उनको यह कहने का सामर्थ मिल सका है कि इस ब्रह्माण्ड को किसी ब्रह्म ने नहीं रचा है यद्यपी सत्य तो यह है कि इसकी निरंतर रचना हो रही है।

सलिलै सैंधवं यद्धत्साम्भजति योगत: । तथात्मन परस्यं छ योगी युक्त: समाधिना ॥

अर्थात जिस प्रकार यदि कोई नमक का टुकड़ा समुद्र में फेका जाये तो वह समुद्र की गहराई तक जाते जाते समुद्र में ही घुल जाता है तथा अपना अस्तित्व खो बैठता है । इसी प्रकार साधक भी समाधि के माध्यम से परम पिता परमेश्वर में समा जाता है । यह ठीक है कि जिस प्रकार से नमक समुद्र के पानी में घुल जाता है तो उसको अर्थात नमक को समुद्र के पानी से बाहर भी सुर्य के प्रकाश कि गर्मी द्वारा निकाला जा सकता है। इसी प्रकार से परमेश्वर के साथ होने के बाद भी मानव संसार में उससे अलग भी अपने अस्तित्व का साक्षात्कार करता है। जब वह संसार में शरीर के साथ जो संघर्ष होता है तो वह स्वयं को परमेस्वर से अलग समझता है। क्योंकि संसार भी एक प्रकार का अग्नी कुण्ड है यज्ञशाला है। जिसमें मानव शरीर ही आहुती के रूप में तपाई जाती है। और अन्त में उसको चिता को समर्पित कर दिया जाता है। जब उसके शरीर का पुरा रस संसार रूप यज्ञशाला के द्वारा चुस लिया जाता है। जिस प्रकार से हम ईख को मसिन में तब तक पेरते है जब तक उसमें रस होता है और जब उसका रस पूरी तरह से निकल जाता है तो। हम ईख की खोई को सुखा कर आग जलाने के लिये इन्धन का काम भी लेते है। इसी प्रकार से मानव शरीर का रस आत्मा है जो एक निश्चित मात्रा में ही शरीर में एक प्रकार के इधन के रूप में है। जब तक यह आत्मा रूप इंधन शरीर मे रहता है तब तक ही यह मनव संसार में अपने कर्मों के द्वारा संसार रूपी शरीर के कल्याण के लिये या फिर संसार रूपी शरीर के अकल्याण के लिये कार्य करता है। जिसको इस मुख्य इंधन आत्मा का ज्ञान होता है वह सद कार्य कर के स्वयं में विद्यमान परमात्मा का साक्षात्कार कर लेता है। और जिसको इसका ज्ञान नहीं होता है वह प्रकृति रुपी शरीर में ही विचरण करता है वह हमेशा विषयों में ही रमा रहता है। जिससे वह स्वयं को ही अस्विकार करता है। जिसे हम सब एक भाष में वुद्धिमान कह सकते है जो सब धुर्त किस्म के लोग है। जिनके नेता वैज्ञानिक है जो प्रेम कि भाषा नहीं समझते है वह सब प्रेम से शुन्य लोग है। यद्यपी होना शुन्य ही है लेकिन शुन्य होने का तरिका विपरीत है। वुद्धि से शुन्य होना है। क्योंकि यह वुद्धि का विषय नहीं है यह हृदय का विषय है जो धड़कता है जो शांसे लेता है जो हर पल पल जिवन को महशुष करता है जिसके लिये ही उस परमेश्वर को हिरण्यगर्यः भी कहते है।

भगवान शंकराचार्य जी ने कहा है : समाहिता ये प्रविलाप्य ब्रह्मं । श्रोतादि चेत: स्वयहं चिदात्मानि ॥ त एव मुक्ता भवपाशबंधे । नित्ये तु पारोक्ष्यकथामिध्यामिन: ॥ अर्थात जो साधक अपनी इंद्रियों के वाह्य प्रवाह को रोक कर, दुनयावी वस्तुओं का मोह छोड़ कर, मन से अहंकार त्याग कर, आत्मा में लीन होकर समाधि को धारण करता है वे साधक संसार के बंधनो से मुक्त होकर, जन्म मरण से मुक्त होकर स्थायी मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं । किन्तु जो केवल आध्यात्मिक बाते तो करते है लेकिन जो ध्यान समाधि का अभ्यास नहीं करते वे कभी भी दुनयावी बंधनो को तोड़कर मुक्ति नही पा सकते है ।

समाधि की स्थित को प्राप्त करने वाला साधक रस, गंध, स्पर्श, शब्द, अंधकार, प्रकाश, जन्म, मरण, रूप आदि विषयों के परे हो जाता है। साधक गर्मी - सर्दी, भूख – प्यास, यश – अपयश, सुख – दुख आदि की अनुभूति से परे हो जाता है । ऐसा साधक जन्म मरण से मुक्त होकर अमरत्व को प्राप्त कर लेता है । समाधि में ध्याता भी नहीं रहता और ध्यान भी नहीं रहता है । ध्येय और ध्याता एकरूप हो जाते हैं । मन की चेतना समाप्त हो जाती है और मन ध्यान में निहित हो जाता है । प्रभु का ध्याता साधक प्रभू रूपी समुद्र में अपने आप को विसर्जित कर मुक्त पा लेता है । समाधि में शारीरिक एवं मानसिक चेतना का अभाव रहता है । आध्यात्मिक चेतना जाग्रत हो जाती है । साधक के वास्तविक स्वरूप का केवल अस्तित्व शेष रहता है । ऐसी अवस्था को तुरिया अवस्था कहते है जो परम चेतना की अवस्था है तथा अनिर्वचनीय है ।

कभी कभी साधक को अर्द्ध निंद्रा की स्थिति में ऐसा अनुभव भी हो सकता है जब साधक का मस्तिष्क जागृत अवस्था में हो लेकिन शरीर सोया हुआ हो । इसमे नींद के मुक़ाबले साधक को अधिक स्फूर्ति तथा आराम मिलता है । यह अवस्था लंबी साधना से ही संभव हो पाती है । कुछ लोग ऐसा मानते है कि समाधि पत्थर की तरह जड़ अवस्था है । जबकि साधक का ब्रह्मांडीय जीवन यहीं से शुरू होता है । आत्म-विकास शुरू होता है । साधक की कुंडलनी नाभि चक्र से जाग्रत होकर सुषमना के जरिये मस्तिष्क तक पहुँचती है जिससे सभी चक्र जाग्रत हो जाते हैं। आनन्दमय कोश में प्रवेश कर जाना भी समाधि की अवस्था कहलाता हैं । समाधि विभिन्न प्रकार की होती हैं। जैसे जड़- समाधि (काष्ठ समाधि), ध्यान समाधि, भाव समाधि, सहज समाधि, प्राण समाधि आदि । बेहोशी, नशा तथा क्लोरोफॉर्म इत्यादि सूंघने से प्राप्त समाधि को काष्ठ-समाधि कहा जाता हैं । किसी भावनावश भावनाओं में बहुत डूब जाने से शरीर चेष्टा शून्य हो जाना भाव समाधि है । किसी इष्ट देव आदि के ध्यान में इतना डूब जाए कि साधक को निराकार अद्भुद अदृश्य ताकते साक्षात दिखाई देने लगे, ऐसा प्रतीत होने लगे कि बंद आँखों से स्पष्ट प्रतिमा नज़र आ रही है इसे ध्यान समाधि कहते हैं । ब्रह्मरन्ध्र में प्राणों को एकाग्र करना प्राण-समाधि कहलाता है । साधक स्वयं को ब्रह्म में लीन होने जैसी अवस्था में बोध पाता है इसे ब्रह्म समाधि कहते हैं । सभी

समाधियों में सबसे सहज, सुखकारी तथा सुलभ "सहज समाधि" है । संत कबीर जी ने कहा है – साधो ! सहज समाधि भली। गुरु प्रताप भयो जा दिन ते सुरति न अनत चली ॥

आँख न मूँदूँ कान न रूँदूँ काया कष्ट न धारूँ। खुले नयन से हँस- हँस देखूँ सुन्दर रूप निहारूँ ॥ कहूँ सोईनाम, सुनूँ सोई सुमिरन खाऊँ सोई पूजा। गृह उद्यान एक सम लेखूँ भाव मिटाऊँ दूजा ॥ जहाँ- जहाँ जाऊँ सोई परिक्रमा जो कुछ करूँ सो सेवा। जब सोऊँ तब करूँ दण्डवत पूँजू और न देवा ॥ शब्द निरन्तर मनुआ राता मलिन वासना त्यागी। बैठत उठत कबहूँ ना विसरें, ऐसी ताड़ी लागी ॥ कहैं 'कबीर' वह अन्मनि रहती सोई प्रकट कर गाई। दुख सुख के एक परे परम सुख, तेहि सुख रहा समाई ॥

असंख्य योग-साधनाओं में से सहज समाधि एक सर्वोत्म साधन है । इसका विशेष गुण यह है कि सांसारिक जीवन जीते हुए भी साधक का साधना अभ्यास चलता रहता है । साधक के जीवन से अहम भाव लगभग समाप्त हो जाता है । वह संसार का प्रत्येक कार्य प्रभु इच्छा मानकर करता रहता है । वह प्रभु के इस संसार को प्रभु की सुरम्य वाटिका के समान देखते हुए एक माली के समान कार्य करता है । संत कबीर जी भी उक्त पद में ऐसी ही समाधि की चर्चा कर रहे हैं और यह समाधि उन साधकों को ही प्राप्त हो सकती है जो मलिन वासनाओं को त्याग कर हर वक्त शब्द में लीन रहते हैं । यहां एक बात मै अवश्यय बातान चाहता हूं कि परमेश्वर जाग्रत है वह साधक से ऐसे ही बोलता है जैसे गुरु शिष्य से बोलता है अपने उपदेश के समय। अन्तर केवल यह है कि परमेश्वर स्वयं के शरीर के हृदय से प्रस्फुटित होता है वह शब्द रूप है और उसका शब्द रूप ही साक्षात्कार होता है। इसलिये शब्द को ब्रह्म कहते है। अर्थात परमेश्वर का साक्षात्कर अपने हृदय में शब्द रूप उसकी वाणी को सुनने से ही मानव मस्तिस्क मन को ज्ञान होता है कि कोई मुझसे अलग है और वह मुझपर हर पल हमेंशा नजर रखता है। लेकिन मानव मन हर पल परम्श्वेर पर हर समय नजर रखने में समर्थ नहीं होता है इसलिये उसके अपने शब्दों के प्रति हमेंशा सतर्क अर्थात ध्यान का आश्रय लेना पड़ता है। अन्यथा ध्यान सब के लिये आवश्यक नहीं है। ध्यान उनके लिये ही ज्यादा कारिगर है बहुत अधिक क्रियाशील है उनको क्रिया से बुद्धि से दूर ले जाने का साधन है। जरुरी नही है कि इससे परमेश्वर का साक्षात्कार होगा। यह एक सतत साधना है स्वयं को शरीर कि क्रिया से मुक्त करने के लिये।

जब साधक किसी सद्गुरु की कृपा से साधना, ध्यान अभ्यास पूर्ण कर समाधि योग्य हो जाता है, बाहरी विचारों से मुक्त होकर अंतर्मुखी हो जाता है तथा वह अपनी आत्मा में ही लीन रहता है तो समाधि घटित होती है । जब साधक ध्यान में बैठता है तो कुछ समय पश्चात उसे एक मौन जैसी अवस्था प्राप्त होती है । यहाँ उसे बेचैनी और उदासी सी अनुभव होती है । यहाँ पर साधक को अपने विचारों पर अधिक ध्यान नही देना चाहिए । विचार आ रहे है तो आने दो, जा रहे हैं तो जाने दो, बस दृष्टा बने रहो, एक पैनी नज़र के साथ । यहाँ साधक को धैर्य बनाए रखना चाहिए । इस मौन और उदासी के बाद ही हृदय प्रकाश से भरने लगता है । ध्यान में शरीरी भाव खोने लगेगा लेकिन साधक को इससे डरना नहीं चाहिए बल्कि खुश होना चाहिए कि वह परमात्मा प्राप्ति के मार्ग की और अग्रसर हो रहा है । अब साधक को ब्रह्म भाव की अनुभूति होने लगेगी । शरीर में विद्युत ऊर्जा का संचार होने लगेगा । इससे कभी कभी साधक के सिर में दर्द हो सकता है और यह बहुत ज्यादा भी हो सकता है । पीड़ा या दर्द यदि अधिक बढ़े तो चिंता नहीं करना चाहिए क्योंकि जब चक्र टूटते है तो पीड़ा होती ही है क्योंकि चक्र आदि काल से सोये पड़े हैं । अत: इस पीड़ा को शुभ मानना चाहिए । साधक के शरीर में या मस्तिष्क में झटते लग सकते है । कभी कभी शरीर कांपने लगता है लेकिन साधक को इस स्थिति से डरना नहीं चाहिए । कभी कभी शरीर में दर्द होगा और चला जाएगा । इसको भी दृष्टा भाव से देखते रहना क्योंकि यह भी अपना काम करके चला जाएगा । ध्यान में डटे रहना । यह कुंडलनी जागरण के चिह्न हैं, शरीर में विद्युत तेजी से चलती है । फिर धीरे धीरे अलौकिक अनुभव होने लगते है । शरीर तथा आत्मा आनंद से भरपूर हो जाती हैं । यहाँ साधक को चाहिए कि अपना कर्ता भाव पूर्ण रूप से छोडकर बस देखता रहे जैसे कोई नाटक देखता है । अब ऊर्जा उर्द्धगामी हो जाती है । यदि आपका तीसरा नेत्र अर्थात शिवनेत्र नहीं खुला है तो चिंता नहीं करना क्योंकि परमात्मा प्राप्ति की यात्रा के लिए यह जरूरी भी नहीं है । उच्चस्थिति आने पर यह स्वत: ही खुल जाता है । समय से पूर्व शक्ति का खुल जाना भी हानिप्रद हो सकता है । अब यह समझिए कि बीज अंकुरित हो चुका है अत: साधना में धैर्य रखते चलना । यह धैर्य ही ध्यान समाधि के रास्ते में खाद का कार्य करता है । अध्यात्म के अनुभवों का बुद्धि के आधार पर विश्लेषण न करना । क्योंकि ध्यान में तरक्की कुछ इस ढंग से होती रहती है जैसे मिट्टी में दबा बीज अंकुरित होता रहता है लेकिन अंकुरण की तरक्की का पता जब चलता है जब वह धरती की सतह से ऊपर आ जाता है । इस प्रकार धीरे धीरे साधक (ध्याता) ध्यान द्वारा ध्येय में पूर्णरूपेण लय हो जाता है और उसमें द्वैतभाव नहीं रहता है ऐसी अवस्था में समाधि लगती है । समाधि प्राप्त साधक दिव्य ज्योति एवं अद्भुद ताकत से पूर्ण हो जाता है । समाधि प्राप्त साधक सभी जीवों में प्रभु का वास देखने लगता है । समाधि

घटित होने से साधक को मोक्ष मार्ग की यात्रा की और बढ़ते हुए विभिन्न सिद्धियाँ तथा रिद्धियाँ भी प्राप्त हो जाती है लेकिन साधक को परम मोक्ष प्राप्ति के लिए इनके प्रयोग से बचना चाहिए अन्यथा यात्रा और कठिन हो जाती है । ये सिद्धियाँ तथा रिद्धियाँ इस प्रकार है–

अणिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, महिमा, सर्व कामना सादिका, वाशित्व, दुरश्रवण, सर्वज्ञता, वाक्य सिद्धि, परकाया प्रवेश, कल्पवृक्ष, संहारशक्ति, सृष्टि शक्ति, सर्वाग्रगण्यता, अमरत्व।

यह सब सिद्धियां वैज्ञानिक तकनिक से संभव है। यह सारी सिद्धिया विज्ञान से वैज्ञानिकों ने प्राप्त कर लिया है जिसके कारण ही वह आज के समय में ऐसे विचार का प्रचार कर रहे है कि परमेश्वर ही नहीं है। इसके कारण ही दुनिया में नास्तिकता की मात्रा आज अपने चरम उत्कर्ष पर पहुंच चुकि है। जिसके कारण ही विनाश कि स्थिती उत्पन्न हो चुकी है। जैसा कि मेरा मानना है परमेश्वर है उसको उपलब्ध होने के लिये हमें इन यंत्रों से स्वयं को दूर करना होगा। जैसा कि पहले लोग सायकिल चलाते थे अपनी मंजिल पर पहुचने के लिये और आज लोग कार से जाते है जीम में सायकिल चलाने के लिये। समय बदल चुका है । पहले लोग ध्यान का प्रयोग निस्क्रिय होने के लिये ही करते थे लेकिन अब लोग ध्यान का प्रयोग सक्रिय रहने के लिये करते है। क्योकि इस विज्ञान के युग में पहले बहुत अधिक निस्क्रिय और वेकार हो चुके है। जिससे सभी को यह चिन्ता होने लगी है कि वह स्वंय को काम में व्यस्त रखते है। इसलिये ही आज हर तरफ कामुक्ता का सामराज्य स्थापित हो चुका है और जीवन से प्रेम लुप्त हो रहा है। यह सिद्धि नहीं तो क्या है? पहले किसी नंग्न औरत को देखते थे तो उनमे काम जागृत होता था आज के युग में मोबइल, टी. बी, और सिनेमा हाल केउपयोग से ही लोग कामुक हो जाते है। या किसी और वृत्तियों का शिकार आसानि से बनाया जा सकता है। जहां पर केवल कुछ रंगों का कमाल है जो पर्दे पर चल रहा है। हालिवुड और बालिबुड का जमाना है जो आदमी को यथार्थ के धरातल से छुड़ा कर कल्पना के ऐसे अंतरिक्ष में पहुंचा दिया है जिसका कोई अंत नहीं है अनन्त है। जिसको ही वेदान्त कहते है जहां पर वेदों का भी अन्त हो जाता है। आज मानव पृथ्वी के किसी एक कोने में रह कर दुनिया के किसी कोने की खबर रख सकता है। और वहां का लाईव चित्र भी देख सकता है। यही नहीं यहां पृथ्वी से हजारों प्रकाश वर्ष दूर किसी दूसरे सौर्यमंडल के किसी और ग्रह पर जीव किस प्रकार के है और वह कैसा कार्य कर रहे है? उसको भी देख सकता है। और उसका लाईव प्रसारण भी कर सकता है चन्द्रमा और सूर्य पर यान भेज रहा है। मंगल पर अपनी मानव बस्तियां बशा रहा है। वहां पर तरह तरह के जिवों को खोज कर पृथ्वी पर नया जीव बना रहा है। किसी मनुष्य के अन्दर एक छोटा सा चिप डाल कर उसके बारे में सारी जानकारी प्राप्त कर रहा है। कि उसके दिमांग में क्या चल रहा है? वह दिन दुर नहीं है जब मानव चेतना का भी साक्षात्कार कर लेगा अभी तक मानव के सभी भावों का डाटा तैयार कर के उसका उपयोग कर रहा है। कृतिम मानव स्त्री पुरुष बना रहे है। जिनकी शरीर पुरी तरह से पदार्थों से बनी रही है। जो एक चलते पिरते रिबोट हो रहे। अर्थात मानव शरीर के अन्दर परिवर्तरन करके उसको स्टिल का मसिन बना रहे है। चेतना के अतिरीक्त सारा कार्य करने में वैज्ञानिक समर्थ हो चुके है। मानव भावों का बढ़े अस्तर पर उपयोग करके किसी भी समुदाय को या राज्य या देश के सभी नागरिकों जब चाहे रुला सकते है जब चाहे हंसा सकते है जब चाहे सामुहिक हत्या के लिये भी प्रेरित कर सकते है। जहां चाहे वहां भुकम्प ला सकते, जहां चाहे वहां कभी भी वारिष करा सकते है, भयानक बाढ़ ला सकते है, जहां चाहे जब चाहे तुफान और बवंड़र ला सकते है। यह उत्थान के साथ बहुत बड़े पतन का भी कारण बन सकता है। जिसके लिये ही आज जो समझदार लोग है। वह इस आश्चर्यचकित कर देने वाली वैज्ञानिक सिद्धियों से इतने अधिक भयभित हो चुके है। कि वह इस पृथ्वी को छोड़ कर किसी दूसरे ग्रह पर जाने कि योजना पर काम कर रहे है। जिसमे से एक मै भी हूं, क्योंकि विज्ञान मानव को ऐसी स्थिती पर ला कर खड़ा कर दिया है जहा से वापिस होना असंभव है। यह सब कुछ जो कुछ दिखाई दे रहा है वह सब मसिनो के अधिकार में होने वाला है। जिससे मानव कि सारी जो स्वतंत्रता है वह बहुत भयानक परतंत्रता में परिवर्तित हो सकती है। लगभग जितने विकसित देश है वह सब इसकी चपेट में आ चुके है जो विकाश शील देश है वह थोड़े समय में ही इसके चपेट में आने वाले है। और बहुत बड़ी संख्या में कभी भी सामुहिक नर संहार हो सकता है। जिसका कारण युद्ध नहीं हो यद्यपी सुक्ष्म तकनिकी के सहायता से यह सब संभव हो सकता है।

समाधि लगने पर साधक बिना आँखों के देख सकता है, बिना कानों के सुन सकता है, बिना मन मस्तिष्क के बोध कर सकता है, जन्म मरण से मुक्त स्थूल देह से बाहर निकल कर खुद को अभिव्यक्त कर सकता है, ब्रह्मांड से भी अलग होने की ताकत प्राप्त कर लेता है । इसके बारे में संत कबीर जी ने कहा है –

बिना चोलनै बिना केचुकी, बिनहीं संग संग होई । दास कबीर औसर भाल देखिया जानेगा जस कोई ॥

संत नानक देव जी उक्त संबंध में फरमाते हैं कि -अखी बाझहु वेखणा, विणु कन्ना सुनणा । पैरा बाझहु चलणा, बिणु हथा करणा ।

जीभै बाझहु बोलणा, एउ जीवट मरणा । नानक हुकमु पछाणी कै तउ खसमै मिलणा ।

दादू दयाल जी कहते है कि – बिन श्रवणौ सब कुछ सुनै, बिन नैना सब देखै । बिन रसना मुख सब कुछ बोलै, यह दादू अचरज पेखै ॥

एक मुस्लिम महात्मा मौलाना रूम इसको इस प्रकार व्यक्त करते है –

बेपरो बे पा सफ़र में करदम । बे लबो बे दंदो शंकरं में खुर्दम । चश्म बस्ता आलम में दीदम ॥

रामायण में संत तुलसीदास जी लिखते है कि - बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना । कर बिनु करम करइ बिधि नाना। आनन रहित सकल रस भोगी । बिनु बानी बकता बड़ जोगी ॥ तन बिनु परस नयन बिनु देखा । ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेषा ॥ असि सब भाँति अलौकिक करनी । महिमा जासु जाइ नहिं बरनी ॥

"ध्यान" तथा "समाधि" में एक महत्वपूर्ण अंतर है कि साधक जब ध्यान कर रहा होता है तो उसको यह पूरा अहसास रहता है कि वह "ध्याता" है तथा "ध्येय" का ध्यान कर रहा है अर्थात यहाँ पर द्वैत भावना रही । लेकिन जब साधक का चित्त पूर्ण रूप से "ध्येय" में परिवर्तित होने लगता है और स्वयं के अस्तित्व का अभाव हो जाता है अर्थात यहाँ केवल "ध्येय" ही शेष रह जाता है, यहाँ पर अद्वैत ही शेष रह जाता है।

यह ध्यान , योग , समाधि और कुछ नहीं प्रेम ही है जो समय के साथ नये नये रुपों में परिभाषित किया गया है। आज जिसको हम सब प्रेम के रूप मे देखते है वह काम है जो कामना से बना है जिसके पिछे एक उर्जा का सृजन हो ता है जिसका सदूपययोग एक सुन्दर सभ्य संसकारित समाज का निर्वाण करता है। और जब यह अनियंत्रित हो जाता है। तो यह किसी को पहचान नहीं करता है यह अपने सारी सिमाओं का बहिस्कार कर देता है। अर्थात सिमाए तोड़ देता है जिस प्रकार से समुद्र में सुनामि आती है। तो समुद्र के किनारे रहने वाले लोग और नगर राज्य को तबाह कर देता है। जिस प्रकार से पृथ्वी को तापमान गरम होने से पृथ्वी का वायुमंडल गरम हो रहा है। जिससे कितने प्रकार के जीव हमेशा के लिये लुप्त हो चुके है। और जिसके कारण ही इस मानव जाती पर भी कितने सुक्ष्म और बारिक दुस्पिरिणामो के नाम से विमारीयों का उपस्थित होना है। जिसका इलाज इस संसार में नहीं है कितनी नई विमारीयां है। जिसका वैज्ञानिको का ज्ञान ही नही है जिसको वह लाईलाज की सुचि मे रखते है। यह सब विकृतियों का कारण अनियंत्रित काम है। जिसको अब नियंत्रित करना असंभव है। क्योकि पहले प्राचिन काल में काम नियंत्रित था? लेकिन एक समय पश्चिम देशों से ऐसी हवा उड़ाई गई कि काम की स्वतन्त्रता से मानव को सुखी किया जा सकता है। जिसके प्रमुख सिगमंड फ्रायड को माना जाता है। वह हवा आज लगभग सभी देशों मे फैल चुकी है जिसका प्रसार दुनिया के बड़े देशों ने किया जिसके कारण ही एड्स और कैन्सर जैसी लाईलाज विमारीयों का दब दबा पुरे विस्व के देशों मे हो गया है। जिसके कारण ही ड्रग्स स्मगलर अथाह धन दवा के नाम पर कमा रहे है। दवाये किसी रोग को खत्म नहीं करती यद्यपी रोग को इस स्तर तक बढ़ा देती है जो शरीर के साथ ही खत्म होती है। यह सब मिल कर प्रेम को लुप्त होने के कारण बन चुके है।

आंकड़े देने से बात कड़ुवी न होती तो बताते कि पाश्चात्य देशों में यौन-सदाचार' की कितनी दुर्गति हुई है। इस दुर्गति के परिणामस्वरूप वहाँ के वैयक्तिक जीवन में रोग-शोक, चिन्ता, दुर्वासनायें पारिवारिक जीवन में क्रोध, ड़ड़ड़ड़, असंतोष और संताप एवं सामाजिक जीवन में अशाँति, उच्छृंखलता, उद्दंडता और शत्रुता का कितना भयानक वातावरण छा गया है। एक छोटा-सा प्रमाण यही है कि अमेरिका जैसे धनी देश के नागरिकों में 100 के पीछे 60 लोगों को नींद आने के लिये दवा की गोली लेनी पड़ती है, लोगों के मस्तिष्क तनाव और चिन्ताओं के बोझ से दबे रहते हैं, अपनी पत्नी पर भी भरोसा नहीं कर सकते वह किस क्षण तलाक दे दे और घर-बार छोड़ कर चली जाये।

अब यह प्रवाह धीरे-धीरे इस देश को भी छूने लगा है। बालकों के चरित्र और सहवास की मर्यादायें ढीली होने से स्वास्थ्य पर तो बुरा असर पड़ा ही है, सामाजिक जीवन में उच्छृंखल मनोवृत्ति का तेजी से विकास होता जा रहा है। वंशानु-संक्रमण की सारी तेजस्विता और स्वाभिमान नष्ट होता जा रहा है। बच्चे छोटी अवस्था से ही आत्म-हीनता (इनफीरियरिटी काम्प्लेक्स) से ग्रसित होते जा रहे हैं। आज का नवयुवक अपने भीतर इतनी आत्म-हीनता भरे हुये रहता है कि वह अपने

आपको अच्छी तरह व्यक्त भी नहीं कर सकता। यह फ्रायड जैसे कामुकता समर्थक दार्शनिकों की ही देन है- जिसने पाश्चात्य देशों को मनो-विज्ञान के नाम पर बहुत प्रभावित किया है और वहीं से वह आँधी अब इस देश में भी बढ़ती आ रही है। मार्क्स ने आर्थिक आवश्यकताओं को प्रधानता दी, जिससे लोगों के जीवन का एक लक्ष्य हो गया- 'पैसा'। फ्रायड ने 'काम-सुख' ही इष्ट' का सिद्धान्त देकर लोगों को वासना का अपराधी बना दिया। यदि आज के मनुष्य का मानसिक विश्लेषण किया जाय तो मिलेगा कि ईश्वर, आत्मा, ज्ञान, शिक्षा, प्रेम, व्यवहार, आदर, सत्कार, सामंजस्य, सहयोग, लोक-सुधार और पारलौकिक सद्गति आदि की कल्पना उन्हें छू भी नहीं गई- (1)पैसा और (2) काम सुख। यही दो लक्ष्य अब शेष रह गये हैं। परमात्मा ने शरीर में जहाँ अनेक ऐसे यन्त्र लगाये हैं, जो इस जीवन और पारलौकिक सुखों की प्राप्ति में मदद देते हैं, वहाँ उन ग्रन्थियों की रचना भी की है, जिससे सृष्टि का क्रम न रुके। यहाँ निरन्तर गति और जीवन बना रहे। किन्तु उसकी भी अपनी मर्यादा है, उसे तोड़ने का साहस करना अपने, समाज और परमात्मा तीनों के प्रति विश्वासघात कहा जायेगा। फ्रायड का कथन है कि 'काम सेवन' से ही मनुष्य का जन्म होता है, यह प्रकृति की देन है, इसलिये जो जितना अधिक अपनी वासना की पूर्ति कर सकता है, वह उतना ही सुखी है। वासना की सन्तुष्टि के लिये विवाह मर्यादाओं का उल्लंघन करना पड़े तो भी वह अपराध नहीं है। फ्रायड लिखते हैं कि छोटे बालक के मन में स्वयमेव अपनी माँ के साथ ही (इडिपुस काम्प्लेक्स) और पुत्री की अपने पिता के साथ (इलेक्ट्रा काम्प्लेक्स) काम सम्बन्ध स्थापित करने की इच्छा जाग उठती है। पुत्र अपनी माँ से मिलना चाहता है, किन्तु जब वह देखता है कि उसका पिता यह स्थान पहले ही ग्रहण किए हुए है, तो उसके मन में पिता के प्रति घृणा और दुर्भाव पैदा होने लगता है। घृणा और विद्वेष कई बार इतने भयंकर हो उठते हैं कि वह अपने पिता को मार डालने तक की बात सोचने लगता है, उसी प्रकार जब वह माँ के साथ काम सम्बन्ध स्थापित रखने के वंचित रखा जाता है, तो उसके अन्दर आत्म-हीनता की भावना विकसित होने लगती है। फ्रायड ने व्यक्तित्व के विकास और सभ्यता के मार्ग में इस प्रकार की आत्म-हीनता को अवरोध माना है और यह विश्वास व्यक्त किया है कि यदि 'काम-वासना' की पूर्ति को बिल्कुल स्वच्छन्द कर दिया जाये, तो मनुष्य सभ्यता और संस्कृति के चरम बिन्दु तक पहुँच सकता है। फ्रायड यह नहीं मानते कि इस तरह का विचार केवल एबनार्मल (अर्थात् कुछ असाधारण) लोगों में ही उठता है वरन् वे इसे नार्मल अर्थात् सहज वृत्ति मानते हैं। अबोध बालक में इस तरह का यौन आकर्षण होना अयुक्ति ही नहीं बहुत हास्यास्पद बात है। भारतवर्ष में मृत्यु पर्यन्त माता के प्रति लोगों में इतनी पवित्रता होती है कि ऐसे गंदे और फूहड़ विचार मस्तिष्क में आते तक नहीं। पिता-माता के प्रति दुर्भाव आना सहज वृत्ति रही होती तो श्रवण कुमार अपने माता-पिता को कंधों पर चढ़ाते हुए न घूमता। राम दशरथ की बात ठुकरा देते और अयोध्या में गृह-युद्ध की स्थिति की बात पैदा कर देते। दुर्योधन जैसा अत्याचारी शासक भी अपने माता-पिता का उतना ही भक्त था, जितना किसी आदर्श संतान हो होना चाहिये। भरत कुमार के लिये तो वन में कोई अवरोध नहीं था पर उसने अपनी माँ की उपासना देवताओं की तरह की। फ्रायड के इस थोथे सिद्धाँत की वास्तविकता प्रकट करते हुये, श्री इलाचन्द जोशी लिखते हैं- "फ्रायड अपनी सुन्दरी माता आमेलिया फ्रायड का पहला पुत्र था। आमेलिया के पति याकोब फ्रायड ने यह दूसरा विवाह किया था। जब फ्रायड का जन्म हुआ था, तब आमेलिया की आयु कुल 21 वर्ष की थी, प्रथम सन्तान के प्रति माँ का भी अत्यधिक स्नेह और लाड़-प्यार होता है, फ्रायड जन्मजात प्रतिभाशाली और तीव्र अनुभूतिशील बालक था। आश्चर्य नहीं कि इस प्रीकोशस बालक के मन में सचेत ही रूप में अपनी स्नेहशीला और सुन्दरी माता के प्रति बहुत छोटी अवस्था में ही तीव्र यौनाकांक्षा जाग उठी हो। फ्रायड कुतूहली और ईर्ष्यालु स्वभाव का भी था। पिता उसे कई बार डाँटता भी था, इसलिये पिता के प्रति दुर्भाव हो जाना स्वाभाविक हो सकता है।

अपने जीवन की इसी संस्कार जन्य कमजोरी को लगता है, फ्रायड ने एक सर्व-साधारण सिद्धान्त मान लिया और उसे ही सत्य सिद्ध करने में जीवन भर लगा रहा। मनुष्य जीवन की साधारण गति अधोमुखी होती ही है, सो उसे समर्थक भी मिलते गये और देखते देखते 'फ्रायड के सेक्स' ने सारे पाश्चात्य समाज को अपनी कुण्डली में बाँध लिया। नैपोलियन 25 वर्ष की आयु तक काम-सुख तो क्या नारी के प्रति भी आकृष्ट नहीं हुआ था। न्यूटन के मस्तिष्क में यौनाकर्षण उठा होता तो उसने अपना बुद्धि-कौशल सृष्टि के रहस्य जानने की अपेक्षा अपरिमित काम-सुख प्राप्त करने में झोंक दिया होता। भीष्म और हनुमान प्रतिज्ञा बद्ध हो सकते हैं, पर न्यूटन के सामने तो वैसी कठिनाई थी ही नहीं। जन्मजात प्रतिभायें अधोमुखी ही नहीं ऊर्ध्वमुखी भी होती रही हैं और उनके काम-सुख की अपेक्षा अधिक सुख लोगों को मिलता रहा है। हमारे देश में तो सच्चे और शाश्वत सुख की प्राप्ति में काम-वासना को प्रधान बाधा माना गया है। रामकृष्ण परम हंस विवाहित होकर भी योगियों की तरह रहे, वे सदैव आनंद विह्वल रहते थे। स्वामी रामतीर्थ और भगवान् बुद्ध ने तो ड़ड़ड़ड़ सुख के लिये तरुणी पत्नियों का परित्याग तक कर दिया था। महर्षि दयानन्द ब्रह्मचारी होकर जिये। महात्मा गाँधी ने 36 वर्ष की अवस्था के बाद काम-

वासना के बिल्कुल नियन्त्रित कर दिया था तो भी उनके जीवन में प्रसन्नता का फव्वारा बहता रहता था, तब फिर क्या 'काम-सुख को प्रधान जीवन सुख और लक्ष्य' की मान्यता दी जा सकती है।

'रेतस' को ऊर्ध्वगामी बनाकर जो उल्लास शक्ति प्रसन्नता प्रमोद और आनन्द मिलता है, योग-शास्त्रों डडडड उसकी बड़ी प्रशंसा की गई है और उसे अनवरत डडडड सुख से भी बढ़कर बताया गया है। यौनाकर्षण डडडड क्षणिक सुख की प्रेरणा देता है, इस प्रकार की तृप्ति आँशिक सुख भले ही मिल जाता हो पर बाद में शरीर और आत्मा की दुर्गति ही होती है। मनुष्य के विचार और क्रिया-कलाप सब निम्नगामी होते चले जाते हैं, व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में वह विद्रूप और उपद्रव खड़े हो जाते हैं, जिनकी चर्चा प्रथम पंक्तियों में गई है।

आज भी जिसने एक बड़े काठ को काट कर छेद कर डाला था, वह भ्रमर सायंकाल तक एक कमल के फूल पर जा बैठा । कमल के सौंदर्य और सुवास में भ्रमर का मन कुछ ऐसा विभोर हुआ कि रात हो गई, फूल की बिखरी हुई पंखुडियां सिमटकर कली के आकार में आ गई । भौंरा भीतर हो ही बंद होकर रह गया । रात भर प्रतीक्षा की,भ्रमर चाहता तो उस कली को कई और से छेद करके रात भर में कई बार बाहर आता और फिर अंदर चला जाता है पर वह तो स्वयं भी कली की एक पंखुडी को गया । प्रात:काल सूर्य की किरणे उस पुष्प पर पड़ी तो पंखुडियां फिर खिली और वह भौंरा वैसे ही रसमग्न अवस्था में बाहर निकल आया । यह देखकर संत ज्ञानेश्वर ने अपने शिष्यों से कहा-देखा तुमने । प्रेम का यह स्वरूप समझने योग्य है । भक्ति कोई नया गुण नहीं, वह प्रेम का ही एक स्वरूप है । जब हम परमात्मा से प्रेम करने लगते हैं तो द्रवीभूत अंतःकरण सर्वत्र व्याप्त ईश्वरीय सत्ता में सविकल्प तदाकार रूप धारण कर लेता है, इसी को भक्ति कहते हैं । भगवान निर्विकल्प और प्रेमी सविकल्प दोनों एक हो जाते हैं, द्वैत भाव भी अद्वैत हो जाता है । इसी बात को शास्त्रकार ने इस प्रकार कहा है- 'द्रवी भाव पूर्विका मनसो भगवदेकात्मा रूपा सविकल्प वृत्तिर्भक्तिरिती'

प्रेम' एक बहुत व्यापक शब्द है । इसका अर्थ ईश्वरप्रेम और विश्व प्रेम से लेकर निकृष्ट वासनाओं तक लगाया जाता है । निम्नकोटि के मनुष्यों ने तो इसका मतलब केवल कामुकता जन कृत्यों से मान लिया है । उससे कुछ ऊँचे सामान्य श्रेणी वाले अपने स्त्री-पुत्र, सगे-सम्बन्धियों से लगाव, हित चिन्तन को ही प्रेम मानते हैं । कुछ बुद्धिमान व्यक्ति कला, साहित्य, संगीत, ज्ञान विज्ञान आदि की साधना को भी प्रेम की संज्ञा देते हैं । पर इनमें से वास्तव में कोई 'प्रेम' कहे जाने लायक नहीं है । ये सब स्वार्थ की सीमा में ही आते हैं जबकि सच्चा प्रेम परमार्थ का प्रमुख अंग है । यदि तुम शांति, सामर्थ्य और शक्ति चाहते हो तो अपनी अंतरात्मा का सहारा पकड़ो। तुम सारे संसार को धोखा दे सकते हो किंतु अपनी आत्मा को कौन धोखा दे सका है? यदि प्रत्येक कार्य में आप अंतरात्मा की सम्मति प्राप्त कर लिया करेंगे तो विवेक पथ नष्ट न होगा । दुनियाँ भर का विरोध करने पर भी यदि आप अपनी अंतरात्मा का पालन कर सकें तो कोई आपको सफलता प्राप्त करने से नहीं रोक सकता । जब कोई मनुष्य अपने आपका अद्वितीय व्यक्ति समझने लगता है और अपने आपको चरित्र में सबसे श्रेष्ठ मानने लगता है, तब उसका आध्यात्मिक पतन होता है। महान व्यक्ति सदैव अकेले चले हैं और इस अकेलेपन के कारण ही दूर तक चले हैं। अकेले व्यक्तियों ने अपने सहारे ही संसार के महानतम कार्य संपन्न किए हैं। उन्हें एकमात्र अपनी ही प्रेरणा प्राप्त हुई है। वे अपने ही आंतरिक सुख से सदैव प्रफुल्लित रहे हैं। दूसरे से दु:ख मिटाने की उन्होंने कभी आशा नहीं रखी। निज वृतियों में ही उन्होंने सहारा नहीं देखा। अकेलापन जीवन का परम सत्य है। किंतु अकेलेपन से घबराना, जी तोड़ना, कर्तव्यपथ से हतोत्साहित या निराश होना सबसे बड़ा पाप है। अकेलापन आपके निजी आंतरिक प्रदेश में छिपी हुई महान शक्तियों को विकसित करने का साधन है। अपने ऊपर आश्रित रहने से आप अपनी उच्चतम शक्तियों को खोज निकालते हैं।

13 इस जीवन का सबसे खतरना अभिश्राप है निर्धनता

यद्यपि मुझको इसका ज्ञान बहुत पहले ही जीन्दगी में हो चुका था कि जिवन का सबसे बड़ा अभिश्राप है निर्धनता। यदि किसी व्यक्ति तड़पा कर मारना हो तो उसके उपर आर्थिक प्रतिबंधं लगा दिया जाये। इसके कारण बड़े बड़े देश दिवालिया पन को उपलब्ध हो जाते है साधरण मनुष्य कि औकात ही क्या है?

पंचतंत्र संस्कृत साहित्य का सुविख्यात नीतिग्रंथ है, जिसका संक्षिप्त परिचय मैंने अन्यत्र दे रखा है । ग्रंथ के अंतर्गत एक प्रकरण में व्यावहारिक जीवन में धन-संपदा की महत्ता का वर्णन मिलता है । उसके दो सियार पात्रों – वस्तुतः दो भाइयों, दमनक एवं करटक – में से एक दूसरे के समक्ष अधिकाधिक मात्रा में धनसंपदा अर्जित करने का प्रस्ताव रखता है । दूसरे के "बहुत अधिक धन क्यों?" के उत्तर में वह धन के विविध लाभों को गिनाना आंरभ करता है और धन से सभी कुछ संभव है इस बात पर जोर डालता है । ऐसा नहीं है कि पंचतंत्र में धन को ही महत्त्व दिया गया हो । किसी अन्य स्थल पर तो ग्रंथकार ने उपभोग या दान न किए जाने पर धनसंपदा के नाश की भी बात की है । वस्तुतः ग्रंथ में परिस्थिति के अनुसार पशुपात्रों के माध्यम से कर्तव्य-अकर्तव्य की नीतिगत बातें कही गई हैं । याद दिला दूं कि पंचतंत्र के पात्र पशुगण हैं, जो मनुष्यों की भांति व्यवहार करते हैं, और मनुष्य जीवन की समस्याओं से जूझ रहे होते हैं । यहां पर उस सियार पात्र के धनोपार्जन संबंधी कथनों को उद्धृत किया जा रहा है । प्रस्तुत हैं प्रथम तीन श्लोक:

न हि तद्विद्यते किञ्चिद्यदर्थेन न सिद्ध्यति । यत्नेन मतिमांस्तस्मादर्थमेकं प्रसाधयेत् ॥2॥ अर्थः ऐसा कुछ भी नहीं है जिसे धन के द्वारा न पाया जा सकता है । अतः बुद्धिमान् व्यक्ति को एकमेव धन अर्जित करने का प्रयत्न करना चाहिए । भौतिक सुख-सुविधाएं धन के माध्यम से एकत्र की जा सकती हैं । इतना ही नहीं सामाजिक संबंध भी धन से प्रभावित होते हैं । ऐसी ही तमाम बातें धन से संभव हो पाती हैं । इनका उल्लेख आगे किया गया हैः

यस्यार्थाः तस्य मित्राणि यस्यार्थास्तस्य बान्धवाः । यस्यार्थाः स पुमांल्लोके यस्यार्थाः स च पण्डितः ॥3॥ अर्थः जिस व्यक्ति के पास धन हो उसी के मित्र होते हैं, उसी के बंधुबांधव होते हैं, वही संसार में वस्तुतः पुरुष (सफल व्यक्ति) होता है, और वही पंडित या जानकार होता है । आज के सामाजिक जीवन में ये बातें सही सिद्ध होती दिखाई देती हैं । आपके पास धन-दौलत है तो यार-दोस्त, रिश्तेदार, परिचित आदि आपको घेरे रहेंगे, अन्यथा आपसे देरी बनाए रहेंगे । जिसने धनोपार्जन कर लिया वही सफल माना जाता है, उसी की योग्यता की बातें की जाती हैं, उसकी हां में हां मिलाई जाती है, मानो कि उसे ही व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त हो । कदाचित् धन की ऐसी खूबी प्राचीन काल में भी स्वीकारी गई होगी।

न सा विद्या न तद्दानं न तच्छिल्पं न सा कला । न तत्स्थैर्यं हि धनिनां याचकैर्यन्न गीयते ॥4॥ अर्थः ऐसी कोई विद्या, दान शिल्प (हुनर), कला, स्थिरता या वचनबद्धता नहीं है जिनके धनिकों में होने का गुणगान याचकवृंद द्वारा न किया जाता हो । संपन्न व्यक्ति की अनुकंपा प्राप्त करने और मौके-बेमौके उससे मदद पाने के लिए लोग प्रशंसा के बोल कहते देखे जाते हैं । उसको खुश करने के लिए लोग यह कहने में भी नहीं हिचकते हैं कि वह अनेकों गुणों का धनी है । राजनीति के क्षेत्र में ऐसे अनेकों 'महापुरुष' मिल जाएंगे, जिनके गुणगान में लोगों ने 'चालीसाएं' तक लिख डाली हैं । धनिकों के प्रति चाटुकारिता एक आम बात है ऐसा ग्रंथकार का मत है ।

इह लोके हि धनिनां परोऽपि स्वजनायते । स्वजनोऽपि दरिद्राणां सर्वदा दुर्जनायते ॥5॥ अर्थः इस संसार में धनिकों के लिए पराया व्यक्ति भी अपना हो जाता है । और निर्धनों के मामले में तो अपने लोग भी दुर्जन (बुरे अथवा दूरी बनाये रखने वाले) हो जाते हैं । उक्त बातें प्राचीन काल में किस हद तक सही रही होंगी यह कहना कठिन है । परंतु आज के विशुद्ध भौतिकवादी युग में ये पूरी तरह खरी उतरती हैं । बहुत कम लोग होंगे जो अपने भाई-बहनों तक के साथ मिलकर अपनी संपदा का भोग करना चाहेंगे । "हम कमाएं और वे खाएं यह भला कैसे हो सकता है ?" यह सोच सबके मन में रहती है । अतः उनसे दूरी बनाए रखने में ही उनकी संपदा परस्पर बंटने से बच सकती है । इसीलिए नीतिकार कहता है कि अगर आप अपनी धनसंपदा खो बैठते हैं तो आपके निकट संबंधी भी आपके नहीं रह जाते हैं । दूसरी ओर किसी धनी से संबंध बढ़ाने में लाभ की संभावना बनी रहती है, इसलिए लोग उसके 'अपने' बनने की फिराक में अक्सर देखे जाते हैं ।

अर्थेभ्योऽपि हि वृद्धेभ्यः संवृत्तेभ्य इतस्ततः । प्रवर्तन्ते क्रियाः सर्वाः पर्वतेभ्य इवापगाः ॥6॥ अर्थः चारों तरफ से एकत्रित करके बढ़ाये गये धनसंपदा से ही विविध कार्यों का निष्पादन होता है, जैसे पर्वतों से नदियों का उद्गम होता है । इस कथन के अनुसार मनुष्य को चाहिए कि वह जैसे भी हो, जहां से भी हो, अपनी धनसंपदा बढ़ाता जाए । जब ढेर सारा धन आपके पास इकट्ठा हो तो उस धन के माध्यम से सभी कार्य एक-एक कर संपन्न होते चले जाएंगे । "हर स्रोत से धन इकट्ठा करे" का अर्थ क्या यह समझा जाए कि आर्थिक भ्रष्टाचार भी मान्य रास्ता है ? शायद हां, तभी तो सर्वत्र भ्रष्टाचार का तांडव देखने को मिल रहा है ।

पूज्यते यदपूज्योऽपि यदगम्योऽपि गम्यते । वन्द्यते यदवन्द्योऽपि स प्रभावो धनस्य च ॥7॥ अर्थः धन का प्रभाव यह होता है कि जो सम्मान के अयोग्य हो उसकी भी पूजा होती है, जो पास जाने योग्य नहीं होता है उसके पास भी जाया जाता है, जिसकी वंदना (प्रशंसा) का पात्र नहीं होता उसकी भी स्तुति होती है । संस्कृत में एक उक्ति है: "धनेन अकुलीनाः कुलीनाः भवन्ति धनम् अर्जयध्वम् ।" अर्थात् धन के बल पर अकुलीन जन भी कुलीन हो जाते हैं, इसलिए धनोपार्जन करना चाहिए । तात्पर्य यह है कि समाज में सामान्य अप्रतिष्ठित व्यक्ति ढेर-सी धनसंपदा जमा कर लेता है तो वह सामाजिक प्रतिष्ठा एवं सम्मान का हकदार हो जाता है । लोग उसके आगे-पीछे घूमना शुरू कर देते हैं । इसके विपरीत प्रतिष्ठित व्यक्ति जब दुर्भाग्य से अपनी संपदा खो बैठता है तो उसे सामाजिक प्रतिष्ठा भी गंवानी पड़ती है । लोग उसका सम्मान करना भूलने लगते हैं, उससे मिलने से भी कतराते हैं ।

अशनादिन्द्रियाणीव स्युः कार्याण्यखिलान्यपि । एतस्मात्कारणाद्वित्तं सर्वसाधनमुच्यते ॥8॥ अर्थः भोजन का जो संबंध इंद्रियों के पोषण से है वही संबंध धन का समस्त कार्यों के संपादन से है । इसलिए धन को सभी उद्येश्यों की प्राप्ति अथवा कर्मों को पूरा करने का साधन कहा गया है । इस तथ्य को सभी लोग स्वीकार करेंगे कि चाहे धार्मिक अनुष्ठान संपन्न करने हों या याचकों को दान देना हो, धन चाहिए ही । शारीरिक स्वास्थ्य, मनोरंजन, एवं सुखसुविधाएं आदि सभी के लिए धन-दौलत चाहिए । आज के जमाने में तो मुफ्त में सेवा देने वाले अपवाद स्वरूप ही मिलते हैं । एक जमाना था जब सामाजिक कार्य संपन्न करने में परस्पर सहयोग एवं मदद देने की परंपरा थी, परंतु अब सर्वत्र धन का ही बोलबाला है ।

अर्थार्थी जीवलोकोऽयं श्मशानमपि सेवते । त्यक्त्वा जनयितारं स्वं निःस्वं गच्छति दूरतः ॥9॥ अर्थः यह लोक धन का भूख होता है, अतः उसके लिए श्मशान का कार्य भी कार्य करने को तैयार रहता है । धन की प्राप्ति के लिए तो वह अपने ही जन्मदाता हो छोड़ दूर देश भी चला जाता है । पंचतंत्र के रचनाकार का मत है कि जीवन-धारण बिना धन के संभव नहीं हैं, अतः मनुष्य धनोपार्जन के लिए कोई भी व्यवसाय अपनाने को विवश होता है । कुछ कामधंधे समाज में अधिक प्रतिष्ठित माने जाते हैं, अतः लोग उनकी ओर दौड़ते हैं और सौभाग्य से उन्हें पा जाते हैं । किंतु सभी भाग्यवान एवं पर्याप्त योग्य नहीं होते । उन्हें उस कार्य में लगना पड़ता है जिसे निकृष्ट श्रेणी का माना जाता है। अथवा धनोपार्जन के लिए घर से दूर निकलना पड़ता है । आज के जमाने में ये बातें सामान्य हो चुकी हैं ।

गतवयसामपि पुंसां येषामर्था भवन्ति ते तरुणाः । अर्थे तु ये हीना वृद्धास्ते यौवनेऽपि स्युः ॥10॥ अर्थः उम्र ढल जाने पर भी वे पुरुष युवा रहते हैं जिनके पास धन रहता है । इसके विपरीत जो धन से क्षीण होते हैं वे युवावस्था में भी बुढ़ा जाते हैं । इस श्लोक की मैं दो प्रकार से व्याख्या करता हूं । पहली व्याख्या तो यह है धनवान व्यक्ति पौष्टिक भोजन एवं चिकित्सकीय सुविधा से हृष्टपुष्ट एवं स्वस्थ रह सकता है । तदनुसार उस पर बुढ़ापे के लक्षण देर से दिखेंगे । जिसके पास खाने-पीने को ही पर्याप्त न हो, अपना कारगर इलाज न करवा सके, वह तो जल्दी ही बूढ़ा दिखेगा । संपन्न देशों में लोगों की औसत उम्र अधिक देखी गई है । अतः इस कथन में दम है । दूसरी संभव व्याख्या यों हैः धनवान व्यक्ति धन के बल पर लंबे समय तक यौनसुख भोग सकता है, चाटुकार उसे घेरे रहेंगे और कहेंगे, "अभी तो आप एकदम जवान हैं ।" कृत्रिम साधनों से भी वह युवा दिख सकता है और युवक-युवतियों के आकर्षण का केंद्र बने रह सकता है ।

न विश्वसेदविश्वस्ते विश्वस्तेऽपि न विश्वसेत् । विश्वासाद्भयमुत्पन्नं मूलान्यपि विकृन्तति ।।44।। विश्वास न करने योग्य व्यक्ति में निःसंदेह भरोसा नहीं करना चाहिए, किंतु जिस व्यक्ति को विश्वसनीय पाया जाए उस पर भी एक सीमा से अधिक भरोसा नहीं करना चाहिए, क्योंकि विश्वास करने से पैदा हुए भय अर्थात् संकट (या परेशानी) व्यक्ति के मूल को काट डालता है । कहने का तात्पर्य यह है कि अति विश्वास मनुष्य को कभी-कभी ऐसी दुरवस्था की स्थिति में धकेल देता है, जिससे पार पाना कठिन होता है । उसे अपने अस्तित्व का आधार भी खोना पड़ जाता है ।

न वध्यते ह्यविश्वस्तो दुर्बलोऽपि बलोत्कटैः । विश्वस्ताश्चाशु वध्यन्ते बलवन्तोऽपि दुर्बलैः ।।45।। जो दूसरे में विश्वास नहीं करता है वह बलवानों के द्वारा भी नहीं मारा जाता है, किंतु जो विश्वास करता है उसका नाश बलवान् होते हुए भी दुर्बलों द्वारा किया जाता है । तात्पर्य यह है कि जिसने कभी धोखा न दिया हो और जिसका आचरण सदैव भरोसे के योग्य लगा हो वह कमजोर होकर भी समर्थ को नुकसान पहुंचा सकता है । इसके विपरीत कमजोर व्यक्ति भी पर्याप्त सावधानी बरतते हुए समर्थ व्यक्ति से स्वयं को बचा सकता है । वास्तव में जो व्यक्ति पूर्ण विश्वास का पात्र बन चुका हो, उसके लिए भी यह नहीं कहा जा सकता है कि भविष्य में वह कभी धोखा नहीं देगा । मनुष्य का व्यवहार कब बदल जाएगा इस बात का ही कोई भरोसा नहीं । ऐसे में बुद्धिमान् व्यक्ति को चाहिए कि वह सदा सावधान रहे और यह मानकर चले कि अमुक व्यक्ति आज नहीं तो कल धोखा दे सकता है । यह देखने में आता ही है कि व्यापारिक संबंधों में घनिष्ट मित्र भी ठगी पर उतर आते हैं

। व्यक्ति के स्वयं के बेटे-बेटियां तक कभी-कभी वंचक की भूमिका में उतर आते हैं । इसीलिए कहा जाता है कि वृद्धावस्था के लिए मनुष्य को अपनी कारगर व्यवस्था समय रहते कर लेनी चाहिए और अपने बच्चों के भरोसे भी आंख मूंदकर नहीं बैठना चाहिए । कब किसकी नीयत बदल चाए कहा नहीं जा सकता है । मानव व्यवहार विचित्र, अस्थाई एवं परिवर्तनशील होता है ।

दातव्यं भोक्तव्यं धनविषये सञ्चयो न कर्तव्यः । पश्येह मधुकरिणां सञ्चितमर्थं हरन्त्यन्ये ॥ अर्थः (धन का दो प्रकार से उपयोग होना चाहिए ।) धन दूसरों को दिया जाना चाहिए, अथवा उसका स्वयं भोग करना चाहिए । किंतु उसका संचय नहीं करना चाहिए । ध्यान से देखो कि मधुमक्खियों के द्वारा संचित धन अर्थात् शहद दूसरे हर ले जाते हैं । पंचतंत्र के रचनाकार का मत है कि मनुष्य को धन का उपभोग कर लेना चाहिए अथवा उसे जरूरतमंदों को दान में दे देना चाहिए । अवश्य ही उक्त नीतिकार इस बात को समझता होगा कि धन कमाने के तुरंत बाद ही उसका उपभोग संभव नहीं है । उसका संचय तो आवश्यक है ही, ताकि कालांतर में उसे उपयोग में लिया जा सके । उसका कहने का तात्पर्य यही होगा कि उपभोग या दान की योजना व्यक्ति के विचार में स्पष्ट होनी चाहिए । धनोपार्जन एवं तत्पश्चात् उसका संचय बिना विचार के निरर्थक है । बिना योजना के संचित वह धन न तो व्यक्ति के भोग में खर्च होगा और न ही दान में । नीतिकार ने मधुमक्खियों का उदाहरण देकर यह कहना चाहा है कि संचित धन देर-सबेर दूसरों के पास चला जाना है । मधुमक्खियों का दृष्टांत कुछ हद तक अतिशयोक्तिपूर्ण है । वे बेचारी तो शहद का संचय भविष्य में अंडों से निकले लारवाओं के लिए जमा करती हैं, जिनके विकसित होने में वह शहद भोज्य पदार्थ का कार्य करता है । यह प्रकृति द्वारा निर्धारित सुनियोजित प्रक्रिया है । किंतु उस शहद को मनुष्य अथवा अन्य जीवधारी लूट ले जाते हैं । मनुष्य के संचित धन को भले ही कोई खुल्लमखुल्ला न लूटे, फिर भी वह दूसरों के हाथ जाना ही जाना है, यदि उसे भोग या दान में न खर्चा जाए । कैसे, यह आगे स्पष्ट किया जा रहा है ।

दानं भोगं नाशस्तिस्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य । यो न ददाति न भुङ्क्ते तस्य तृतिया गतिर्भवति ॥ अर्थः धन की संभव नियति तीन प्रकार की होती है । पहली है उसका दान, दूसरी उसका भोग, और तीसरी है उसका नाश । जो व्यक्ति उसे न किसी को देता है और न ही उसका स्वयं भोग करता है, उसके धन की तीसरी गति होती है, अर्थात् उसका नाश होना है ।इस स्थल पर धन के 'नाश' शब्द की व्याख्या आवश्यक है । मेरा मानना है कि धन किसी प्रयोजन के लिए ही अर्जित किया जाना चाहिए । अगर कोई प्रयोजन ही न हो तो वह धन बेकार है । जीवन भर ऐसे धन का उपार्जन करके, उसका संचय करके और अंत तक उसकी रक्षा करते हुए व्यक्ति जब दिवंगत हो जाए तब वह धन नष्ट कहा जाना चाहिए । वह किसके काम आ रहा है, किसी के सार्थक काम में आ रहा है कि नहीं, ये बातें यह उस दिवंगत व्यक्ति के लिए कोई माने नहीं रखती हैं । अवश्य ही कुछ जन यह तर्क पेश करेंगे कि वह धन दिवंगत व्यक्ति के उत्तराधिकारियों के काम आएगा । तब मोटे तौर पर मैं दो स्थितियों की कल्पना करता हूं । पहली तो यह कि वे उत्तराधिकारी स्वयं धनोपार्जन में समर्थ और पर्याप्त से अधिक स्व्यमेव अर्जित संपदा का भरपूर भोग एवं दान नहीं कर पा रहे हों । तब भला वे पितरों की छोड़ी संपदा का ही क्या सदुपयोग कर पायेंगे ? उनके लिए भी वह संपदा अर्थहीन सिद्ध हो जाएगी । दूसरी स्थिति यह हो सकती है कि वे उत्तराधिकारी स्वयं अयोग्य सिद्ध हो जाए और पुरखों की छोड़ी संपदा पर निर्भर करते हुए उसी के सहारे जीवन निर्वाह करें । उनमें कदाचित् यह सोच पैदा हो कि जब पुरखों ने हमारे लिए धन-संपदा छोड़ी ही है तो हम क्यों चिंता करें । सच पूछें तो इस प्रकार की कोई भी स्थिति दुर्भाग्यपूर्ण एवं कष्टप्रद होगी । कोई नहीं चाहेगा कि ऐसी नौबत पैदा हो । तब अकर्मण्य वारिसों के हाथ में पहुंची संपदा नष्ट ही हो रही है यही कहा जाएगा । एक उक्ति है: "पूत सपूत का धन संचय, पूत कपूत का धन संचय ।" जिसका भावार्थ यही है कि सुपुत्र (तात्पर्य योग्य संतान से है) के लिए धन संचय अनावश्यक है, और कुपुत्र (अयोग्य संतान) के लिए भी ऐसा धन छोड़ जाना अंततः व्यर्थ सिद्ध होना है ।

दारिद्र्य! शोचामि भवन्तमेवमस्मच्छरीरे सुहृदित्युषित्वा । विपन्नदेहे मयि मन्दभाग्ये ममेति चिन्ता क्व गमिष्यसि त्वम् ॥

अर्थः- हे दरिद्रता! मैं तुम्हारे बारे में यही सोचता हूं और यही मरी चिंता है कि मेरे शरीर में एक सुहृद् –मित्र –की भांति दीर्घकाल तक रह चुकने के बाद मेरे देहावसान होने पर तुम कहां जाओगे ?मुझे चारुदत्त के वचनों में जीवन के गंभीर यथार्थ के दर्शन होते हैं । मानव समाज में संपन्नता एवं निर्धनता सहअस्तित्व के साथ दिखाई देते हैं। दोनों के बीच का अंतर देश-काल के अनुसार न्यूनाधिक हो सकता है, किंतु वह समाप्त नहीं होता है । ऐसा कभी नहीं हुआ है कि दुनिया के किसी समाज में आर्थिक समानता रही हो । हकीकत तो यह है कि किसी एक व्यक्ति या समुदाय की निर्धनता पर ही दूसरे/देसरों की संपन्नता टिकी रहती है । संपन्न व्यक्ति कभी भी यह नहीं चाहता कि अन्य सभी उसकी तरह संपन्न हों (दो-एक अपवाद हो सकते हैं) । वस्तुतः उस व्यक्ति की सुखानुभूति काफी हद तक दूसरों की असंपन्नता पर निर्भर करती है । हम दिखावा

ही तब करते हैं जब दूसरों में उतनी सामर्थ्य नहीं पाते हैं । ऐसी कोई व्यवस्था संभव नहीं है कि संपन्नता सभी में बराबर बंट सके । इसलिए कुछ लोगों को कंगाल, दरिद्र, विपन्न या निर्धन – आप जिस नाम से भी पुकारें – रहना ही है । चारुदत्त इस निर्धनता को एक अमूर्त सत्ता के तौर पर देखता है और कहता है कि उसे किसी न किसी के घर में अपना बसेरा तलाशना ही होता है । आज वह मेरे घर में है । मैंने उसकी उपस्थिति को उसी सहजता के साथ स्वीकारा है जैसे वह मेरी मित्र हो । अभी गरीब होने/रहने का भार मैं उठा रहा हूं, वह कहता है, किंतु मेरी मृत्यु के बाद किसी और को गरीबी वहन करनी होगी । मैं नहीं चाहता कि किसी और के घर यह जा बैठे । लेकिन इसे तो किसी न किसी को पकड़ना ही होगा । यही सोचकर मुझे कष्ट होता है । इस प्रकार के मनोभाव चारुदत्त के उक्त वचन में निहित हैं ।

सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम् । वृणुते हि विमृश्यकारिणं गुणलुब्धाः स्वयमेव सम्पदः ॥३०॥
किसी कार्य को बिना सोचे-विचारे अनायास नहीं करना चाहिए । विवेकहीनता आपदाओं का परम या आश्रय स्थान होती है । अच्छी प्रकार से गुणों की लोभी संपदाएं विचार करने वाले का स्वयमेव वरण करती हैं, उसके पास चली आती हैं ।

अभिवर्षति योऽनुपालयन्विधिबीजानि विवेकवारिणा । स सदा फलशालिनीं क्रियां शरदं लोक इव अधितिष्ठति ॥३१॥

जो कृत्य या करने योग्य कार्य रूपी बीजों को विवेक रूपी जल से धैर्य के साथ सींचता है वह मनुष्य फलदायी शरद ऋतु की भांति कर्म-साफल्य को प्राप्त करता है । "बिना विचारे जो करे सो पाछे पछताय, काम बिगाड़े आपनो जग में होत हंसाय ।" कोई भी कार्य उसके संभावित परिणामों पर सावधानी से विचार करने के बाद ही संपन्न करना चाहिए, न कि जल्दीबाजी में जैसा कि आदमी कभी-कभी कर बैठता है । हड़बड़ी में काम बिगड़ जाते हैं, यह सुविख्यात है । जल्दीबाजी के परिणाम यदि गंभीर रूप से हानिकर न हों तो कोई बात नहीं । लेकिन कभी-कभी ऐसा होता है कि सुधार करने या परिणाम पलटने के उपाय बचते ही नहीं, और केवल पश्चाताप करने को रह जाता है । मुझे अपने अध्यापन-काल की एक घटना याद आती है । वर्षों पहले छात्रावास में रहने वाली एक छात्रा अन्य छात्रा के व्यवहार से क्षुब्ध हो गई और उसने सल्फास की गोली खाकर आत्महत्या का कदम उठाया था । आनन-फानन में उसे अस्पताल में भरती कराया गया । घोर पीड़ा से वह तड़प तो रही ही थी, उसे अपनी गलती का एहसास भी हो गया था । चिकित्सकों से उसने बचा लेने ही गुहार लगाई । किंतु तब तक काफी देर हो चुकी थी । कुछ घंटों के बाद उसने दम तोड़ किया । आत्महत्या के अधिकांश मामले आवेश में किए गये कृत्य होते हैं । प्रथम श्लोक में कहा गया है कि संपदाएं गुणी व्यक्ति का वरण करती हैं । मेरे विचार से यहां गुण शब्द एक विशेष अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । नीतिकार का इशारा उन गुणों से है जिनके माध्यम से व्यक्ति किसी कार्य के लिए समुचित अवसर तलाशता है, उसे कब और कैसे सिद्ध करें इसका निर्णय लेता है और तदर्थ संसाधन जुटाता है। यहां गुण शब्द का अर्थ सद्गुणों से नहीं है । परिणामों का सही आकलन करके कार्य करने का कौशल ही गुण है ।